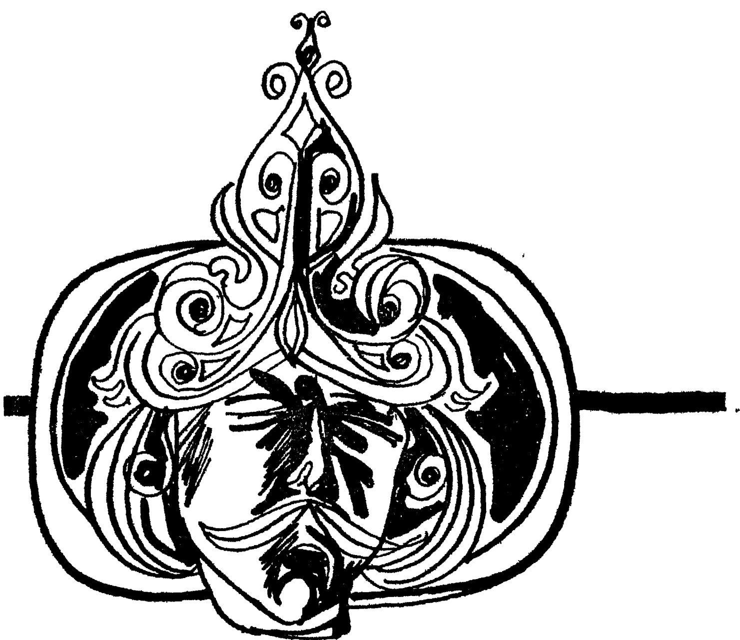
राजतिलक

शिवसागर मिश्र



नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
शाखा : चौड़ा रास्ता, जयपुर

मूल्य : १८.००
स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित/संस्करण १९७६/सर्वाधिकार : श्री शिवसागर मिश्र/रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

RAJTILAK (Novel) *by* Shivsagar Mishra

स्वर्गीय ललित बाबू को
जिनकी स्मृति शेष रह
गयी है !

—शिवसागर मिश्र

आमुख

आज के स्पूतनिक और पॉयनीयर के युग में हम चन्द्रमा और सूर्य की कक्षा में पहुंच कर परब्रह्म की सत्ता का रहस्योद्‌घाटन करने में व्यस्त हैं। फिर हजारों वर्ष पूर्व की जानी-समझी ऐतिहासिक पौराणिक कथाओं में कौन-सा आकर्षण धरा है, कि मैं मगध-गाथा लिखने के दुखद दलदल में आ फंसा ? यह सजीव सार्थक प्रश्न सुनकर, मैं किंचित् विचलित हो उठता हूं। क्या मैं सचमुच ही, अपना और अपने सहृदय पाठकों का अमूल्य समय नष्ट करने का अपराध कर रहा हूं ?

किंतु, इसके साथ ही अन्य अनेक प्रश्न भी संबद्ध हैं, जो कदाचित् उत्तर भी उपस्थित कर देते हैं।

विज्ञान की गति, राकेट की गति से होड़ ले रही है। किंतु, क्या मनुष्य सचमुच आगे बढ़ रहा है? क्या मनुष्य के कष्ट, रोग, समस्याएं, कुप्रवृत्तियां आदि दूर हो गयीं ? क्या युद्ध की विभीषिका टल गयी ? क्या सामाजिक और आर्थिक विषमताएं दूर हो गयी ? क्या प्रेम, सद्‌भाव, शांति एवं सहयोग का साम्राज्य स्थापित हो गया ? क्या मनुष्य-मनुष्य के बीच का भेद मिट गया ? क्या पृथ्वी से लाखों मील दूर तक अपना अस्त्र फेंकने में समर्थ मानव, अपने मन और पड़ोसी के घर में दुबके बैठे भय का संहार करने में समर्थ हो गया ?

उत्तर स्पष्ट है—नहीं ! बिलकुल नही !!

तमाम समस्याएं ज्यों-की-त्यों हैं। प्रेम-घृणा, क्रोध-दया, अपना-पराया,

मैं-तू, धर्म-अधर्म और सत्य-असत्य का बृहत् सार्थवाह आज भी उसी राह चला जा रहा है, जिस राह हजारों वर्ष पूर्व मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के निर्माण के दिनों में जा रहा था। इतिहास हम पढ़ते हैं और शीघ्र ही भूल जाते हैं। उससे शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं करते।

वस्तुतः सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो लगेगा, कि हम वहीं हैं जहां आज से हजारों वर्ष पहले थे। हमारा विकास वैज्ञानिक क्षेत्र में भले हुआ हो, किंतु, राजनीतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से हम आगे नहीं बढ़े हैं।

मानवीय गुण, लगभग, अंतर्धान हो चुके हैं। प्रेम एवं सद्भाव स्वप्न की वस्तु बनकर रह गये हैं। आचार एवं आस्था असभ्यता का प्रतीक बन गयी हैं। श्रद्धा एवं देशभक्ति की धारा को स्वार्थ एवं सत्ता की रेत सोखती जा रही है। विद्वानों, आचार्यों, गुणियों एवं कर्मठ सत्यवादियों की प्रतिष्ठा टके सेर बिक रही है। उद्दंडता हम युवकों का आभूषण बन गयी है, और अपनी ही महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति हमारे पूज्य जनों का चरम लक्ष्य! श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में: "...अब हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं, न नवीन, और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहां जा रहे हैं। नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदंड है, न कोई दूसरी ऐसी चीज, जिससे वह अपने चिंतन या कर्म को नियंत्रित कर सके ...यह खतरे की स्थिति है।"

राजनीतिक दृष्टि से, आज से हजारों वर्ष पहले हम जितने परिपक्व थे, जितने सशक्त थे, जितने कर्मठ थे, जितने चेतन थे उतने आज नहीं हैं। उन दिनों प्रजा के मत या हित के विरुद्ध कोई सत्ता टिक नहीं सकती थी। राजा प्रजा का निर्वाचित सेवक-मात्र था। राजा किसी दैवी अधिकार से शासन करता है, यह विचार वैदिक संहिताओं में कहीं नही पाया जाता। राजा वरण किया जाता था और यदि वह प्रजा-पालन की प्रतिज्ञा को तोड़ता था तो उसे पदच्युत कर दिया जाता था।

राजा को सभा एवं समिति के परामर्श के अनुसार ही चलना होता था।

सभासदों को अपने पक्ष में करने के निमित्त अथर्व वेद में प्रार्थना की गयी है—

"हे सभा ! हम तेरे से भली भांति परिचित हैं, तेरा नाम नरिष्ट (अनुल्लंघनीय) भी है। तेरे जो भी सभासद् हैं, वे मेरे साथ 'सवाचस्' (मेरे कथन के साथ सहमति रखनेवाले) हों। यहां जो लोग बैठे हैं, मैं उन सबके नेत्र और ज्ञान को ग्रहण करता हूं। हे इन्द्र ! मुझे इस प्रयत्न में सफल बनाओ। तुम लोगों (सभासदों) का जो मन किसी और पक्ष में गया हुआ है, या किसी पक्ष के साथ इधर-उधर बंध गया है, उसे मैं लौटाता हूं, तुम सबका मन मेरे पक्ष में हो।"

यह था प्रजातंत्र का स्वरूप ! किंतु, हममें से कितने हैं जो अपने देश के प्राचीन इतिहास से सुपरिचित हैं ? अपने को जानने के लिए, अपने देश को समझने के लिए, प्रगति के मार्ग पर उत्साहपूर्वक अग्रसर होने के लिए, इतिहास का ज्ञान आवश्यक है; और यदि मैं इतिहास के प्रति अपने पाठकों में आकर्षण-मात्र उत्पन्न कर सका तो अपना श्रम सफल समझूंगा।

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास नहीं है, ऐतिहासिक सत्य पर आधारित विशुद्ध उपन्यास है। इसीलिए, मैंने कहीं-कहीं अत्यधिक स्वच्छंदता से काम लेने की धृष्टता की है।

आज से लगभग छब्बीस सौ वर्ष पूर्व, भारतवर्ष नामक देश का कोई राजनीतिक अस्तित्व नहीं था। बौद्ध ग्रंथ में हमें सोलह महाजनपदों की सूची मिलती है, जो बौद्ध धर्म के उत्थान के कुछ पहले, काबुल की तराई से लेकन गोदावरी के किनारों तक के भू-भागों में फैले हुए थे। इनके अतिरिक्त कई छोटे-छोटे गणतंत्र थे, जैसे कपिलवस्तु के शाक्य, सुंसुमार गिरि के भर्ग, पिप्पलिवन के मौर्य, आदि।

एक जनपद दूसरे जनपद को अधीनस्थ करने के उद्यम में लगा हुआ था। किंतु, संपूर्ण देश की राजनीतिक एकता का स्वप्न, अभी सुदूर भविष्य के भयावह अंधकारपूर्ण गह्वर में स्वप्न ही बना हुआ था। हां, भारत की भौगोलिक एकता, निस्संदेह, वैदिक युग से ही इस देश के लोगों में एक प्रकार की एकानुभूति उत्पन्न करती चली आ रही थी।

चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व में आचार्य चाणक्य ने सर्वप्रथम स्पष्ट घोषणा की थी कि 'हिमालय से समुद्र-पर्यंत जो सहस्र योजन विस्तीर्ण प्रदेश है, वह एक चक्रवर्ती शासन का क्षेत्र है।' और इससे पूर्व भी अनेक सम्राटों

ने दिग्विजय द्वारा भारत के विविध आर्य राज्यों में राजनीतिक एकता को प्रादुर्भूत किया था।

छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में भारतीय राजनीति में एक नये परिवर्तन का सूत्रपात हुआ। चार महाजनपद—अवन्ति, वत्स, कोशल और मगध—बहुत शक्तिशाली हो गये। प्रत्येक शक्तिशाली जनपद अपने साम्राज्य को विस्तीर्ण करने की होड़ में, दुर्बल जनपदों को अधीनस्थ करने की योजना बनाने लगा। इस होड़ में मगध महाजनपद बाजी मार ले गया।

वैदिक ऋषियों और महाकाव्य के कवियों के दिनों में भी दक्षिण बिहार के पटना और गया जिलों में स्थित मगध राज्य अपने प्रबल सरदारों के लिए प्रसिद्ध था।

जिस प्रकार मैसिडोन के नेतृत्व में ग्रीक नगर-राज्य (स्पार्टा, एथेन्स, कोरिन्थ आदि) एक राजनीतिक सूत्र में संगठित हुए वैसे ही मगध के नेतृत्व में भारत के विविध राज्य एक साम्राज्य के अधीन हुए।

ईसा के पूर्व पांचवीं-छठी शताब्दियों में मगध के सिंहासन पर शैशुनाग राजाओं का अधिकार था या बार्हद्रथ वंश का, यह कह सकना कठिन है। इस विषय पर इतिहासकारों में मतभेद है। पुराणों की सूची के अनुसार शैशुनाग राजाओं का आधिपत्य था किंतु, बौद्ध लेखकों ने शिशुनाग का नाम बहुत पीछे रखा है। राय चौधुरी जैसे अनेक इतिहासकार बौद्ध लेखकों की बात को ही सत्य के अधिक निकट मानते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में बार्हद्रथ वंश के अंतिम राजा रिपुंजय के पतन से लेकर प्रतापी सम्राट् बिम्बिसार के राज्यारोहण तक की अवधि का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

बार्हद्रथ वंश

प्राचीन काल में हस्तिनापुर में पौरव वंश का राज्य था। इसी वंश के कुरु नाम के प्रतापी राजा ने वंश को आगे बढ़ाया। कुरु वंश के पराक्रमी राजा वसु ने, चेदि और मगध को अधीनस्थ कर, शुक्तिमती को अपनी राजधानी बनाया। वसु के मरने के पश्चात् उसके पांचों पुत्र—बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुश, यदु और माकेल्ल स्वच्छंद हो गये। उस समय मगध का

शासक बृहद्रथ था। काशी और अंग के बीच के जंगल-प्रधान (धर्मारण्य) प्रदेश का नाम मगध था, जहां पर पहले, गयआमूर्तरयस ने आर्य राज्य की नींव डाली थी।

बार्हद्रथ वंश में ही प्रतापी सम्राट् जरासन्ध हुआ, जिसने असम से चेदि शूरसेन तक और दक्षिण में क्रथकैशिक (बरार तथा खानदेश) तक अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया। अनुमान किया जाता है कि इस वंश का शासन हजार वर्ष से अधिक काल तक बना रहा। इसी वंश के महाराज बृहद्रथ ने गिरिव्रज नगर की स्थापना की और छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में अंतिम बार्हद्रथ वंशी महाराज रिपुंजय की हत्या के साथ ही इस वंश का उच्छेद हो गया।

महाराज रिपुंजय का महामात्य (कदाचित् हैहयवंशी) पुलिकसेन था। पुलिकसेन अवन्ति का शासक भी था। लगता है, उन दिनों अवन्ति पर मागध राज का तथाकथित आधिपत्य था। मगध में अव्यवस्था, अराजकता एवं असुरक्षा का सूत्रपात हो चुका था। पुलिकसेन की महत्त्वाकांक्षा की उद्दाम लहरों में रिपुंजय की शक्ति तिनके की तरह सत्वहीन हो रही थी। सेना में श्रेणी बल, भृत एवं आर्य भिन्न बल का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। ऐसी परिस्थिति में वही हुआ जो स्वाभाविक था। पुलिकसेन ने महाराज रिपुंजय को मारकर अपने पुत्र कुमारसेन (बालक) को मगध के आर्यपट्ट पर बिठा दिया। किंतु, प्रजा ने पुलिकसेन के शासन का रिपुंजय के राज्यकाल में ही फल चख लिया था। शीघ्र ही दूसरी राज्य-क्रांति हुई। श्रेणी बल के नेता भट्टिय हेमजित ने कुमारसेन का शासन समाप्त कर दिया और मगध के आर्यपट्ट पर अपने पंद्रह वर्षीय पुत्र बिम्बिसार को अभिषिक्त कर दिया।

प्रस्तुत पुस्तक में, मैंने इन्हीं दो राज्य-क्रांतियों का, जो वस्तुतः जनक्रांतियां थीं, उल्लेख किया है।

छठी-सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में धर्म के क्षेत्र में भी महान परिवर्तन एवं गौरवपूर्ण क्रांतियां हुईं। जादू-टोने और मंत्र-प्रयोग का प्रारंभ तो पुरातन प्रस्तर-युग में ही हो चुका था।

बीज नष्ट होकर पौधे को जन्म देता है। नूतन प्रस्तर-युग का मनुष्य

यह समझता था, कि मूल कारण बीज की 'बलि' है। अतः धरती माता को तुष्ट करने के लिए, बलि की प्रथा नूतन प्रस्तर-युग में ही आरंभ हो गयी थी।

शिव की उपासना का प्राधान्य तो बहुत पूर्व से ही था, सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व तक वासुदेव कृष्ण की उपासना के साथ वैष्णव धर्म का अभ्युदय भी हो चुका था। किंतु, इतिहासकारों का मत है कि भागवत धर्म (श्री वासुदेव कृष्ण का उपदेश) पूर्व के प्रदेशों में विलंब से पहुंचा। स्पष्ट ही, मगध के परंपरागत धर्म शैव धर्म से उसका संघर्ष हुआ होगा। दोनों धर्मों के अनुयायियों में प्रतिस्पर्धा रही होगी। शैव धर्म का विकृत, अश्लील एवं हिंसक पक्ष प्रबल रहा होगा, तभी जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में सुगमता हुई होगी।

यदि मुझ पर गर्वोक्ति का आरोप न लगाया जाय तो मैं कहना चाहूंगा कि इतिहास के इस काल पर अब तक, कदाचित्, किसी भाषा में कथा-साहित्य का निर्माण नहीं हुआ है। काल एवं विषय-वस्तु के अनुरूप ही इस पुस्तक की भाषा रखी गयी है।

मैंने प्रयास किया है कि उस काल के धर्म, रीति, राजनीति, मनोरंजन-क्रीड़ाएं, समाजोत्सव, खान-पान आदि का चित्रण कथा के प्रवाह में सहज ढंग से अनायास ही हो जाय। शस्त्रास्त्रों का निरूपण भी काल के अनुरूप ही किया गया है।

—शिवसागर मिश्र

राजतिलक

दिन का तीसरा प्रहर बीत रहा था। झुकते हुए सूरज की किरणों से वन्य-प्रदेश आलोकित था। दो अश्वारोही धीरे-धीरे गिरिव्रज की ओर बढ़ रहे थे। उनके कम्बोजी घोड़ों की टाप से वन-प्रांतर की स्तब्धता भंग हो रही थी। अश्वारोहियों के वस्त्र पर पड़ी धूल से ही मालूम हो जाता था कि वे दोनों बहुत दूर से आ रहे हैं। कदाचित् दोनों अश्व भी थक चुके थे, इसीलिए अश्वारोहियों ने घोड़ों की चाल धीमी कर दी थी।

एक घोड़ा सफेद रंग का था और दूसरा काले रंग का। सफेद घोड़े पर बहुत ही सुंदर तरुणी बैठी हुई थी—संगमरमर जैसी स्वच्छ, शुभ्र, कांचन-वरणा। उसकी नीली आंखें, भूरे चमकीले घुंघराले बाल, खड़ी नासिका और मोतियों से सुघड़ सुव्यवस्थित दांत देखने वालों के मर्म को बिजली-से छू जाते थे। आंखें ऐसी मानो स्निग्धता, करुणा, प्रेम, जीवन और उन्माद एकसाथ ही घुल-मिलकर तरल हो उठे हों। उस तरुणी को देखते ही स्पष्ट हो जाता था कि वह पश्चिम की है, पूरब की नही। उसके सुनहले बाल पीठ पर फैले हुए थे और बिल्व-सदृश युगल उरोज कंचुकी में कसे होने के कारण अपनी सुघड़ता का जयघोष कर रहे थे।

काले घोड़े पर सवार युवक सैनिक वेश में था। युवक के विशाल वक्ष-स्थल, वृषभ-कंध, आजानुबाहु और देदीप्यमान मुखमंडल देखकर ही लगता था कि युवक किसी संभ्रांत सामंत परिवार का है। तरुणी से बातचीत करते समय भी, वह सावधानीपूर्वक बेधक नजरों से, दूर-पास की झाड़ियों,

लता-द्रुमों और वृक्षो की डालियों को देखता हुआ आगे बढ रहा था। जब उसकी दृष्टि तरुणी की आखों से टकराती तब अनायास ही उसकी आंखों की बेधकता और हावभाव की सतर्कता क्षण-भर के लिए विलुप्त हो जाती। क्षण-भर के लिए उसकी आंखों और होठों पर स्निग्धता-भरी मुस्कराहट कांपने लगती। उसके कंधे पर धनुष, बायी ओर कटि में खड्ग और दायें हाथ में विशाल शल्य देखकर ही उसके पराक्रमी होने का आभास मिल रहा था। दोनों अगल-बगल होकर आगे बढ़ रहे थे। तरुणी ने चारों तरफ दृष्टि फेंकते हुए मुस्कराकर कर कहा—

"यहां की धरती बड़ी शस्य-श्यामला है।"

"पतित-पावनी गंगा और सदा-नीरा का आशीर्वाद इस भू-भाग को सहज ही प्राप्त है। यहां वर्षा भी अच्छी हो जाती है।"—युवक ने सामने चली जाती हुई राह की ओर देखते हुए कहा। तरुणी ने अचानक ही पूछ दिया—

"अब तुम्हारा मगध कितनी दूर है हेमजित ?"

"हम मगध की सीमा में प्रवेश कर चुके हैं श्रवणे ! गिरिव्रज अभी दूर है। तुम थक तो नहीं गयीं ? यदि ऐसा है तो यहीं किसी घने वृक्ष के नीचे विश्राम कर लो।"

श्रवणा कोई उत्तर न देकर हेमजित को अपलक निहारती रही। हेमजित का बारहों सूर्य के तेज से उद्‌भासित मुख-मंडल श्रवणा की अपलक दृष्टि का स्पर्श पाकर अत्यधिक आरक्त हो उठा। उसने अपने अश्व को श्रवणा के अश्व से बिलकुल सटा दिया और कहा—

"क्या देख रही हो ?"

"सोच रही हूं कि ऐसा मनोरम वन्य प्रदेश और उस पर से तुम्हारा साथ। इसमें कितना आनंद है ! कितना सुख ! यदि यही स्थिति बनी रहे तो मैं जीवन पर्यंत चलती चली जा सकती हूं।"

"सच !"—हेमजित ने अपना बायां हाथ श्रवणा के कंधे पर रख दिया।

"यही सत्य है। शेष बातें मिथ्या।"

"फिर तो ठीक है। मध्य-रात्रि का पहला प्रहर बीत जाने से पूर्व ही

हम लोगों को गिरिव्रज नगर के मुख्य द्वार पर पहुंच जाना है। यदि हम अपनी चाल तेज कर दें तो निश्चित रूप से सूर्यास्त के पूर्व ही गिरिव्रज पहुंच जायेंगे। रात्रि का पहला प्रहर बीत जाने पर नगर का महाकपाट बंद हो जाता है।"

"बंद हो जाने दो। तुम्हें लगता होगा कि तक्षशिला से यहां आते-आते हम कई रातें राह में व्यतीत कर चुके है। मुझे तो···।" हेमजित ने तत्क्षण श्रवणा की बात काट दी और उसे अपनी ओर खीचते हुए कहा—

"ऐसी बात नहीं है श्रवणे ! यदि गुरुदेव आचार्य भूरिश्रवा की आज्ञा-पालन का दायित्व सिर पर न होता तो मैं भी यही चाहता कि बीस-पच्चीस दिन और राते इसी तरह तुम्हारे साथ एकांत सहवास में बीत जाये।"

"तो क्या तुम गिरिव्रज पहुंचते ही मुझे छोड़कर कही चले जाओगे ?"

"नहीं तो। आचार्य भूरिश्रवा का इतना ही आदेश है कि गिरिव्रज पहुंचते ही मैं आचार्य नारायण स्वामी मे मिलू। मुझे कही बाहर नही जाना है। आचार्य गिरिव्रज मे ही रहते हैं।"

"मुझे इसकी चिता नही है कि आचार्य नारायण स्वामी कहां रहते हैं। मुझे तो इतना ही कहना है कि जहां तुम रहोगे, वहीं मुझे रहना है—अन्यत्र नही। यदि मेरी इस योजना में व्यवधान आया तो···।" श्रवणा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पायी थी कि एक छोटी सी घटना घट गयी।

सामने के मार्ग के किनारे एक विशाल वृक्ष पर तेंदुआ घात में बैठा था। ये दोनों अश्वारोही उसकी छलांग की सीमा में पहुचे ही थे कि उसने आक्रमण कर दिया। उसी समय हेमजित ने बिना प्रयास किये अपने भाले के निचले सिरे को दोनों हाथों से पकड़ कर उसकी नोक को तेंदुए के मुख की ओर कर दिया। तेंदुआ मुंह बाए था। वह पूरी गति के साथ घोड़ों की ओर झपटा था। लेकिन उसके भाग्य में विषाक्त भाला लिखा था। हेमजित ने तेंदुए सहित भाले को जमीन पर फेंक दिया और अश्व से उतर कर श्रवणा को भी सहारा देकर उतार लिया। श्रवणा छटपटाते हुए तेंदुए को देखकर बोली—

"हिरण रहता तो रात्रि-भोज में काम आ जाता।"

"इसका भी अच्छा उपयोग होगा। देखती नहीं, भाले की नोक इसके मुंह से पेट के अंतिम छोर तक पहुंच गयी है। इसके शरीर पर कहीं खरोंच तक नहीं लगी है। इसलिए इसका चर्म देखने योग्य होगा। इसे तुम्हारे घोड़े पर लाद लेते हैं और तुम मेरे साथ ही आ जाओ।"

"यह तो बहुत ही शुभ शकुन हुआ। फिर हम मंथर गति से ही चलेंगे ताकि गिरिव्रज नगर का महाकपाट बंद मिले।"—श्रवणा ने कहा और दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। उनकी निश्छल हंसी जंगल में दूर-दूर तक गूंज उठी। तेंदुए की छटपटाहट बंद हो चुकी थी।

सूर्यास्त में थोड़ा ही विलंब था कि दोनों अश्वारोही गिरिव्रज नगर जा पहुंचे। हेमजित ने उल्लसित स्वर में कहा—

"यही हमारे मगध की राजधानी है श्रवणा! हम अपने देश आ गये।"

श्रवणा मुग्ध दृष्टि से नगर की संपन्नता, सौंदर्य और समृद्धि देखती ही रह गयी। उसके नगर तक्षशिला में महान् विद्यालय था। वहां साधना का साम्राज्य था। विद्याध्ययन और शस्त्रास्त्र में निपुणता प्राप्त करने के इच्छुक कठोर साधकों के अनुरूप ही गली-कूचे आदि निर्मित थे। आचार्यों के लिए वहां भव्य भवन की आवश्यकता नहीं थी। तक्षशिला से गिरिव्रज तक श्रवणा को कई जनपदों के विख्यात नगर देखने का अवसर मिला था—किंतु, गिरिव्रज की शोभा अद्वितीय थी। वह चकित-विस्मित अवस्था में अपने प्राण भट्टिय हेमजित के साथ नगर में कुछ दूर गयी ही थी कि "हुड़क्···हुर्र···की ध्वनि करके एक कापालिक वहां से निकल गया। श्रवणा चौंक उठी। कापालिक को देखकर उसके होंठ सिकुड़ गये। भट्टिय ने हंसते हुए कहा—"महाकाल शिव का उपासक है।"

"हां, मैंने इन कापालिकों के आचरण एवं विश्वास से संबद्ध बहुत सी बातें अपने पिताश्री से सुनी हैं। ये लोग भगवान् कृष्ण के विरोधी होते हैं—किंतु, इन्हें इस प्रकार नगर में चक्कर काटने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।"

"अनुमति? किसकी? यहां तो स्वयं महाराज रिपुंजय और महामात्य पुलिकमेन इन कापालिकों के अनुचर हैं। शैव धर्म के अनुयायी ये कापालिक

खुले सांड़ की तरह नगरों में घूमते रहते हैं। इनका बड़ा आतंक है।"

"यह तो बड़ी विचित्र बात है।"

"ऐसी बहुत-सी विचित्र बातें यहां देखने-सुनने को मिलेगी श्रवणा। मगध में बार्हद्रथ वश की स्थापना हुए एक हजार वर्ष बीत चुके हैं। उसी वंश के हैं महाराज रिपुंजय। किंतु, शासन चलता है महामात्य पुलिकसेन का, जो यहां का महामात्य होने के साथ-साथ अवन्ति महाजनपद का भी शासक है।"

एक महाजनपद का राजा दूसरे महाजनपद का स्वामीभक्त प्रधान-मंत्री किस प्रकार हो सकता है ?"

"हां, पुलिकसेन के पाव दो नावों पर हैं। मगध में अव्यवस्था और अराजकता का आभास तुम्हें कापालिकों के स्वच्छंद विचरण में ही नहीं, प्रशासन और सैनिक व्यवस्था के क्षेत्र में भी देखने को मिलेगा...। वह देखो, हमारा प्रासाद दृष्टिगोचर हो रहा है। पिताश्री विश्वदेव को हमारे आने की सूचना पहले से ही मिल चुकी है।"



रात्रि का दूसरा प्रहर बीत रहा था। पांच पहाड़ों से घिरा हुआ गिरिव्रज नगर अंधकार में ऊंघता-सा लग रहा था। नगर के राजपथ और गली-कूचे निर्जन, निस्तब्ध हो चुके थे। कहीं-कहीं दो-चार जन मदिरालय से मत्त होकर लड़खड़ाते-गुनगुनाते घर को लौट रहे थे। नशे में वे इस कदर धुत थे कि उन्हें यह भी नहीं मालूम कि उनके पांव घर की ओर बढ़

रहे है या श्मशान की ओर।

बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के ताम्र-शिखर और प्रासादों के स्वर्ण-स्तंभ अंधकार में विलीन होकर अस्तित्वहीन हो चुके थे। किसी आगंतुक को विश्वास नहीं होगा कि छठी शताब्दी ई० पू० में शक्ति और संपन्नता के लिए विख्यात महान जनपद मगध की राजधानी रात के दूसरे प्रहर में ऐसी निस्तब्धता और नीरवता का चित्र प्रस्तुत करेगी। किंतु, वास्तविकता यही थी। अनिश्चय और असुरक्षा की भावना से त्रस्त नागरिक रात होते ही अपने-अपने भवनो और अट्टालिकाओं में चले जाते थे। बाहर बच रहते थे, मदिरा-सेवी, कामाचारी छैले और दस्तु-वृत्ति के पोषक ! मगध के तात्कालिक राजवंश के पतन को अवश्यंभावी मानने वाले स्वप्न-द्रष्टा संत और मनीषी गिरिव्रज नगर के बाहर रहने में ही शांति का अनुभव करते थे।

तीसरा प्रहर बीतते न बीतते जहां नगर के भीतर पूरी तरह नीरवता और निस्तब्धता छा गयी, वहां नगर के पश्चिमी द्वार पर अचानक ही हलचल मच गयी। न जाने कहा से छह अश्वारोही तीर की गति से आकर द्वार पर आ खड़े हुए। घोड़ों को अचानक ही रोक दिया गया था, इसलिए वे अपने पिछले पांव पर खड़े होकर जोर से हिनहिना उठे। उनकी हिन-हिनाहट द्वार से टकराकर शांत आकाश में गूज उठी। तोरण के ऊपर सोता हुआ प्रहरी घबराकर चीख उठा—"कौन है ?"

अश्वारोहियों में से एक उत्तर देने ही जा रहा था कि एक दूसरे अश्वारोही ने धीरे-से कहा—"मैं अभी गिरिव्रज में नहीं हूं, अवन्ति में हूं। मेरा परिचय गोपनीय ही रखना है।"

दूसरे अश्वारोही ने सिर झुकाकर धीमे स्वर में कहा—

"जैसी आज्ञा महामात्य !"

तोरण के ऊपर से प्रतिहारी ने डपट कर प्रश्न किया—

"तुम लोग बोलते क्यों नहीं ? कौन हो तुम लोग ?"

"राज-सेवक !"

"तब तो तुम्हें मालूम ही होगा कि रात का दूसरा प्रहर बीत जाने के बाद नगर का महाकपाट सबके लिए बंद हो जाता है। नगर के बाहर

जाकर रात-भर कही विश्राम करो। कल प्रात:काल आना।"—प्रतिहारी का उपेक्षा से भरा उत्तर सुनकर अश्वारोहियों के हाथ तलवार की मूठ पर जा पड़े। एक अश्वारोही ने तो अपने कंधे पर से धनुप उतारकर उस पर तीर भी चढा लिया कि तभी अश्वारोहियों के नायक छद्मवेषी महामात्य ने हाथ के सकेत से उन्हें शात कर दिया और स्वयं स्वर बदलकर प्रतिहारी से कहा :

"हम मडलेश्वर के संदेशवाहक है प्रतिहारी ! द्वार खोल दो।"

"संकेत शब्द बताओ।" प्रतिहारी ने फिर उपेक्षा से कहा।

"व्रात्यजन !"

संकेत-शब्द सुनते ही प्रतिहारी घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ और नीचे खड़े हुए प्रतिहारियों से बोला—"द्वार खोल दो···जल्दी करो।"

लगभग पचास हाथ ऊंचा विशाल द्वार कर्र-मर्र करता हुआ खुल गया। उल्काओं के प्रकाश में आगंतुक अश्वारोहियो के मूल्यवान सैनिक वस्त्र जगमगा उठे। सभी अश्वारोही कुछ दूर तक चुपचाप धीमी गति से राजपथ पर बढ़ते रहे। गिरिव्रज नगर के चारो ओर खड़ी पांचों पहाड़ियां—वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक—अचानक ही जैसे नींद से चौंककर जग पड़ीं और इन अश्वारोहियों को देखने लगी। इन अश्वारोहियों के नगर में प्रविष्ट हो जाने के बाद द्वार के प्रहरी फिर से निश्चिंत होकर ऊंघने लगे थे।

आगंतुक अश्वारोही राजपथ छोड़कर उस रास्ते पर मुड़ गये जो शस्त्रागार की ओर जाता था। शस्त्रागार के पास मृत्यु की सी शांति थी। यही शांति पूरे गिरिव्रज पर छायी हुई थी। केवल सामंत विश्वदेव के प्रासाद से कोलाहल का हल्का स्वर उभर रहा था। उस स्वर से अनजान शस्त्रागार का एक प्रहरी द्वार के पास ही दीवार के सहारे बैठा सो रहा था। उसके हाथ का भाला भूमि पर पड़ा हुआ था। पास ही लगे उल्का के प्रकाश मे देखा जा सकता था कि प्रतिहारी के दोनों होठ खर्राटों की लय के साथ कभी खुल जाते थे तो कभी बंद हो जाते थे।

तथाकथित महामात्य अपने होठो मे ही कुटिल हंसी हंस पड़ा और बोला—

"व्याघ्रक ! देख रहे हो मगध का वस्त्रागार कितना सुरक्षित है ! और सुन रहे हो सामंत विश्वदेव के प्रासाद से उठने वाला कोलाहल ?"

"हां, आर्य ब्राह्मण !"

"आर्य ब्राह्मण नहीं, सम्राट कहो ! अवन्तिराज पुलिकसेन मगध का शस्त्रागार जलाकर मगध का महामात्य कैसे कहला सकता है ? अब तो मगध का राजसिंहासन बार्हद्रथ-रक्त में अभिषिक्त होगा और पुलिकसेन मगध को समस्त जम्बू द्वीप के एकछत्र साम्राज्य का केंद्र-बिंदु बनायेंगे।"

"जी महाराज !"—व्याघ्रजिन ने बहुत ही विनीत स्वर में उत्तर दिया। छद्मवेषी पुलिकसेन की दृष्टि कुछ देर तक कुछ ही दूर पर स्थित सामंत विश्वदेव के महल की ओर टिकी रही। फिर, वह स्वगत भाषण की शैली में बोला—"सामंत विश्वदेव के यहां, लगता है, आज रात बहुत बड़ा समारोह—समज्या समारोह हो रहा है। इसका अर्थ हुआ कि उसका पुत्र हेमजित तक्षशिला से स्नातक होकर वापस आ गया है ! व्याघ्रक !"

"आज्ञा महाराज !"

"हम चूक गये। इस हेमजित को गिरिव्रज पहुंचने के पहले ही समाप्त कर देना चाहिए था। हमने सुना है कि तक्षशिला में आचार्य भूरिश्रवा का यह पट्ट शिष्य था। पश्चिम दिशा में इसकी कीर्ति अप्रतिम योद्धा के रूप में गांडीवधारी अर्जुन की तरह फैल चुकी है···इसका उपाय कुछ न कुछ करना ही होगा।"

तभी शस्त्रागार की दीवार के सहारे सोया हुआ प्रहरी जग पड़ा। कदाचित् उसने छद्मवेषी अश्वारोहियों की आवाज सुन ली थी। यह सभी अश्वारोही अंधकार में डूबे लता-मंडप के पास छिपे थे। प्रतिहारी ने आंखें फाड़-फाड़कर उस ओर देखना आरंभ ही किया था कि पुलिकसेन ने व्याघ्रजिन को संकेत दिया और व्याघ्रजिन का सपत्र बाण तत्क्षण ही प्रहरी के कलेजे के आर-पार हो गया।

"तुमने मालूम तो कर लिया है कि यहां और कितने प्रहरी हैं और कहां-कहां तैनात हैं ?"

"जी हां श्रीमन् ! दस और शेष हैं।"

"तो उन्हें भी अशेष करो और इस शस्त्रागार को ग्यारह प्रहरियों सहित अग्निदेव की भेंट कर दो। शीघ्रता करो।"

आदेश मात्र की देर थी। अश्वारोहियों को मालूम था कि प्रहरी कहां-कहां नियुक्त हैं। देखते ही देखते सभी प्रहरियों को मृत्यु के मुंह में झोंक दिया गया। कुछ देर बाद शस्त्रागार उन प्रहरियों की चिता के रूप में धू-धू कर जलने लगा और छद्मवेशी पुलिकसेन नगर के दक्षिणी ओर, जिधर श्मशान था, चल पड़ा। चलने से पहले ही उसने अपने अश्वारोहियों को आदेश दिया कि वे कार्य संपादित करने के बाद उनके आम्र-वन के एकशालिक में जाकर विश्राम करें।

गिरिव्रज के शस्त्रागार से अग्नि की लपटें उठते हुए देखकर सोया नगर जग पड़ा। पांचों पहाड़ियां भी उठ बैठीं। नान्दीक और नक्कारों के भयावह स्वर में नगरवासियों का हाहाकार मिलकर आतंक पैदा करने लगा। राजसैनिक निरुद्देश्य इधर-उधर दौड़ने लगे।

अधिकारियों और सैनिकों ने शस्त्रागार को बचाने का भरपूर प्रयास किया, किंतु कोई फल नहीं निकला। बार्हद्रथ-वंश के उच्छेद का आरंभ हो चुका था।

भट्टिय हेमजित का प्रासाद शस्त्रागार के पास ही था। मगधपति महाराज रिपुंजय का धवल-गृह वहां से कुछ दूर पूर्व की ओर स्थित था। भट्टिय हेमजित के पिता सामंत विश्वदेव स्वच्छंद सैनिकों की श्रेणी के नेता थे। वंश-परंपरा से उनमें राज-भक्ति कूट-कूटकर भरी थी। उस युग में स्वच्छंद, स्वतंत्र सैनिकों के संगठन का नेता होना बहुत ही महत्वपूर्ण बात थी। ऐसे संगठन या श्रेणी का नेता महत्ता और प्रभाव में राजा से कम नहीं माना जाता था। किसी युद्ध में वह राजा का साथ दे या न दे, इसका निर्णय करना उसी के अधीन हुआ करता था। किंतु, विश्वदेव ने सदा से बार्हद्रथ-वंश का साथ दिया था। वह वृद्ध हो चुके थे, केवल पुत्र को देखने के लिए जीवित थे।

विश्वदेव की पत्नी अदिति पुत्री विश्वतारा को जन्म देने के बाद स्वर्ग सिधार गयी थी। अब परिवार में बच रहे थे वे स्वयं, पुत्री विश्वतारा और पुत्र हेमजित। आठ वर्ष के बाद पुत्र को सकुशल वापस पाकर विश्वदेव के

आनंद की सीमा न थी। प्रसन्नता से वह भर उठे थे। इतनी लंबी अवधि के बाद, कठोर साधनापूर्ण जीवन बिताकर और कठिन यात्रा से बचकर, उनका पुत्र घर लौटा था, वह भी साथ में सोने जैसी बहू लेकर। जब उन्हें मालूम हुआ कि साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य और बृहस्पति के समान गुणवान् आचार्य भूरिश्रवा की पुत्री श्रवणा उनकी बहू के रूप में आयी है, तब वे हर्षोन्मादित हो उठे। उन्होंने आज्ञा दी—"पुत्र-वधू सूने घर में किस प्रकार प्रवेश करेगी, रास-रंग होना चाहिए। सभी प्रमुख नागरिकों को आमंत्रित करो। गीत-नाद से नगर को गुंजायमान कर दो। पुराने दास-दासियों को मुक्त कर दो।"—वृद्धावस्था मे भी वे स्वयं व्यवस्था में हाथ बंटाने लगे। उनके निर्देशन में दीप-मालिका से प्रासाद और द्वार-आंगन सजाये जाने लगे। उन्होंने सेवकों को आदेश दिया—"अच्छे से अच्छे भोजन की व्यवस्था करो। पुलाव, पूवा, सूप, मत्स्य, वत्सतरी के मांस आदि की व्यवस्था करो। मधु, प्रसन्ना, कापिशायनी और मैरेय जैसी अपूर्व मदिराओं से भरे हुए कुंभ यहां-वहां रख दो, जिससे पीनेवालों को अभाव न लगे।"

कुछ ही देर में सारी व्यवस्था हो गयी। कमी किस बात की थी। असंख्य दास और दासियां उपलब्ध थे ही। बड़े-बड़े राज्याधिकारी, श्रेष्ठी, प्रमुख नागरिक, विद्वान्, कवि आदि आमंत्रित व्यक्ति समारोह में सम्मिलित होने के लिए आ पहुंचे। प्रतापी सामंत श्रेणी बल के नेता के निमंत्रण को भला कौन अस्वीकृत करता। फिर पराक्रमी हेमजित के गुण की सुगंध गिरिव्रज में पहले से ही पहुंच चुकी थी। गिरिव्रज के सभी प्रमुख नागरिक हेमजित और श्रवणा को देखने के लिए आतुर थे।

श्रवणा और हेमजित कई दिनों की यात्रा से थककर चूर हो रहे थे। समारोह में एकत्र नागरिक तो मदिरा का सेवन करके हर्षोन्मत्त हो रहे थे, किंतु, रात्रि का तीसरा प्रहर बीतते-न बीतते श्रवणा किंचित् क्लांत-सी हो उठी। वह हेमजित से बोली—"मैं बहुत थक गयी हूं प्रिय! मेरा मन भी कुछ खिन्न हो उठा है। आश्रम के शांत-एकांत जीवन का अभ्यस्त मेरा मन इस अनियंत्रित समूह से घबरा उठा है। पिताश्री से अनुमति लेकर सोने चलो।"

अनुमति लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वास-गृह में पहुंचते ही हेम-

जित ने श्रवणा को आलिगन-पाश में लेते हुए पूछा—"क्यों प्रिये! गिरिव्रज कैसा लगा ?"

"बहुत ही सुंदर, बहुत ही जीवंत; क्योंकि तुम साथ हो ? किंतु···!"

"किंतु क्या ?"

क्षण-भर के लिए श्रवणा कहीं खो गयी। उसने अपने-आपको हेमजित के वक्षस्थल पर पूरी तरह अवलंबित करते हुए कहा—"मनुष्य होकर मनुष्य को ही दास के रूप में रखने की प्रथा बहुत ही अमानुषिक है। मगध इतना प्राचीन देश है—गौरव-गरिमा से संपन्न, फिर यहां यह नारकीय कलंक तुम लोगों ने क्यों लगा रखा है ?

भट्टिय हेमजित कुछ देर तक श्रवणा को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में जकड़े मौन खड़ा रहा, जैसे वह उत्तर की तलाश कर रहा हो। फिर उसने श्रवणा को अपने वक्ष से अलग करके उसकी ठुड्डी पकड़ कर ऊपर की ओर करते हुए कहा—"यह सब यहां की तथाकथित सभ्यता की देन है। जब विदेशी सत्ता कहीं जाती है, सत्ताधारियों की संख्या नगण्य होती है। अपने शस्त्र की शक्ति और व्यूह-रचना की बुद्धि के बल पर, वे शत्रु को पराजित तो कर देते थे, लेकिन जब वहा आधिपत्य स्थापित करने की बात होती है, तब सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से क्रूर और अमानवीय पद्धतियों का सहारा लेना होता है। अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिए यहां मुट्ठी-भर आर्य क्रूरात्मा हो गये है। कहते है, यहा सबसे पहले गयआमूर्तरयस नामक प्रथम आर्य आज से हजारों वर्ष पहले इधर आये थे, उन्ही के नाम पर गया नगर बस गया। उन लोगों ने यहां के मूल निवासियों को अपने अधीन करने के लिए, दासता के बंधन में जकड़ दिया।—"कहने को तो भट्टिय ने उत्तर दे दिया किंतु उसके स्वर से ही लग रहा था कि वह इस तर्क से स्वयं प्रभावित नहीं है। श्रवणा उसके अंगों में सिकुड़ती हुई बोली—"मुझे तो दास प्रथा को देखते ही गिरिव्रज की व्यवस्था से विरक्ति हो गयी है। हम लोग भी आर्य हैं, किंतु हमारे तक्षशिला में यह प्रथा क्यो नही है ?"

"वहां आर्यों को अनार्यों से भय नहीं है; क्योंकि वहां संख्या में आर्य अनार्यों से अधिक हैं।···किंतु, तुम यहां आते ही इस पचड़े में क्यों पड़ गयीं ?···यह पुराना रोग है। ठीक होने में थोड़ा समय लगेगा। अभी जो

नया घाव तुमने दिया है, उसे भरने दो···!" यह कहकर भट्टिय ने श्रवणा को गोद में उठा लिया और ले जाकर पलंग पर लिटा दिया। वह झुककर श्रवणा के होठों पर अपने होठ रखने ही जा रहा था कि श्रवणा शील एव मान के समन्वित भाव से आरक्त होकर पलंग के दूसरी ओर छूटकर भाग खड़ी हुई। किंतु, श्रवणा को लेने के देने पड़ गये। हेमजित के हाथ में अचानक उसकी कंचुकी आ गयी। भागने के उद्यम में झटका लगा और कंचुकी की गांठ खुल गयी। निरवसना श्रवणा अपने संगमरमर से धवल स्वच्छ, उन्नत उरोजों को दोनों हाथों से ढककर वहीं बैठ गयी। हेमजित ने अपने पुनीत उन्माद को तृप्त करने के लिए श्रवणा को फिर से उठाकर अपने वक्ष से लगाया ही था कि बाहर से आने वाली चीख-पुकार सुनकर वह स्तंभित हो उठा। तुरंत ही श्रवणा को पलंग पर पड़ी चादर से ढककर वह स्वयं लपककर गवाक्ष के पास जा पहुचा। दूर शस्त्रागार से आग की भीषण लपटें उठते देखकर वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया।

"यह क्या हो गया ?"—श्रवणा ने भट्टिय के पास पहुंचकर चिंतातुर स्वर में पूछा—"वह क्या जल रहा है ?"

हेमजित धीरे से श्रवणा के कंधे पर अपना बायां हाथ रखकर आग की लपटों को देखता हुआ दुखी स्वर में बोला—"मगध का दुर्भाग्य, किसी ने पूरे शस्त्रागार में ही आग लगा दी। अब उसे कोई नहीं बचा सकेगा।"

"क्या शस्त्रागार पर यहा पहरा नहीं होता ?"—श्रवणा ने जिज्ञासा की।

"होता क्यों नहीं है, किंतु राजा और महामात्य ही जब देश के शत्रु बन जायें, तब प्रहरी क्या करेंगे ?" भट्टिय ने उदास होकर कहा। वह आग की लपटों को देखता-देखता ही बोला—"श्रवणा! मगध के द्वार पर गृह-कलह का झंझावात सिर पटक रहा है।"

"पटकने दो सिर ! हम-तुम मिलकर उस सिर के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। अभी चलो सोने। नींद आ रही है।"—श्रवणा ने हेमजित का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा। सुख के क्षण को गंभीर चिंतन में खोना अब उसे सह्य नहीं था।

दोनों पलंग पर जाकर सोने का उपक्रम करने लगे। दोनों का मन

आशंकाओं से उद्वेलित हो रहा था। भट्टिय हेमजित से ही आभास मिल गया था कि मगध के राजमहल में षड्यंत्र का बाजार गर्म है। लोग राजा के चारित्रिक पतन से दुखी थे और विदेशी महामात्य की रहस्यपूर्ण गतिविधियों से आतंकित। इधर श्रवणा भी मन ही मन आशंकित हो रही थी। उन आशंकाओं का कारण वह स्वयं भी नहीं जानती थी।

उसके मानस में क्रमहीन घटनाएं उभर रही थीं—जैसे तेंदुए का अचानक आक्रमण कर देना, कापालिक का हुर्र करके निकल जाना और शस्त्रागार का धू-धू करके जल जाना। इसका अर्थ उसकी समझ में नहीं आ रहा था। किंतु कहीं न कहीं से एक यह भी दृश्य उभर रहा था कि एक भयावह रिक्तता, एक असह्य क्रमहीनता उसके जीवन को घेरती जा रही है।



शस्त्रागार को जलता छोड़कर छद्मवेषी पुलिकसेन नगर के दक्षिण में स्थित श्मशान-भूमि की ओर चल पड़ा था। सूर्यास्त के बाद उस तरफ कोई भी नागरिक जाने का साहस नहीं करता था। वह क्षेत्र वीरान, बंजर और जन-शून्य था। कहीं-कहीं जंगली पौधे, कंटीले झाड़-झंखाड़, वकुल, जामुन, लकुच आदि के जंगली पेड़ उगे हुए थे। कहीं भूमि सपाट थी तो कहीं ऊबड़-खाबड़। बीच-बीच में टूटे-फूटे खंडहर भी थे। यहां भूत-पिशाचों की लीला-भूमि थी। यहां चांडालों का साम्राज्य था।

दाह-कर्म के लिए आये हुए व्यक्ति भी रात होने से पहले ही नगर में लौट आते थे। प्रातःकाल होने पर ही फूल चुनने के लिए दुखी परिवार के

सदस्य वहां आ पाते थे। जिस समय पुलिकसेन अपने घोड़े पर सवार उस क्षेत्र से होता हुआ आगे बढ़ रहा था, उस समय वहां बहुत-सी चिताएं जलकर राख हो गयी थीं और बहुत-सी जल ही रही थी। चिताओं के लाल-लाल शोले रात में भूत-पिशाचों की अगारे जैसी लाल-लाल आंखों से लग रहे थे। कहीं गीदड और कुत्ते लाशों को चीथ रहे थे और कहीं चिता के ठंडी होने की राह देख रहे थे। ऐसे भयावह, बीभत्स, वीरान क्षेत्र में इतनी रात को अकेले यात्रा करने वाला पुलिकसेन निःसंदेह अविश्वसनीय और रहस्यमय प्राणी था। मनुष्य योनि भी विचित्र योनि है। कदाचित् अभाव का दूसरा नाम ही मनुष्य है। जहां अभाव है वहां बेचैनी है, वहां पीड़ा है और वहीं रहस्य भी है। अभाव की पूर्ति के लिए मनुष्य न जाने क्या कुछ कर गुजरने को तैयार रहता है। और, अभाव तो सांसारिकता का पर्याय ही है—कभी प्रेम का अभाव तो कभी सत्ता का।

श्मशान-भूमि में बिखरे हुए चिथड़ों, घड़ों, शव की लोथों और झाड़-झंखाड़ आदि की चिंता किये बिना अश्वारोही पुलिकसेन बड़ी तेजी के साथ दक्षिण की ओर चला जा रहा था। उसका कृष्ण वर्ण का आरट्टी अश्व पसीने से लथपथ हो रहा था।

श्मशान-भूमि के समाप्त होते ही आम्रवन का क्षेत्र आरंभ होता था। इस आम के बगीचे में आने के कई रास्ते थे। निःसंदेह श्मशान-भूमि में होकर वहां बहुत शीघ्र पहुंचा जा सकता था। इसी आम्रवन में, अवकाश के क्षणों में रास-रंग में बिताने के लिए पुलिकसेन के कामाचारी पुत्र कुमार सेन ने बहुत सुंदर 'विहार-भवन—एकशालिक—बनवा रखा था। जब कभी कुमारसेन अवन्ति से गिरिव्रज आता था, तब वह अपना अधिकांश समय इसी एकशालिक में बिताया करता था। यहां वह बिना किसी बाधा-विघ्न के गणिकाओं और रूपाजीवाओं के साथ रंग-रेलियां मनाता, जल-केलि करता, रास-लीला का सुख लूटता और मांस-मदिरा की उत्तप्त लहरों से युक्त नदी में अपने को डुबाये रखता।

कुछ वर्ष हुए कुमारसेन ने अपने पिता पुलिकसेन के आदेश पर यह पूरा आम्रवन वक्रघोष को दान कर दिया था। वक्रघोष उस युग के तांत्रिकों के प्रमुख आचार्य थे। वे परम तांत्रिक भैरवाचार्य, पाताल-विवर वक्रघोष के

नाम से विख्यात थे। उनके नाम के आतंक से गिरिव्रज के ईंट-पत्थर तक कांपते थे, मनुष्यों की तो बात क्या !

वक्रघोष कभी श्मशान में ध्यानावस्थित मुद्रा मे बैठे देखे जाते थे तो कभी महाकाल शिव के भग्न मंदिर में तंत्र-सिद्धि में रत रहते थे। जब वे मुर्दों पर बैठे होते तो यह प्रचार किया जाता कि वे शव-साधन कर रहे हैं। जब वे कुमारी कन्याओं से घिरे होते थे, कहा जाता कि लता-साधन चल रहा है। जब मद्य, मांस, मुद्रा, मत्स्य और मैथुन की आवश्यकता होती, तब वे इन पंचमकारों की सिद्धि के लिए एकशालिक में जा पहुंचते थे।

उस वीरान भयावह बंजर क्षेत्र के दूसरे छोर पर, बरसाती नदी के किनारे, महाकाल शिव का प्राचीन मंदिर था। इस जन-शून्य क्षेत्र मे मंदिर की देखभाल भी नही हो पाती थी। चारो ओर जंगली घास-पात, झाड़-झंखाड़ उग आये थे। वहां सांप, बिच्छुओं की भरमार थी। कोई भी नागरिक पूजा-अर्चना के लिए उधर जाने का साहस नहीं करता था। वक्रघोष को जब कभी सिद्धि का चमत्कार प्रदर्शित करने की इच्छा होती, तो वे उसी मंदिर में जा पहुंचते। यह पूरा क्षेत्र ही रहस्यमय एवं भयावह कथा-कहानियों का उत्स बन कर कुख्यात हो चुका था।

एकशालिक के निकट पहुंचकर पुलिकसेन ने अपने घोड़े की चाल धीमी कर दी। फिर भी, घोड़े की टाप से शांत आम्रवन प्रकंपित हो उठा। पुलिकसेन ने क्षण-भर के लिए घोड़े को रोक लिया और सावधानीपूर्वक चारों ओर आहट लेने के उद्देश्य से देखा। कही कोई नही था। आश्वस्त होकर उसने अचानक ही अपने घोड़े को उछालकर दौड़ा दिया। घोड़े की टाप एकशालिक की दीवार से टकरायी। तभी एकशालिक के ऊपर गवाक्ष से एक चेहरा उभर आया। उस चेहरे की दो बेधक आंखों ने पुलिकसेन के घोड़े को शिव मंदिर की ओर जाते देखा। पुलिकसेन को इस बात का आभास तक नहीं मिला, बल्कि वह सोच भी नहीं पाया कि कोई ऐसा भी दुर्धर्ष व्यक्ति है, जो इस भयावह निर्जन स्थल में इतनी रात गये अकेला उस पर दृष्टि रख रहा होगा।

पुलिकसेन निश्चिंत होकर मंदिर की ओर बढ़ा जा रहा था और एकशालिक के गवाक्ष पर उभरा हुआ चेहरा भी तत्क्षण ही नीचे उतर कर घोड़े

पर सवार हो एकशालिक से निकल आया। वह भी उसी ओर चल पड़ा, जिधर पुलिकसेन बढ़ रहा था।

मंदिर के पास पहुंच कर पुलिकसेन घोड़े से उतर पड़ा और चारों ओर देखने के बाद मुंह से विचित्र पक्षी की ध्वनि करने लगा। पक्षी की ध्वनि सुनकर एक काला दास न जाने किस लता-मंडप से निकल कर घोड़े के पास आ खड़ा हुआ। पुलिकसेन अपने घोड़े की रास दास के हाथ में देकर मंदिर के आंगन में प्रविष्ट हुआ।

आंगन में भी लता-गुल्म उगे हुए थे। ईंट और पत्थर के टुकड़े इधर-उधर पड़े हुए थे। कहीं-कहीं दीवारें गिरी हुई थी। वह अनेक आंगनों से होकर दायें-बायें होता हुआ, मंदिर के मुख्य भाग की ओर बढ़ रहा था कि तभी कई भाले एकसाथ उसके वक्षस्थल, ग्रीवा और मस्तक पर भिड़ गये। आक्रमणकारी अंधेरे में साक्षात् कालभैरव जैसे दिख रहे थे। पुलिकसेन विभिन्न विचारों में डूबा हुआ चला जा रहा था, इसलिए अचानक यह घातक अवरोध देखकर चौंक गया। किंतु क्षण-भर में ही वह चैतन्य हो गया और कड़क कर बोला—"मैं हूं मूर्खो, अवन्ति का शासक और मगध का महामात्य पुलिकसेन। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि तुम लोग सदा सतर्क और सावधान रहते हो।"

पुलिकसेन का स्वर सुनते ही सारा अवरोध दूर हो गया। पुलिकसेन आगे बढ़ चला। एकशालिक से निकलकर पीछा करने वाला घुड़सवार मंदिर के भीतर न जाकर बाहर-बाहर ही उसकी परिक्रमा करता हुआ, मंदिर के अगले भाग की ओर निकल गया।

पुलिकसेन बेरोक-टोक मंदिर के गर्भ-गृह में जा पहुंचा, जहां भैरवाचार्य वक्रघोष कापालिकों से घिरे व्याघ्र-चर्म पर ध्यानावस्थित बैठे थे। कटि-प्रदेश के नीचे काला कंबल पड़ा हुआ था। रुद्राक्ष, शंख की गुरियों और लाल वस्त्र से सिर की रूखी जटाएं बंधी थीं। ललाट पर चिता-भस्म लगी हुई थी। गले में रुद्राक्ष और हड्डियों की माला लंबी दाढ़ी के नीचे से लटक रही थी। आसन के पीछे श्वेत खड़ाऊं का जोड़ा रखा हुआ था। सामने नर-कपाल में कुछ पदार्थ भरा हुआ था। पुलिकसेन वहां पहुंचकर चुपचाप खड़ा हो गया। भैरवाचार्य आंखें बंद किये-किये ही बोले—

"राजा की वास्तविक शक्ति शस्त्रागार में नहीं, जनपद के विश्वास में जन्म लेती है—पलती है। जब तक उस विश्वास को खंडित नहीं करोगे, तब तक सफलता की आशा करना बिलकुल व्यर्थ है।"

"ठीक कहते हैं आचार्य! उस दिशा में मैं प्रयत्नशील हूं, किंतु विश्वास का आधार सामाजिक चेतना है और सांस्कृतिक धारा उसे सिंचित करती है और वहां आप ही मेरी सहायता कर सकते हैं। सत्ता का प्रभाव भला समाज और संस्कृति पर किस प्रकार पड़ सकता है ?"—पुलिकसेन बहुत ही विनीत स्वर में बोला।

थोड़ी देर के लिए वहां शांति का साम्राज्य छा गया। मदिर के गर्भ का अंधकार उल्काओं के प्रकाश से खंडित होता रहा। आंगन के एक ओर भवानी की विराट् कृष्णमूर्ति टुकुर-टुकुर ताकती रही। भैरवाचार्य ने लाल-लाल आंखें खोल कर पुलिकसेन की ओर देखा। उनके लटकेहुए होंठ गुस्से में मोटे होकर और लटक गये। बोले—"भैरवी का खप्पर रिक्त है रे ! मूलाधार चक्र की साधना के लिए पंचतत्व-साधन जुटाने का यत्न कर !"

"जैसी आज्ञा आचार्य।"

"राजा का सर्वनाश होगा। भैरवी को त्रस्त करता है। समस्त षोड-षियों को क्षत-यौवना करने पर तुला हुआ है।"

"ठीक कहते हैं आचार्य ! किंतु, ऐसा कब तक चलता रहेगा ? मेरी पूजा का प्रसाद मेरे पुत्र को कब प्राप्त होगा ?"

"शीघ्र होगा वत्स ! किंतु तुझे भवानी का कार्य पूरा करना होगा।"

"आज्ञा कीजिए आचार्य ! मैं प्राण देकर भी वह काम पूरा करूंगा।"

महाकाल को बलि चाहिए—अक्षत-यौवना षोडषी की बलि। समृद्ध सामंत श्रेणिय विश्वदेव की एकमात्र सुंदरी कन्या विश्वतारा इस पुनीत कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। बोल—कर सकेगा ?"

'क्यों नहीं आचार्य !"

"एक काम और है।"

'आज्ञा !"

"पाखंडी नारायण स्वामी का विनाश ! यदि तूने ये दोनों कार्य संपन्न कर दिये तो मगध ही नहीं, संपूर्ण आर्यावर्त, सुवर्ण-भूमि और ताम्रपर्णी

तेरे एकछत्र साम्राज्य में सिमट आयेंगे। यह मेरा—परम तांत्रिक पाताल विवर भैरवाचार्य वक्रघोप का वरदान है। भवानी की प्रेरणा से शस्त्रागार जलाकर तूने अपना ही हित किया है। मेरा श्राप क्रियान्वित हुआ। बार्हद्रथ-वंशी राजा रिपुंजय की शक्ति दो युग बाद भी नहीं लौटेगी। अब जा, शेष कार्य भी संपादित कर।"

मगध-महामात्य पुलिकसेन, उत्फुल्ल होकर, आम्र-कानन से नगर की ओर लौटे। ब्राह्म मुहूर्त्त की बेला थी। दूर पर मंदिरों से उठने वाला घंट-निनाद नगर के बाहर श्मशान-भूमि तक में जीवन का संकेत गुंजरित कर रहा था। महामात्य पुलिकसेन ने, नगर में न जाकर, नगर के बाहर-बाहर पूर्व की ओर अपना अश्व मोड़ दिया। सूर्योदय में विलंब था। लेकिन आकाश रक्त-रंजित हो उद्भासित हो उठा था। पुलिकसेन का कौशेय आच्छादनक पीठ पर लहरा रहा था और दूर से, उनके शिरो-भूषण में खचित चूड़ामणि-खंड चकाचौंध उत्पन्न कर रहा था। किंतु, विधाता का विधान कुछ और ही था।

श्रवणा और हेमजित पूरी रात तक जागते रहे। उनके चिंतातुर मन में विभिन्न आशंकाएं तरह-तरह के चित्र खींचती रहीं। मालूम नहीं वे कब जाकर सोये कि समय पर हेमजित की नींद भी नहीं टूटी। श्रवणा ने जब झकझोर कर जगाया, तब जाकर उसकी नींद खुली। ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर नित्य विधान से निवृत्त हो जाने का वह अभ्यस्त था। किंतु, पथ के श्रम, शयन में असाधारण रूप से विलंब और मानसिक उद्वेलन के चलते, जीवन में पहली बार, सूर्य निकलने तक सोता रहा। श्रवणा ने झकझोर कर कहा—

"बैठक में कोई व्यक्ति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है! कहता है, आचार्य नारायण स्वामी···"

"हैं!"—आचार्य नारायण स्वामी का नाम सुनते ही हेमजित पलंग से उछलकर नीचे खड़ा हो गया और बोला—"श्रवणा प्रिये! मेरे अस्त्र-शस्त्र लाओ। तब तक मैं मुह-हाथ धो लूं। मुझे कल ही आचार्यपाद के दर्शन कर आने चाहिए थे। बड़ी भूल हो गयी।"

हाथ-मुंह धोकर, वस्त्र धारण करके हेमजित बाहर गया, क्षण-भर बाद ही भीतर लौटकर श्रवणा को आलिंगन-बद्ध करके बोला—"आचार्य ने किसी आवश्यक कार्य से मुझे तुरंत बुलाया है। उधर से ही मुझे महाराज की

अभ्यर्थना करने, दरबार में जाना है। अतएव आने में देर हो सकती है।"

"कोई चिंता नहीं प्राण! मैं संवर्त तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूंगी।" श्रवणा हंसते नयन एवं अधरों से रस छलकाती हुई बोली। भट्टिय ने उन्हें चूमकर पूछा—"सच ?"

"सच नहीं तो क्या झूठ ? मेरा-तुम्हारा दिल हवा की तरह है, जिसे देखा नहीं जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है।"

"और यदि संवर्त ही तुम्हें आत्मसात कर ले तो ?"

"ऐसा हो नहीं सकता। मृत्यु को भी मेरे आदेश का पालन करना होगा। तुम्हारे दर्शन किये बिना, मेरे प्राण मुझे सूना नहीं छोड़ सकते। चाहो तो परीक्षा ले लेना।"

"अच्छा-अच्छा! तब तक काव्यात्मक चिंतन में डूबो, मैं अभी आया।"

हेमजित बाहर निकल आया। किंतु, न जाने क्यों उसका मन आशंकाओं से घुटने लगा था। वह बारंबार घूम-घूमकर पीछे देखने लगा। मन की इस आकस्मिक आसक्ति पर उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। घूम-घूमकर देखने का क्रम तब तक चलता रहा जब तक कि उसका प्रासाद उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गया।



गिरिव्रज नगर के चारों ओर पांच पहाड़ियां थीं। पहाड़ियां नगर के बाहर दूर-दूर तक फैली हुई थीं। नगर के बाहर ऋषिगिरि पर्वत के ऊपर वासुदेव कृष्ण का प्राचीन मंदिर था। लोक में प्रसिद्ध था कि जब श्रीकृष्ण

छद्मवेश में भीम और अर्जुन के साथ मगध सम्राट जरासंध का बध करने के लिए मगध पधारे थे, तब इसी पर्वत पर उन्होंने विश्राम किया था, और उस स्थान पर उन्हीं दिनों जरासंध के कारागार से मुक्त होने वाले राजाओं ने एक मंदिर और मठ बनवा दिया था। सत्य क्या था, कोई नहीं जानता।

मठ क्या था—अच्छा-खासा दुर्ग ही था। मठ के प्रांगण एवं दीवारें कई खंडों में बंटे हुए थे और दूर-दूर तक पहाड़ी पर फैले हुए थे उसमें सैकड़ों प्रकोष्ठ, अलिंद, वीथी-पथ और गर्भ-गृह बने हुए थे। ठीक मध्य में ऋषिगिरि की चोटी पर विशाल मंदिर था जिसका गगनचुंबी स्वर्ण-शिखर कोसों दूर से दिखायी देता था। उस मंदिर और मठ की मर्यादा का उल्लंघन करने का साहस किसी में नहीं था। मंदिर के पुरोहित ही राजपुरोहित भी हुआ करते थे।

उन दिनों मंदिर के मुख्य पुरोहित थे पूज्यपाद आचार्य नारायण स्वामी। नारायण स्वामी महर्षि वशिष्ठ की तरह पूजित थे।

सूर्योदय हो चुका था। पूज्यपाद नारायण स्वामी मंदिर में वासुदेव कृष्ण की मूर्ति के पास ध्यानावस्थित हो बैठे थे। पूजन-विधि संपन्न हो चुकी थी। फिर भी पूज्यपाद आसन से नहीं उठे। यह एक असाधारण एवं अभूतपूर्व घटना थी। आचार्य के अंतेवासी, अन्य शिष्य तथा मंदिर के अन्य पुजारी गण इस घटना से चिंतित हो उठे थे। उनके मन में आशंकाएं घिर आयी थी। इस तरह आधा प्रहर व्यतीत हो गया। पूज्यपाद ध्यान में ही डूबे रहे। आज तक मंदिर के किसी सभ्य को आचार्य के प्रति ऐसी अनुभूति नहीं हुई थी। आचार्यपाद के नित्य-विधान में पल-भर का व्यतिक्रम भी किसी ने कभी नहीं देखा था। एक प्रहर बीत चला। सभ्य गण अत्यधिक चिंतित हो उठे। किंतु जिज्ञासा प्रकट करने का साहस किसी को नहीं हुआ। सभी भय और आशंका से मंदिर के प्रांगण में इधर-उधर बैठे या खड़े रहे।

तभी मंदिर के द्वार पर पदचाप की ध्वनि सुनायी पड़ी। सबने देखा—आचार्य का परम प्रिय अंतेवासी वरुणदत्त पसीने से लथपथ मंदिर के प्रांगण को पार कर मुख्य गर्भ-गृह की ओर तेजी से चला जा रहा था।

वरुणदत्त गिरिव्रज के सुविख्यात सामंत क्षत्रिय कुलावतंस चन्द्र मिश्र का पुत्र था। शस्त्र-शास्त्र-नीति आदि की शिक्षा में निष्णात होने के बाद

भी वह आचार्यपाद की चरण-सेवा में ही लगा रहा। यह घटना भी अपने-आप में अभूतपूर्व थी।

आचार्यपाद ने कदाचित् पद-ध्वनि पहचान ली थी क्योंकि तत्क्षण ही उन्होंने अपनी आंखें खोल दीं और मूर्ति की ओर टकटकी बांधे-बांधे पूछा—

"क्या समाचार है आयुष्मान् ?"

'भीतरी प्रांगण में आर्य हेमजित आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं आचार्य।"

"साधु आयुष्मान्" कहकर आचार्यपाद ने वासुदेव कृष्ण की मूर्ति को करुणापूर्ण नेत्रों से देखा मानो अपने मन की पीड़ा के लिए भगवान को साक्षी रख रहे हों। वे उठकर प्रांगण की ओर चल पड़े। शिष्यों एवं पुजारियों का भय दूर हुआ।

भट्टिय हेमजित भीतरी प्रांगण के एक किनारे खड़े होकर गवाक्ष से पहाड़ी शृङ्खला की रमणीय छटा निहार रहा था। मंदिर के भीतर से बाहरी प्रांगण में आने वाले द्वार की ओर उसकी पीठ थी। खड़ाऊं की ध्वनि सुनते ही वह मुड़ा तो सामने आचार्यपाद की गभीर तेजस्वी मूर्ति दिखायी दी। हेमजित ने आचार्यपाद की आंखों में देखा—वहां वर्तमान का विषाद-पूर्ण चित्र परिलक्षित हो रहा था। उसने मस्तक नवाकर आचार्यपाद की वंदना की। नारायणस्वामी ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में पूछा—

"गिरिव्रज सकुशल तो आ पहुंचे आयुष्मान् ? तक्षशिला में वयस्क भूरिश्रवा स्वस्थ तो हैं ?"

भट्टिय संकोच से सिकुड़ गया। अति विनीत होकर बोला—

"आचार्य क्षमा करें ! मैं स्वयं ही चरण-सेवा में आने वाला था कि आपका संदेश मिला। आचार्य भूरिश्रवा स्वस्थ हैं। उनका आदेश है कि मैं आपके ही मार्ग-निर्देशन में अपने भविष्य का कर्त्तव्य निर्धारित करूं।"

"आचार्य भूरिश्रवा भविष्य-द्रष्टा हैं आयुष्मान्। मगध के संत्रस्त जन को तुम्हारे त्याग और निष्ठा से ही अभय मिल सकता है। राज्य-लिप्सा की कीच में समस्त मागध-जन को घसीटने की और उन्हें धोखाधड़ी से स्वार्थजनित रक्त-कुंड में डुबाये रखने की अनधिकार चेष्टा दिन-प्रतिदिन बलवती होती जा रही है। धर्म का विकृत स्वरूप जनमानस को मूढ़ता, अमानुषिकता और अराजकता के मार्ग पर बड़ी तेजी से लिये चला जा रहा

है। इसका प्रतिकार करना ही होगा। आवश्यकता है अनुशासनबद्ध विवेकशील त्यागी युवकों की !" आचार्यपाद की वाणी गंभीर एवं ओजस्वी थी। भट्टिय प्रभावित हुआ। किंतु वह किसी उद्देश्य पर नहीं पहुंच सका। आचार्यपाद कदाचित् हेमजित की मनोभावना को समझ गये। उन्होंने भट्टिय के दायें कंधे पर हाथ रखकर पूछा—

"तुमने यह तो सुन ही लिया होगा कि कल रात मगध राज्य का शस्त्रागार जलकर राख हो गया।"

"सुना ही नहीं, अपनी आंखों से उसे धू-धू करके जलते देखता रहा।"

"जानते हो कि यह सब किसने किया और क्यों किया ?"

"राज्याध्यक्षों द्वारा प्रेरित नगर के दुष्टों एवं दस्युओं का यह कार्य था आचार्य।"

"नही। यह कार्य मगध जनपद के सर्वोच्च पद पर विराजमान एक स्वार्थांध राज्याधिकारी का था।"

"जी ?"

"हां, आयुष्मान् ! यह सत्य है। किंतु, अभी जिज्ञासा की नहीं, योजनाबद्ध ढंग से कर्त्तव्य करने की घड़ी है। आज ही तुम्हें गिरिव्रज से पाटलिग्राम के लिए प्रस्थान कर देना है—सर्वथा एकाकी।"

"किंतु···!" हेमजित संकोचवश वाक्य पूरा नही कर पाया। उसे राजमहल में जाकर सम्राट को प्रणाम निवेदित करना था और उसकी श्रवणा उसे आसानी से मुक्त नहीं करने वाली थी। आचार्य ने शांत स्वर में कहा—

"तुम्हें आज सम्राट से मिलना है—यही न ? उनसे मिलने के बाद ही सूर्यास्त होने से पूर्व पाटलिग्राम के लिए प्रस्थान कर दो। वहां का तुम्हारा कार्यक्रम मै पहले से ही निर्धारित कर चुका हूं। इसकी सूचना भी भेज चुका हूं।"

"किंतु···"

"आयुष्मान् भट्टिय !" आचार्यपाद का स्वर आदेशात्मक हो उठा—

"तक्षशिला की शिक्षा से क्या तुम मात्र प्रश्न करना ही सीख पाये हो ?"

"धृष्टता क्षमा करें आचार्य ! मैं आज ही पाटलिग्राम प्रस्थान कर दूंगा। मेरा इतना ही निवेदन था कि आचार्य भूरिश्रवा ने सुविख्यात वैज्ञानिक दंडनीति विशारद आचार्य औदुम्बरायण का उल्लेख किया था और आदेश दिया था कि मैं उनके दर्शन करके शिक्षा का व्यवहार पक्ष उनसे ही सीखूं।"

"समय आने पर उसकी व्यवस्था अपने-आप हो जायेगी। तत्काल तुम्हारा यही कर्त्तव्य हुआ कि पाटलिग्राम से आधा योजन दूर गंगा-गंडकी के संगम स्थल पर पहुंचो। वहां रेणुग्राम के पश्चिम में भैरवी का पुराना मंदिर है। पीपल का पेड़ है। तुम्हें उस स्थल पर कल आधी रात बीतते ही पहुंच जाना है। उस घड़ी में वहां तुम्हें कोई सामान्य नागरिक नही मिलेगा, केवल एक ब्राह्मण भिक्षु तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होगा। 'संकेत शब्द' कह देने पर वह तुम्हें यथास्थान पहुंचा देगा। मेरी-तुम्हारी भेंट गोपनीय रहे। सौभाग्यवती श्रवणा को भी यह मालूम नहीं हो कि तुम कहा जा रहे हो और तुम्हें किसने जाने की प्रेरणा दी है।"

"आप निश्चिन्त रहें आचार्य !"

"मैं आश्वस्त हुआ वत्स !" इसके पश्चात 'संकेत शब्द' ग्रहण कर भट्टिय ने आचार्य को प्रणाम करके वहां से प्रस्थान किया।

रास्ते में हेमजित विधाता के विधान पर विचार करके मन ही मन मुस्कराता रहा। उसे एक ही चिंता थी कि वह श्रवणा के प्रेम को किस प्रकार दूर कर सकेगा ? श्रवणा तो वियोग की बात तक भी नहीं सह सकेगी और उसके साथ झूठ बोलना भी संभव नहीं है।



धवल-गृह के विशाल मंडप में मगध के राज्याधिकारी यथास्थान विराज-मान थे। महाराज रिपुंजय के पधारने का समय कब का व्यतीत हो चुका था। मगध महामात्य पुलिकसेन राजसिंहासन के निकट दाहिनी ओर संगमर्मर की चौकी पर रखे एक स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे थे और मौल-सेनाध्यक्ष देवमित्र से हंस-हंसकर बातचीत कर रहे थे। ऊब एवं खीझ के भाव सभी सभ्यों, राज्याधिकारियों एवं सामंतों के मुखमंडल पर परि-लक्षित हो रहे थे। जब भट्टिय हेमजित ने वहां मंडप में प्रवेश किया तब सब लोगों की दृष्टि उसकी ओर उठ गयी। बहुत कम लोग थे जो उसे पहचान पाये। पिछली रात उसके सम्मान में आयोजित समारोह में जो लोग सम्मिलित हुए थे, बस केवल वे लोग ही हेमजित को देखकर मुस्क-राते रहे। राजसभा में उपस्थित अन्य सभ्यों ने हेमजित को जिज्ञासा-मिश्रित उपेक्षा से देखा।

भट्टिय हेमजित ने सैनिक रीति से सभ्यों की अभिवंदना करके अपने पिता के श्रेणिय आसन पर स्थान ग्रहण किया।

"तुम्हारा परिचय?" स्वयं महामात्य पुलिकसेन ने प्रश्न किया, यद्यपि वे हेमजित को भली भांति पहचान गये थे।

भट्टिय प्रश्न सुनकर चौंक उठा। उसने आर्यभट्ट की ओर देखकर उत्तर दिया—

"मैं परम पूज्य महाकुलीन परम भट्टारक श्रेणिय विश्वदेव का पुत्र

एवं विश्व-विश्रुत तक्षशिलीय आचार्य भगवान भूरिश्रवा का शिष्य भट्टिय हेमजित हूं। तक्षशिला से स्नातक होकर...।" ठीक है, शेष बातें मुझे विदित हैं।

महामात्य ने बीच ही में अपमानजनक ढंग से बात समाप्त कर दी। भट्टिय ने इस अभद्रता के पीछे निश्छलता का अभाव लक्षित किया। फिर भी वह शांत बना रहा। मगध की राजनीतिक स्थिति से वह धीरे-धीरे परिचित हो चला था।

मंडप में, पुनः प्रतीक्षा होने लगी। उपस्थित सभ्य एक-दूसरे से वार्तालाप में समय व्यतीत करने लगे कि तभी प्रतिहारी ने घोषणा की—"परम भट्टारक परम शैव परमेश्वर परमपाद बार्हद्रथ वंश कुलावतंस वसुकुल गौरव मगधपति महाराज रिपुंजय पधारते हैं।"

सब लोग आसन से उठ खड़े हुए। महाराज रिपुंजय रीछ जैसी चाल में आये और आर्यपट्ट पर बैठ गये। भट्टिय ने उनकी अभिवंदना करके अपना परिचय दिया। किंतु, महाराज ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वे भट्टिय को मात्र घूरते रहे। महामात्य कदाचित् ऐसा अवसर ढूंढ़ रहे थे। उन्होंने उठकर भट्टिय का फिर से परिचय देकर निवेदन किया—

"इन दिनों मगध-चम्पा की सीमा पर दस्युओं ने बहुत ही उपद्रव मचा रखा है। वहां अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। अतएव अमात्य परिषद् ने निश्चय किया है कि भट्टिय हेमजित को मगध-अंग सीमा की सुरक्षा के लिए पांच सहस्र सैनिकों के साथ तत्काल ही भेज दिया जाय। मुझे विश्वस्त सूत्र से सूचना मिली है कि हेमजित शस्त्रास्त्र चलाने और व्यूह रचना में पारंगत हैं।"

भट्टिय यह प्रस्ताव सुनते ही चौंक पड़ा। उसके लिए आचार्यपाद का आदेश सर्वोपरि था। वह वचनबद्ध भी था। इसके अतिरिक्त महामात्य के हाव-भाव में उसे कुटिलता का आभास पहले ही मिल चुका था। उसने उठकर महाराज से निवेदन किया—"महाराज, मेरी धृष्टता क्षमा करें। आज ही मुझे एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना है। मैं सचमुच ही लज्जित हूं कि राज्य-सेवा के गौरव से अपने को तत्काल वंचित कर रहा हूं। किंतु, अपना कार्य संपन्न करते ही मैं महाराज की सेवा में उपस्थित

होऊंगा। फिर जो भी आदेश मिलेगा, उसका पालन करके मैं गौरवान्वित होऊंगा।"

"आदेश का उल्लंघन राजद्रोह को परिलक्षित करता है भट्टिय हेमजित !" महामात्य पुलिकसेन ने कड़े स्वर में चेतावनी दी। महाराज रिपुंजय मात्र टुकर-टुकर देखते रहे जैसे उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा हो। भट्टिय ने संयत स्वर में प्रतिवाद किया—

"मैं मगध का स्वतंत्र नागरिक हूं, इसके अतिरिक्त श्रणिय-सदस्य हूं। श्रेणिय बल के विधान के अनुसार एवं जनपदीय नियम के अधीन मुझे यह अधिकार प्राप्त है कि चाहे कोई राजपद स्वीकार करूं या उसे ठुकरा कर भिक्षाटन करूं या सार्थवाद की राह पकड़ूं। मैं महामात्य का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे नायक पद के उपयुक्त समझा। किंतु अभी मैं लाचार हूं।"

"भट्टिय ठीक कहते हैं।" इस बार सम्राट रिपुंजय ने जैसे नींद से जगकर कहा। महामात्य होठ चबा कर रह गये। क्षण-भर राजसभा के मंडप में शांति रही कि तभी नगराध्यक्ष ने निवेदन किया—

"कल रात्रि को शस्त्रागार जलाने के अभियोग में तीन सौ अभियुक्त बाहर अलिंद में उपस्थित हैं। यदि महाराज की आज्ञा हो तो···"

"नहीं-नहीं, यहां कोलाहल उत्पन्न करने से क्या लाभ? उन सबको जीवित जला दिया जाय।" महाराज रिपुंजय ने ऊब के स्वर में आदेश दे दिया।

भट्टिय इस मत्स्य-न्याय को देखकर कांप उठा। तक्षशिला के स्वच्छंद-स्वतंत्र वातावरण में आठ वर्ष तक पलने वाला व्यक्ति इस तरह की भयावह क्रूरता को निश्चय ही सहन नहीं कर सकता था। फिर तक्षशिला में संघ-शासन की मर्यादा स्थापित थी, जहां न्याय करते समय दोनों पक्षों को अपनी बात कहने और तर्क देने का अवसर प्रदान किया जाता था। सम्राट रिपुंजय की निरंकुश अनार्य-प्रवृत्ति का प्रतिरोध करना ही होगा—ऐसा सोचकर उसने शांत भाव से उठकर निवेदन किया, "महाराज की सेवा में मेरी प्रार्थना है कि इस कांड के कार्य-कारण की पूरी तरह छान-बीन करने के पश्चात ही दंड का विधान किया जाय। मेरे तुच्छ विचार में यह समुचित नहीं प्रतीत होता कि कथित अपराधियों को सफाई देने का अवसर

दिये बिना ही एकसाथ तीन सौ नागरिकों को जीवित जला डालने की आज्ञा दे दी जाये।" भट्टिय के इस कथन का सभा मंडप में वज्रपात का सा असर हुआ। भट्टिय के साहस पर सभी सभ्य सन्नाटे में आ गये। किंतु महाराज के मुखमंडल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे पूर्ववत् शून्य दृष्टि से देखते रहे। महामात्य पुलिकसेन की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। गरज कर बोले—

"बाह्यास्थान मंडप में आकर राजा को सम्मति प्रदान करने का अधिकार मगध साम्राज्य में किसी नागरिक को प्राप्त नही है। बाह्यास्थान मंडप में इस तरह मर्यादा का उल्लंघन करने वालों के लिए मगध का दंड विधान बहुत ही कठोर, अंध और सक्षम है। महाराज से मेरा निवेदन है कि इस धृष्ट तरुण को बाह्यास्थान मंडप से बलपूर्वक निकाल बाहर करने के आदेश पर अपनी अनुमति प्रदान करें।"

यद्यपि समिति और परिषद् सर्वोपरि थी और बाह्यास्थान मंडप में उपस्थित सभी सभ्यों को अपना विचार प्रकट करने का अधिकार था। किंतु, मगध में समस्त परंपराएं खंडित हो चुकी थीं। इसलिए बहुत-से लोग एकसाथ बोल उठे—"हां-हां, यह बहुत प्रलापी दीखता है। महामात्य का परामर्श समुचित है। इसे शीघ्र निष्कासित किया जाय।" महाराज ने सहमति प्रकट की। तत्क्षण ही भट्टिय ने म्यान से खड्ग निकाल कर गर्जना की—

"सावधान ! जब तक तक्षशिला के स्नातक के हाथ में खड्ग और तुणीर में बाण है, इस तुच्छ मंडप में क्लीव आततायी अपनी निर्वीर्यता का थोथा प्रदर्शन ही कर सकते है। राजा कदर्य और कर्तव्यच्युत हो गये हैं इसलिए मैं राजाज्ञा के प्रतिरोधस्वरूप स्वयं यहां से चला जाता हूं। किंतु, सावधान जो मेरा पीछा करेगा वह काल-कवलित हुए बिना नहीं रहेगा।" इतना कहकर हेमजित तेज गति से बाह्यास्थान मंडप के बाहर हो गया। भट्टिय के चले जाने पर महामात्य की भ्रमित तंद्रा लौटी। वे चीख उठे—"व्याघ्रक ! कुछ योद्धाओं के साथ इस राजद्रोही का पीछा करो और जीवित या मृत बंदी बनाकर मेरे सामने उपस्थित करो।"

व्याघ्रजित आदेश पाते ही बाहर की ओर लपका। अलिंद में अश्वा-

रोही सैनिक सन्नद्ध खड़े थे। बीस अश्वारोहियों ने भट्टिय का पीछा किया। लेकिन भट्टिय का कम्बोजी अश्व अश्व नही था—अश्वतर में भी उत्तम था—विद्युत था।

गिरिव्रज से पांच योजन दूर पहुंचते-पहुंचते भट्टिय ने अपने अश्व पर बैठे-बैठे ही छह अश्वारोहियो को बाण से बेधकर स्वर्गधाम पहुंचा दिया और सात योजन पहुंचते-पहुचते केवल आठ अश्वारोही बच रहे। व्याघ्रजिन ने अनुभव किया कि मृत्यु को जीतना संभव है किंतु, इस जीवित विद्युत को स्पर्श कर पाना भी असंभव है। वह भट्टिय का पराक्रम देखकर चकित एवं भयभीत हो उठा। शेष अश्वारोही सैनिकों के साथ गिरिव्रज लौट जाने में ही उसने कल्याण देखा।

गिरिव्रज से पाटलिग्राम की दूरी लगभग ग्यारह योजन थी। राजसैनिकों को चकमा देने के लिए भट्टिय गिरिव्रज से सीधा पूर्व की ओर भागा। इस तरह वह पाटलिग्राम से प्रायः पंद्रह योजन दूर चला गया। समय का अभाव था। रात्रिकाल में ही पाटलिग्राम पहुंच जाना अनिवार्य था अन्यथा गोपनीयता का निर्वाह नहीं हो पाता। अतएव किंचित् व्यग्रता से भट्टिय ने मनमें ही हिसाबकिया तो उसकी चिंता दूर हुई। घोड़ा अपनी सामान्य गति पर इष्ट लक्ष्य की ओर दौड़ चला और भट्टिय का मन त्वरित गति से क्षण-भर में ही गिरिव्रज में श्रवणा के पास पहुंच गया। चिंता से उसके होठ सिकुड़ गये। श्रवणा; बहन विश्वतारा और वृद्ध पिता के संकटग्रस्त होने की कल्पना मात्र से भट्टिय का हृदय हाहाकार कर उठा। किंतु, अश्व पाटलिग्राम की ओर ही भागता रहा।



महामात्य पुलिकसेन बड़ी बेचैनी से अपने महल की मुखशाला में चक्कर काट रहे थे। रह-रहकर वे थोड़ा रुककर बाहरी द्वार की ओर देख लेते थे। उनकी आकुलता में हर्ष था एवं विषाद भी, आशा थी एवं आशंका भी। भैरवाचार्य के आदेश का इस सुगमता से पालन हो जायेगा—इसकी उन्होंने कल्पना नहीं की थी।

व्याघ्रजिन भट्टिय से पराजित होकर डरता-सहमता महामात्य के पास लौटा था। महामात्य ने जब सुना कि व्याघ्रजिन बारह सैनिकों को गंवाकर भी भट्टिय को बंदी नहीं बना सका तब वे क्रोध से पागल हो उठे। किंतु अचानक ही इस पराजय में उन्हें आशावान भविष्य उदित होता हुआ प्रतीत हुआ। अतएव मन ही मन उन्हें जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन कर सकना कठिन है। राजद्रोही एव हत्यारे भट्टिय के परिवार को बंदी बनाने का ठोस आधार अपने-आप उपस्थित हो गया। जिस विश्वतारा को हथियाने के लिए उन्हें न जाने कितना बड़ा षड्यंत्र रचना पड़ता, न जाने कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता—वह विश्वतारा अब उनकी मुट्ठी में अपने-आप आकर जकड़ गयी। यह सब सोचकर पुलिकसेन की बाछें खिल गयीं। छूटते ही उन्होंने व्याघ्रजिन को आदेश दिया : "हेमजित ने राजद्रोह किया है। यह अक्षम्य अपराध है। जब तक हेमजित आत्मसमर्पण नहीं करता, तबतक उसके पिता विश्वदेव और उसकी बहन विश्वतारा बंदी-गृह के मेहमान रहेंगे। इन्हें अभी तुरंत बंदी बनाने की व्यवस्था करो।"

व्याघ्रजिन आदेश का पालन करने के लिए उसी समय रवाना हो गया था। महामात्य अभी उन्हीं बंदियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके मन में आतंक भी उत्पन्न हो जाया करता कि कहीं भट्टिय अपने घर वापस न लौट आया हो। वे भट्टिय के पराक्रम का वर्णन सुनकर ही कांप गये थे। उनके उपचेतन में भय समा गया था। राजदरबार में भट्टिय का जो रौद्र रूप प्रकट हुआ था, उसका स्मरण करते ही महामात्य पुलिकसेन की समस्त योजनाएं मनोमंडल में ही छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती। वे भय से रक्तहीन हो जाते। इसी प्रकार की चिंताओं से व्याकुल हो वे चक्कर काटते रहे। किंतु अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। प्रतिहारी ने आकर निवेदन किया।

"कुछ बंदियों को लेकर महानायक व्याघ्रजिन अलिंद में उपस्थित हैं।"

"कितने बंदी हैं ?"

"कुल तीन हैं—दो लड़कियां और एक वृद्ध सामंत विश्वदेव।"

महामात्य के होठों पर कुटिल व्यंग्य की मुस्कराहट थिरक उठी। बोले—

"सैनिकों के नियंत्रण में बुड्ढे विश्वदेव को बाहर ही रहने दो। व्याघ्रक और शेष दोनों तरुणियों को मेरे समक्ष उपस्थित करो।

"जो आज्ञा।" कहकर प्रतिहारी चला गया। महामात्य कृत्रिम स्वस्थता प्रदर्शित करने के लिए कौषेय-वेष्टित सिंहासन सदृश काष्ठासन पर बैठ गये।

श्रवणा एवं विश्वतारा के साथ व्याघ्रजिन के सभा-गृह में प्रवेश करते ही महामात्य चकाचौंध में पड़ गये। पल-भर के लिए वे भूल गये कि मृत्यु-लोक में ज्वालामुखी के शिखर पर बैठे हुए हैं। उनके समक्ष अनिन्द्य, अपूर्व स्वर्गीय सौंदर्य की दो अलौकिक प्रतिमाएं सजीव खड़ी थी। उस उन्मादक रूपछटा को देखते ही पुलिकसेन समस्त तात्कालिक घटनाएं भूल गये। राज्य-सत्ता हथियाने का षड्यंत्र, भट्टिय का राजद्रोह और अश्वारोही सैनिकों की मृत्यु की अथ-इति अदृश्य हो गयी। उन्हें पता भी नहीं चला कि कितनी घड़ी बीत गयी कि अचानक उन्हें अपने पूज्य गुरु भैरवाचार्य का भयावह रौद्र रूप स्मरण हो आया। महामात्य पुनः धरा-

तल पर आ गिरे। बोले—

"व्याघ्रक ! इनमें से विश्वदेव की पुत्री कौन है ?"

"मैं हूं परमवीर आर्य विश्वदेव की पुत्र-वधु श्रवणा और यह है उनकी कन्या विश्वतारा। कहिए, क्या आदेश है ?" व्याघ्रजिन को अवसर न देकर, सिंहनी की तरह महामात्य को देखती हुई श्रवणा कठोर स्वर में बोल उठी। महामात्य उद्देश्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ आसन से उठे और दोनों तरुणियों के पास आकर उन्हें घूरते हुए बोले—

"वीर भट्टिय की पत्नी प्रगल्भा प्रतीत होती है। धन्य है तक्षशिला जहां ऐसी कन्याएं बहुतायत से पायी जाती हैं।"

श्रवणा का रक्त महामात्य की अपमानजनक बातें सुनकर उबलने लगा। वह फुत्कार करती-सी गरज उठी—

"प्रगल्भा नहीं, वीरांगणा कहिए महामात्य। तक्षशिला का सौभाग्य है कि आप जैसे अनूठे स्वामिभक्तों के चरण-स्पर्श से वंचित है।"

श्रवणा का क्रोध महामात्य पुलिकसेन की कामाग्नि में घी का काम कर रहा था। उनकी पाशविक क्षुधा श्रवणा का रूप-माधुर्य पीने के लिए तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी किंतु उन्होंने अपने पर संयम रखकर मुस्कराते हुए कहा—

"तुम्हारे व्यंग्यबाण से अधिक बेधक तो तुम्हारी आंखें हैं। वहां छाया में क्यों खड़ी हो ? दीपाधार के निकट आ जाओ।"

श्रवणा इस ओछेपन का उत्तर नहीं दे सकी। वहीं स्तंभ की ओट में चुपचाप खड़ी रही। महामात्य तृष्णा-भरी आंखों से श्रवणा की मादक देह-यष्टि को निहारते रहे। दीपों के झिलमिल प्रकाश से मुखशाला आलोकित थी। कक्ष के मध्य में काष्ट-स्तभ की छाया लंबी होती हुई दाहिनी दीवार तक चली गयी थी। श्रवणा उसी छाया में खड़ी थी। अतएव, उसकी देह-यष्टि उसके अप्रतिम सौंदर्य की आभा, उसकी प्रज्वलित आंखें, उसकी केशराशि, उसके अधर, नासिका ललाट और सांस के चढ़ाव-उतार के साथ उठते-गिरते उन्नत उरोज रहस्यमय सौंदर्य का उन्मादक-उद्दीपक चित्र प्रस्तुत कर रहे थे। महामात्य पुलिकसेन की इच्छाएं उद्दाम हो उठीं। किंतु, कुछ विचार कर वे रुक गये और व्याघ्रजिन से बोले—

"व्याघ्रक !"

"आज्ञा श्रीमान् !"

"विश्वतारा को गर्भ-गृह में और श्रवणा को मेरे शयन-कक्ष में सादर पहुंचाकर तुम मेरे पास शीघ्र लौटो। और देखो, यह दोनों अतिथि सुरक्षित रहें, इसकी व्यवस्था भी कर देना।"

व्याघ्रजिन जब विश्वतारा की ओर बढ़ा तब विश्वतारा भीत हिरणी, सी उसकी ओर देखने लगी। वह बिल्कुल ही अबोध थी। सम्मानित कुल की कन्या होने के कारण किसी ने अब तक उसका अंग स्पर्श करने का भी साहस नहीं किया था। अब जो व्याघ्रजिन उसकी ओर बढ़ा तो वह भय से मूर्च्छित-सी हो गयी। श्रवणा क्रुद्ध सिंहनी-सी देखती रही। व्याघ्रजिन ने विश्वतारा की बांह पकड़ने को हाथ बढ़ाया ही था कि श्रवणा कड़क कर बोली—

"सावधान सैनिक ! विश्वतारा की ओर अपने कलुषित हाथ मत बढ़ाना। मैं तक्षशिलीय नारी हूं। मेरी यह कटार तुम्हारे प्राण हर लेने में पूरी तरह सक्षम है।"

व्याघ्रजिन ठिठक कर खड़ा हो गया। श्रवणा की ओर उसने भयभीत नेत्रों से देखा—वह कटार फेंकने को सन्नद्ध थी। महामात्य ने मुस्कराते हुए कहा—

"आदरपूर्वक ले जाओ व्याघ्रक, बलपूर्वक नहीं।"

विश्वतारा ने अति करुण दृष्टि से श्रवणा को देखा। श्रवणा किसी विध अपनी वेदना को रोकती हुई तोष दिलाने के भाव से बोली, "चिंता मत करो बहन ! इन लोगों ने यदि तुम्हारा रंचमात्र भी अहित किया तो विश्वास रखो, महामात्य सहित मगध सिंहासन और राज्याधिकारियों को गंगा में डुबा देने की सामर्थ्य तुम्हारे भाई की भुजाओं में है।"

श्रवणा की बात सुनकर महामात्य अट्टहास कर उठे। बोले—

"अभी तो वह स्वयं ही डूब मरने को चुल्लू-भर पानी की खोज में इधर-उधर भटक रहा होगा।"

"चुल्लू-भर पानी के लिए नहीं महामात्य—वे भटक रहे होंगे तृण-काष्ठ एकत्र करने के निमित्त, जिससे कि तुम्हें जीवित जलाने में आसानी

हो। बारह अश्वारोही सैनिकों को गंवाकर भी तुम्हें उनके पराक्रम का परिचय नहीं मिला। राजदरबार के सभी शूरवीर देखते ही रह गये और वे एकाकी तुम सबको धता बताकर चले गये—फिर भी तुम निर्लज्ज की भांति हंस रहे हो ? छि: ! धिक्कार है तुम्हारे पौरुष पर।"

"इसे शीघ्र ले जाओ !···प्रतिहारी !" - महामात्य क्रोध से चीख उठे।

"जो आज्ञा श्रीमान् !"

"उपनायक भद्रिक को कहो कि यहां आकर व्याघ्रक की सहायता करे।"

श्रवणा ने व्यंग्य किया—

"दो नारियों को बंदी बनाने मे ही अपने समस्त सैन्यबल का प्रदर्शन कर दोगे तो भट्टिय का मनोरंजन कैसे करोगे महामात्य ?"

"तुम पर अपना आधिपत्य स्थापित करके।" महामात्य ने कुटिल हास्य के साथ उत्तर दिया। श्रवणा अपने क्रोध पर संयम रखकर बोली—

"इसके लिए तो तुम्हें अपना पद ही नही, प्राण भी गंवाने पड़ेंगे।"

"वह तो आज ही विदित हो जायेगा प्रिये !—व्याघ्र ! ले जाओ इन दोनों को।"

विश्वतारा और श्रवणा को यथास्थान पहुंचाकर व्याघ्रजिन लौट आया। महामात्य चिंतित हो उठे थे। उनकी दुर्बलता का सर्प श्रवणा की गर्वोक्तियों की चोट से फुत्कार कर उठा था।" इस गर्वीली स्त्री का दर्प दलन करना आवश्यक है। ऐसा सोचकर उन्होंने व्याघ्रजिन को आदेश दिया—

"विश्वदेव को कारागार में डाल दो।···विश्वतारा एक पहर तक मूर्च्छित पड़ी रहे ऐसी व्यवस्था करने के लिए राजवैद्य से निवेदन करो। ओषधि का प्रयोग होते ही गुप्तद्वार पर मेरा अश्व तैयार रखो। और देखो, मैं रात्रि के तीसरे प्रहर तक लौट आऊंगा। श्रवणा यहां से भागने न पावे—इसकी अच्छी प्रकार व्यवस्था होनी चाहिए।"

"जो आज्ञा !"

"ठहरो !…भट्टिय को बंदी बनाने के लिए क्या प्रबंध किया गया ?"

"एक सहस्र अश्वारोही सैनिक राज्य में चारों ओर निकल पड़े हैं। एक सहस्र पदाति छद्मवेश में संपूर्ण राज्य में फैल गये हैं।"

"ठीक है। अब तुम जा सकते हो। विश्वतारा को ओषधि खिलाकर अश्व प्रस्तुत करो।"

"जो आज्ञा।" कहकर व्याघ्रजिन सैनिक अभिवादन करके बाहर निकल गया।

महामात्य पुलिकसेन दुर्लभ कापिशायनी सुरा की सनसनी मे अपने भय-भीत मन को डुबोकर व्याघ्रजिन की प्रतीक्षा करने लगे। श्रवणा की सुंदर, सुघड़ देहयष्टि रह-रहकर चषक में तैरने लगती। महामात्य का मस्तिष्क क्षण-भर के लिए सत्ता के षड्यंत्र से शून्य हो जाता और वे प्रतीक्ष्य काम-लीला की कल्पना में डूब जाते।



आम्रवन के उस पार नदी के तट पर स्थित महाकाल शिव के प्राचीन मंदिर के खंडहर को पाठक भूले नहीं होंगे।

भैरवाचार्य परम तांत्रिक वक्रघोष के आगे खप्पड़ में लबालब मदिरा भरी हुई था। वक्रघोष की दशा विचित्र थी। कभी वे हंसने लगते, कभी गाने लगते, कभी उठकर नाचने लगते और कभी जीभ और तालु के संयोग से बैल की आवाज निकालने के प्रयास में 'हुड़-हुड़' की ध्वनि निकालने लगते। चर्बी, मांस, मदिरा आदि की दुर्गंध से प्रांगण की हवा तक घुटने

लगी थी।

विशाल भैरवी की काली मूर्ति के सामने, धरती पर, विश्वतारा की मूर्च्छित नग्न देहयष्टि पड़ी थी। उसकी आंखें बंद थी, खुले हुए बाल भूमि पर फैले हुए थे, वल्लरी सदृश बांहें भी भूमि पर निस्पंद, निर्जीव-सी पड़ी थीं। मूर्ति के चारों ओर चर्बी से भरे हुए दीये का मद्धिम प्रकाश फैल रहा था। बहुत से कापालिक मूर्ति के चारों ओर नाच रहे थे, सुरापान करके शरीर को कंपा रहे थे, लंगड़ाकर दौड़ रहे थे, कामी जन सदृश चेष्टाएं कर रहे थे। विचित्र बीभत्स दृश्य था। असह्य।

वक्रघोष रह-रहकर विश्वतारा की मूर्च्छित देह को देखने लगते और तब उनके मंत्रोच्चारण की गति द्विगुणित हो जाती। क्योंकि लता साधन की सिद्धि के लिए जिस कन्या में भैरवी को प्रतिष्ठित करना था, वह निर्जीव पड़ी थी। वक्रघोष ऊंचे स्वर में मंत्रोच्चारण करने लगे।

कुछ देर बाद विश्वतारा सुगबुगा उठी। कापालिकों को लगा उनकी पूजन-साधना का प्रभाव है। वे जोर-जोर से चिल्लाने-उछलने, नाचने-गाने लगे। विश्वतारा के समीप जाकर कुछ कापालिक कामजनित अश्लील चेष्टाओं का सोत्साह प्रदर्शन करने लगे।

विश्वतारा की मूर्च्छा धीरे-धीरे दूर हो रही थी। भैरवाचार्य खप्पड़ में पड़ी हुई सुरा एक घूंट में पी गये। पुनः खप्पड़ भर दिया गया। उसे पीते भी देर नहीं लगी। इस तरह वक्रघोष कुछ ही देर में काफी सुरा पी गये। उनकी आंखों में साक्षात रुद्र उतर आये। महेश्वर की प्राप्ति की आशा बलवती हो उठी।

तब तक विश्वतारा की मूर्छा पूर्णतया दूर हो चुकी थी। अपनी नग्नावस्था का बोध होते ही वह दोनों हाथों से अपने वक्ष और आंखें ढककर उकड़ूं बैठ गयी। उसकी मनोदशा विचित्र थी। लाड़, प्यार एवं निश्छल वातावरण में पलने वाली अबोध किशोरी अचानक ही भीषण पाप-समुद्र में गिर पड़ी थी। उसे लगा, जैसे वह जीवित ही नरक में पहुंच गयी हो। कभी-कभी वह अपनी चेतना को झकझोरने लगती। क्योंकि क्षण-भर के लिए उसके मन में आशाजनित यह आशंका जग उठती कि कहीं वह नींद में सोयी हुई मात्र भयावह स्वप्न तो नही देख रही है।

अचानक विचित्र घटना घटी। मंदिर के गर्भ-गृह का द्वार खुल गया। हवा के झोंके की तरह पांच शस्त्रधारी तरुण भीतर धंस आये। कापालिकों के तो प्राण ही सूख गये। पंचमकार की सिद्धि बीच में ही रह गयी। उन तरुणों के विशाल शल्य, विराट धनुष एवं भयानक खड्ग देखते ही कुछ कापालिक तो प्राण लेकर गर्भ-गृह से अंतराल में जाने वाले मार्ग की ओर भागे। कुछ ने प्रतिरोध किया, किंतु सधे हुए शस्त्रधारियों के समक्ष उनके खप्पड़-कपाल-त्रिशूल कुछ काम नहीं दे सके। देखते-देखते कई कापालिक सचमुच ही महेश्वर के प्यारे हो गये। भैरवाचार्य ने उठकर प्रतिरोध किया। क्षण-भर के लिए वहां महाभारत का सा दृश्य उपस्थित हो गया। किंतु भैरवाचार्य की पीठ पर अकस्मात् गदा का भरपूर प्रहार पड़ा और तत्क्षण ही उनके पेट में पड़ी हुई छह सेर सुरा सूख गयी। वे धराशायी हो गये। शेष कापालिक वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गये। एक तरुण ने, जो शस्त्रधारी आगंतुकों का नायक जान पड़ता था, अपना कौषेय आच्छादनक विश्वतारा को ओढ़ा दिया।

जहां कुछ देर पहले हुड़क्-हिड़िक्, ही-ही-ही, हा-हा और नाच-गान हो रहा था, वहां अब भैरवाचार्य की क्षीण आह-कराह के अतिरिक्त भयावह सन्नाटा व्याप्त था। तीन-चार कापालिक उनकी सेवा-सुश्रूषा में जुटे हुए थे। कापालिकों के चार शव मूर्ति के इधर-उधर पड़े हुए थे। विश्वतारा अंतर्धान हो चुकी थी। महामात्य पुलिकसेन अनजान ही बने रहे और आम्रवन के एकशालिक में गवाक्ष से झांकते हुए चेहरे ने उनकी योजना को विफल कर दिया।



महामात्य पुलिकसेन विश्वतारा को वक्रघोष की सेवा में अर्पित करके प्रसन्नचित्त अपने प्रासाद की ओर लौटे। जिस शीघ्रता और सुगमता से उन्होंने भैरवाचार्य के प्रथम आदेश का पालन कर दिया था, उसी शीघ्रता और सुगमता से मगध राज्य-सिंहासन प्राप्त होने का उन्हें वरदान भी मिल चुका था। महामात्य को भैरवाचार्य के तंत्र-बल पर अटूट आस्था थी। सच ही कहा है कि आस्था और विश्वास को ही आकस्मिक सफलता का श्रेय देने में अयोग्य व्यक्ति सबसे आगे होते हैं।

श्रवणा के रूप-माधुर्य ने उन्हे भक्त बना दिया था। भैरवाचार्य के यहां विश्वतारा को पहुंचाकर लौट आने में उन्हें अधिक विलंब नहीं हुआ। अधिक से अधिक पौन प्रहर। किंतु उन्हें अनुभव हो रहा था, जैसे राह अघोर हो गयी है। उनका अश्व हवा से बातें करता हुआ भागा आ रहा था कि अचानक महामात्य का माथा ठनका। अभी वे प्रासाद से थोड़ी दूर ही थे कि उनके महल के चतुःशाल में अग्नि की लपटें उठती दीख पड़ीं। उन्होंने अश्व को एड़ लगायी। प्रासाद में भगदड़ मची हुई थी। सैकड़ों परिचारक आग बुझाने में व्यस्त थे।

आग के बुझते ही पुलिकसेन ऊपर दौड़े। आधा चतुःशाल जलकर राख हो चुका था। श्रवणा का चिह्न तक वहां शेष नहीं था। महामात्य को लगा जैसे किसी ने उन्हें चोटी पर से नीचे धकेल दिया हो।

असह्य पराजय के दंश से वे विचलित हो उठे। विक्षिप्त होकर वे

मुखशाला में चक्कर काटने लगे। उसी समय भैरवाचार्य का संदेश लेकर एक कापालिक आ पहुंचा। शिव मंदिर की घटना सुनकर महामात्य को लगा जैसे वे सचमुच ही पागल हो जायेंगे। उन्होंने मौलसेनाध्ययक्ष देव-मित्र और अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल को शीघ्र आने का संदेश भेजा। इस बीच वे अपने प्रासाद के परिचारकों एवं प्रहरियों पर बरसते रहे।

कुछ ही देर में मौलसेनाध्यतथाक्ष अश्वसेनाध्यक्ष आ उपस्थित हुए। सारी स्थिति समझाकर महामात्य ने मौलसेनाध्यक्ष को आदेश दिया कि नगर के सभी अतिथि-गृह, मदिरालय, मंदिर यहां तक कि श्रेणिय बल के नायकों, आर्यकुल और अनार्यकुल के गृहों का भी निरीक्षण किया जाय।

"किंतु, मात्र एक बंदी के पलायन कर जाने पर नागरिको को इतना अपार कष्ट देना क्या समुचित होगा ?"—मौलसेनाध्यक्ष ने विनीत स्वर में किंचित् प्रतिवाद किया। महामात्य सरोष बोले—

"बंदीजन राज-नियंत्रण से भाग निकलें, यह साधारण बात है! भट्टिय हेमजित ने राजदरबार को चुनौती दी, बारह राजसैनिकों की हत्या कर दी और मगध के महामात्य के महल में आग लगा दी। मेरा विश्वास है कि बंदी जला नहीं है, उसे मुक्त करके विद्रोही ले भागे हैं। भैरवाचार्य की पूजा में विघ्न डाला गया है। वहां मंदिर में भी कई हत्याएं कर दी गयी है। नहीं-नहीं, मेरा यही आदेश है। राजद्रोहियां का सिर कुचलना ही होगा। आर्य सेनाध्यक्ष! स्कंधावार में तूर्य निनाद करवाइए। यह साधारण घटना नहीं है। अवश्य ही इसमें षड्यंत्रकारियों का हाथ है।"

इस बार अश्वसेनाध्यक्ष ने प्रश्न उठाया—

"गिरिव्रज के सहस्रों नागरिकों के गृहों में बलपूर्वक घुसकर बंदी को ढूंढ़ना सुगम कार्य नहीं है। इसके लिए राजाज्ञा की आवश्यकता पड़ेगी। आर्य ब्राह्मण! किंचित् विचार करें कि मात्र स्त्री बंदी के भाग जाने पर हम युद्ध-स्थिति की घोषणा कर दें, नागरिकों पर आतंक स्थापित करें तो इसका परिणाम क्या होगा ? इससे तो संपूर्ण जनपद में असंतोष की लहर दौड़ जायेगी। हो सकता है कि विद्रोहाग्नि भी भड़क उठे। क्या यह नीति-संगत होगा ?"

"सेनापति ! मै मगध का महामात्य, अवन्ति का शासक पुलिकसेन आपको आदेश देता हूं। समस्त गिरिव्रज का कोना-कोना छान मारिए। नगरकोट के सभी द्वारों पर पहरा लगवा दीजिए। नगर में आने-जानेवाले प्रत्येक व्यक्ति की अच्छी तरह जांच-पड़ताल कीजिए। मैं इसके लिए राजाज्ञा भी मंगवा लेता हूं।"

अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल और मौलसेनापति देवमित्र, दोनों ही जानते थे कि महामात्य को राजाज्ञा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वे यह भी जानते थे कि उनके इस व्यवहार से नागरिकों पर क्या प्रतिक्रिया होगी। इसलिए, दोनों ही महामात्य को अभिवादन करके महामात्य के प्रासाद से विदा हुए।

महामात्य ने एक पत्र लिखा, उसे मुद्रांकित किया और व्याघ्रजिन को बुलाकर पूछा—

"मुख्य द्वार पर अश्व प्रस्तुत है ?"

"हां श्रीमान् !"

"ठीक है ! तुम यह राजमुद्रा लेकर अभी शीघ्र नगर के बाहर रुद्र मंदिर में पहुंचो। वहां अवन्तिसेनापति स्वातिसेन को मेरा यह पत्र दे देना। सूर्योदय के पूर्व उनका उत्तर मुझे मिल जाना चाहिए। लेकिन सावधान ! तुम्हारा यह कार्य-कलाप किसी पर प्रकट न हो।"

"जैसी आज्ञा।"

व्याघ्रजिन के प्रस्थान करने के बाद भैरवाचार्य के संदेश-वाहक कापालिक को रुकने का परामर्श देकर महामात्य अपने अश्व पर राजप्रासाद की ओर चल पड़े।



गहन अंधकार में डूबा हुआ महामात्य पुलिकसेन का विशाल प्रासाद मदिरा में माता हुआ गजराज-सा लग रहा था। मुख्य द्वार पर दो प्रहरी हाथ में शल्य लिये सतर्क खडे थे। द्वार के दोनों ओर उल्काएं प्रज्वलित थीं। छह सशस्त्र योद्धा महामात्य के प्रासाद से कुछ दूर घात में बैठे थे। उन लोगों ने आपस में कुछ विचार-विनिमय किया और तत्क्षण ही दो व्यक्ति उठकर प्रासाद की ओर अग्रसर होते हुए निविड़ अंधकार में खो गये। कुछ देर के बाद गृह-मयूर के बोलने की ध्वनि आयी और उस ध्वनि के प्रत्युत्तर में दो बाण छूटे। दोनों द्वार-रक्षक प्राणघाती बाण से बिंधकर भूमि पर गिर पड़े। इससे हलका-सा खटका हुआ। द्वार-तोरण के प्रतिहारी ने झांक कर नीचे देखना चाहा कि सनसनाती हुई हेति उसकी ग्रीवा में चुभ गयी। उसकी आधी देह तोरण के प्राचीर से नीचे झूल गयी। पल-भर में दो छायाएं अंधकार से निकलीं और प्रहरियों के शव को खींचती हुई अंधकार में अंतर्धान हो गयी। क्षण-भर पश्चात् ही द्वार पर दो प्रहरी उपस्थित थे जो अंधकार से निकल कर द्वार पर खड़े हो गये थे। इस पूरी घटना के घटित होने में विशेष देर नहीं हुई।

शेष चारों व्यक्ति अब निर्भय होकर प्रासाद में प्रविष्ट हो गये। आगे-आगे चलने वाला व्यक्ति प्रासाद की प्रति अंगुल भूमि से परिचित जान पड़ता था। एक स्थान पर, जहां रक्ताशोक तथा प्रियंगुलिका के पत्रों से मंडप-सा बन गया था, उस व्यक्ति ने तीनों को रोक दिया। कारण, प्रासाद

के प्राचीर से एक उल्काधारी निकलता हुआ दिखायी पड़ा। उल्का के प्रकाश में एक अश्व खड़ा दीख पड़ा। शीघ्र ही एक सैनिक कंधे पर बड़ा-सा गट्ठर लिये आया और उसे अश्व पर लाद कर एक ओर खड़ा हो गया। चारों व्यक्ति सांस रोके चुपचाप अंधकार में छिपे खड़े रहे। पल-भर बाद ही एक राजपुरुष भीतर से निकला और वहां उपस्थित सैनिकों को कुछ आदेश देकर अश्व पर आरूढ़ हो अंधकार में पश्चिम की ओर उड़ चला।

प्राचीर के पास फिर सूनापन छा गया। छिपे हुए व्यक्तियों का नायक बड़ी सतर्कता से पेट के बल रेंगता हुआ प्राचीर के पास जा पहुंचा। कुछ देर लेटा-लेटा वह सुराग लेता रहा। प्रहरी पास के ही शिलाखंड पर बैठा ऊंघ रहा था। रहस्यमय नायक उछल कर शिलाखंड पर बैठे प्रहरी की छाती पर चढ़ बैठा। प्रहरी कुछ समझ नहीं पाया। उसे लगा कि उसकी सांस बंद हो रही है। शीघ्र ही उसकी आंखें बाहर निकलने को हो आयीं। नायक ने उसकी गरदन की जकड़ ढीली करके पूछा—

"बोल, अभी अश्व पर कौन बाहर गया है ?"

प्रहरी ने कुछ नहीं कहा। नायक ने पुनः गरदन को जकड़ना आरंभ किया। प्रहरी की घिग्घी बंध गयी। बोला—"अभी बताता हूं, आर्य।"

"बोल !"

"स्वयं महामात्य।"

"कहां ?"

"भैरवाचार्य की सेवा में।"

"पोटली में क्या था ?"

"एक तरुणी। उसी को भैरवाचार्य की सेवा में अर्पित करने गये हैं।"

"दूसरी बन्दिनी कहां है ?"

"ऊपर चतुःशाल में।" नायक का रक्त सूख गया। उसने 'टुहू-टुहू' करके ध्वनि की। उसके सभी साथी पास आ गये।

"इस प्रहरी को गोपनीयता की रक्षा के हेतु समाप्त करके बाहर बड़े अस्व पर लाद लो। राह में श्मशान पड़ेगा। वहीं किसी जलती हुई चिता पर डाल देंगे। और देखो, हम लोगों को शीघ्र ही आम्रवन की ओर कूच कर देना है, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। मै अभी क्षण-भर मे तुम लोगों के

पास पहुंचता हूं। तब तक बाहर द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करो।"

इसके पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र वह नायक गुप्त द्वार से ऊपर चतुःशाल में जा पहुंचा।

श्रवणा द्वार की ओर पीठ किये खिड़की से बाहर अंधकार में देखती हुई खड़ी थी।

द्वार पर किसी की पद-चाप सुनायी पड़ते ही श्रवणा ने मुड़कर देखा। सामने सैनिक वेशधारी एक परम तेजस्वी बलिष्ठ तरुण खड़ा था।

श्रवणा विश्वतारा की हित-चिंता में खोयी हुई थी। उसका विश्वास था कि विश्वतारा को किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया गया है। तरुण को देखकर उसे लगा, अब उसकी बारी है। बोली—' कहां चलना है ?"

नायक ने प्रणाम करके कहा—"मेरे साथ आइए।"

श्रवणा को तरुण का शालीन व्यवहार विचित्र लगा किंतु वह बिना कोई प्रतिरोध किये उसके साथ हो ली। प्रासाद के मुख्य द्वार से कुछ दूर सात अश्व प्रस्तुत थे। वहां पहुंचकर श्रवणा ने दीप्त स्वर में पूछा—"मुझे कहां लिये चल रहे हो ?"

नायक ने उत्तर दिया—"देवी क्षमा करें। बिना आपकी अनुमति लिये हम लोग आपको, महामात्यपुलिकसन के प्रासादसे मुक्त करके ऋषि-गिरि पर्वत पर आचार्यपाद नारायण स्वामी के पास लिये चल रहे हैं। मेरा वयस्य जयसेन आपके साथ जायेगा क्योंकि मुझे आर्या विश्वतारा को मुक्त कराने के लिए शीघ्र शिव मंदिर पहुंचना है।

"किंतु···किंतु आचार्यपाद नारायणस्वामी ने मुझ पर इतनी कृपा क्यों की ?"

"आचार्यपाद की कृपा निष्काम होती है देवी ! विलंब न करें।"

"अनुगृहीत हुई बंधु।" श्रवणा अश्व पर आरूढ़ होती हुई बोली। उसने अंधकार में मुक्तिदाता तरुण के मुख-मंडल को देखने का विफल प्रयास किया। तरुण नायक अपने एक साथी से कह रहा था—

"तुम यहां रुक जाओ। पौन दंड पश्चात् गुप्त मार्ग से प्रासाद के चतुःशाल में पहुंचकर वहां अग्नि प्रज्वलित कर देना। यह दिव्यौषधि लो। इससे अग्नि प्रज्वलित करने में सुगमता होगी। इसके बाद शिव मंदिर के

पास वृद्ध वटवृक्ष के नीचे मेरी प्रतीक्षा करना। वयस्क जयसेन, तुम भी देवी श्रवणा के साथ चलकर उसी वटवृक्ष के नीचे मेरी प्रतीक्षा करो। मै अन्य साथियों के साथ महाकाल शिव के मंदिर में जाता हूं। आम्रवन के एकशालिक से वयस्य सोम को साथ कर लूंगा। दुष्ट कापालिकों की पूजा के लिए हम पांच व्यक्ति पर्याप्त होंगे।"

इतना कहकर तरुण नायक उछल कर अश्व पर जा बैठा। अश्व संकेत पाते ही अंधकार में उड़ चला। तीन अश्वारोही उसके पीछे हो लिये।

महाकाल शिव के मंदिर का लता साधन दृश्य पाठक देख ही चुके हैं। अतएव, उसे यहां दुहराना आवश्यक नहीं है।

विश्वतारा को मुक्त करके तरुण नायक बाहर ले आया। चारों अश्वारोही अपने-अपने अश्वों पर आरूढ़ हो गये। तरुण नायक ने विश्व-तारा से झिझक कर कहा—

"देवी को यदि कोई आपत्ति न हो तो मेरे साथ ही अश्व पर चढ़ चलें।"

विश्वतारा तो अपने मुक्तिदाता को देवता मानकर हृदय में प्रतिष्ठित कर चुकी थी। प्रथमदर्शन में ही वह निजत्व खो बैठी। चौंक कर बोली—

"जी !···मुझे···मेरा तो···मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

"अच्छा तो आइए, शीघ्रता कीजिए।" इतना कहकर तरुण नायक ने विश्वतारा को अश्व पर आरूढ करा दिया। विश्वतारा स्पर्श-मात्र से मूर्च्छित-सी होने लगी। अश्व भाग चला।

"मेरे कंधों को पकड़े रहिए। राह ऊबड़-खाबड़ है। गिरने का भय है।" तरुण ने कहा। विश्वतारा अपने मुक्तिदाता के तेज के समक्ष विमोहित होती जा रही थी। उस दिन की सारी घटनाएं उसे स्वप्नवत् लग रही थीं—ठीक कपोल-कल्पित कथा जैसी। उसने तरुण के कंधों को पकड़ लिया। ऐसा करते ही विद्युत-सी कोई वस्तु तरल होकर उसके रक्त में प्रवाहित हो गयी। विश्वतारा अलौकिक स्पर्श-सुख मे तल्लीन अश्व पर उड़ती चली जाती रही।

नदी के तट पर जटाधारी वट-वृक्ष के नीचे तीन व्यक्ति प्रतीक्षा में खड़े थे। वहां पहुंच कर, श्रवणा को देखते ही विश्वतारा आनंद से विह्वल

हो उठी। उसे समस्त घटनाएं ऐंद्रजालिक माया-सी दीखने लगीं। दोनों ही अश्व से उतरकर एक-दूसरे से लिपट गयीं। दोनों की आंखों में आनंदाश्रु छलक पड़े। अचानक तरुण नायक का विनम्र आदेश गूंज उठा—

"विलंब करना घातक होगा देवी ! आप दोनों एक ही अश्व पर सवार हो जायें। जयसेन, इस नदी का ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी तट घोड़े दौड़ाने योग्य नहीं है। अतएव, अब हम लोगों को जल्द से जल्द नदी की धारा से होकर ही दुर्ग से बाहर निकल चलना है। किंतु, यह नदी जहां दुर्ग के प्राचीर के नीचे से निकलती है, वहां प्रहरी भी उपस्थित रहता है।"

"चिंता मत करो वयस्य वरुणदत्त ! सौ प्रहरियों का सामना करने की शक्ति मेरे इस महेष्वास धनुष में है।" जयसेन ने उत्तर दिया।

"साधु वयस्य ! आगे बढ़ो।"—वरुणदत्त ने कहा और अपना अश्व आगे बढ़ा दिया।

आठ अश्वों पर नौ अश्वारोही जलमार्ग से आगे बढ़ते रहे। जल कहीं घुटनों तक था तो कहीं आकंठ। धार के प्रतिकूल चलना अश्वों के लिए कठिन होता है, किंतु उक्त आठों अश्व कुशल एवं प्रशिक्षित थे।

नदी जहां पर दुर्ग में प्रवेश करती थी, वहां पर धारा छोटी कर दी गयी थी—लगभग आधी। निदान वहां पर नदी का वेग तीव्रतम था। एक पल के लिए भी वहां के जल में टिक सकना असंभव था। प्रशिक्षित अश्वों को भी आगे बढ़ने में कठिनाई होने लगी। अश्व आगे बढ़ने का पूरा प्रयत्न करते, किंतु धार का वेग उन्हें पीछे फेंक देता। इस तरह का क्रम कुछ देर तक चलता रहा, फिर भी कोई परिणाम नहीं निकला। वरुणदत्त जानता था कि एक-एक क्षण कितना मूल्यवान है। सभी अश्वारोहियों को तट के ऊपर जाकर ठहरने का आदेश देकर वह स्वयं भी अपने अश्व को तट पर ले आया। अश्व पर खड़े होकर उसने चारों को सावधानी से देखा और साथियों को कुछ आदेश देकर पैदल प्राचीर की ओर प्रस्थान किया। एक लंबी पुष्ट रज्जु उसके पास थी। लाघव और स्फूर्ति से वह प्राचीर के ऊपर चढ़ गया। इस कार्य में उसे विशेष कठिनाई नहीं हुई। किंतु परकोटे के ऊपर बनी राह, देव पथ पर, जो आठ हाथ चौड़ा था, खड़े होकर वरुण ने देखा कि दूर पर कोई प्रहरी देवपथ से इसी ओर चला आ रहा था। उसकी

चाल से ही वरुणदत्त ने भांप लिया कि नीचे के अश्वारोहियों से प्रहरी अभी तक अनभिज्ञ था। वरुण ने 'टुहुक्-टुहुक्' की ध्वनि करके साथियों को वस्तु स्थिति से सचेत कर दिया। सभी अश्वारोही नदी किनारे लता-द्रुम में छिप गये। वरुणदत्त वहीं देवपथ पर बने हुए लघु-तोरण की ओट में छिप गया।

प्रहरी नितांत असावधान था। तोरण के पास से वह ज्यों ही आगे निकला कि वरुणदत्त उसकी गरदन पर चढ़ गया। प्रहरी को चीखने का अवसर भी नही मिला और वह सदा के लिए सो गया। वरुण ने रज्जु के छोर में उसे बांधकर रज्जु का दूसरा छोर प्राचीर के गवाक्ष की राह बाहर की ओर से नदी में गिरा दिया। शव प्राचीर में अटका रहा।

उसकी संकेत-ध्वनि सुनते ही सभी अश्वारोही वरुण के अश्व सहित नदी में उतर गये। धार के वेग के साथ रज्जु का छोर उन लोगों तक जा पहुंचा। रज्जु के सहारे सभी अश्वारोही धार के प्रतिकूल बढ़ने लगे। वरुणदत्त भी ऊपर रज्जु को बल लगाकर पकड़े रहा। सभी अश्वारोहियों के दुर्ग के बाहर पहुंच जाने पर वरुणदत्त ने रज्जु ऊपर खींच लिया और शव को भी बंधनमुक्त करके नदी में फेंक दिया। तभी उसने प्राचीर के देवपथ पर चढ़े-चढ़े देखा, महामात्य के गगनचुंबी प्रासाद की ऊपरी कक्षा से अग्नि की लपटें निकल रही थी।



महामात्य पुलिकसेन जो चाहते थे वही हुआ। बंदियों को पकड़ना या राजद्रोही हेमजित को दंड देना उनका अभीष्ट नहीं था। वे तो दो ही

परिणाम चाहते थे : एक तो यह कि प्रजा को किसी न किसी बहाने सताया जाय, उसे अपमानित किया जाय, जिससे कि उसके हृदय में राजा के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाय, दूसरे यह कि इस धर-पकड़ में श्रवणा हाथ लग जाय कि वे अपनी कामपिपासा तृप्त करने के साथ-साथ हेमजित का दर्प दमन कर सकें।

संपूर्ण गिरिव्रज में अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी। पिछले दो दिनों में सैनिकों ने इतना उत्पात मचाया कि लोगों ने राजा को खुलेआम गाली देनी शुरू कर दी। सैनिकों ने किसी की पद-मर्यादा का विचार नहीं किया। वे बलपूर्वक नागरिकों के घरों में घुस गये। नागरिकों में श्रेष्ठियों एवं कर्मकरों के अतिरिक्त श्रेणिय संघों के सदस्य, क्षत्रिय एवं आयुधजीवी भी थे। वे भी अपनी प्रतिष्ठा के लिए मर मिटना जानते थे। उनके पास शक्ति एवं शौर्य का भी अभाव नहीं था। निदान कई स्थानों पर राज-सैनिकों का डटकर प्रतिरोध हुआ। बहुत से सैनिक मार डाले गये, बहुत से हताहत हुए। सैनिकों ने भी इच्छा-भर प्रतिशोध लिया। सैकड़ों दास अकारण ही मृत्यु की गोद में सुला दिये गये, दासियों पर बलात्कार किये गये। कुछ क्षत्रिय, श्रेष्ठि एवं नागरिक प्रतिरोध करने के कारण, राजद्रोह के अभियोग में बंदी बना लिये गये।

पूरे नगर में इसी बात की चर्चा थी। आतंक की छाया अभी भी नगर पर झूल रही थी। फिर भी सैकड़ों लोग ऐसे थे जो निर्भय होकर राज-पथ पर दासों के ठट्ट में, श्रेष्ठि चत्वरों में, मंदिरों में, वीथियों पर राजा की आलोचना करते फिर रहे थे।

कोई कहता—

"राजा अपनी दुर्बलता का क्रोध नागरिकों पर उतार रहा है।"

तो कोई कहता—

"विनाश काले विपरीत बुद्धि !"

कोई कहता—

"अरे राजा रिपुंजय तो क्लीव हैं। वृद्धावस्था में भी, दिन-रात राग-रंग में डूबा रहता है। उसे कहां अवकाश है कि वह प्रजा का पोषण या शोषण करे। वास्तव में सारी दुष्टता महामात्य की है। उसकी इच्छा

कलुषित है। वह अवन्ति के साथ-साथ मगध का भी राजा बनना चाहता है।"

तुरंत प्रतिवाद होता—

"महामात्य बेचारा क्या करे? वह तो मात्र राजाज्ञा का पालन कर कर रहा है। राजा स्वयं राज-काज का निरीक्षण क्यों नहीं करता? राज-दरबार तक में वह बैठा ऊंघता रहता है।"

लोग इसका समर्थन करते—

"हां-हां, इसमें महामात्य का कोई दोष नहीं। बल्कि थोड़ा बहुत जो भी न्याय और व्यवस्था शेष है—महामात्य के कारण ही शेष है।"

कुछ लोग इस कथन को तर्क से पुष्ट कर देते—

"राज-कर्मचारी तो राजा के विचार-आचार का प्रतिबिंब मात्र होते हैं।"

किसी ने कहा—

"अरे, तुमने सुना नहीं? इस नगर पर काल का भयानक कोप होने वाला है। भैरवी अप्रसन्न हैं।"

तुरंत जिज्ञासा होती—

"क्यों?...कैसे भला?"

उत्तर मिलता—

"तुम्हें नहीं मालूम? कल रात अनर्थ हो गया। ऐसा कभी नहीं हुआ था। कल रात विख्यात शिव मंदिर में भैरवी की पूजा हो रही थी। स्वयं आचार्य वक्रघोष वहां साधना में रत थे कि कुछ अस्त्र-शस्त्रधारी युवकों ने वहां पहुंचकर पूजा में विघ्न डाला, कई कापालिकों की हत्या कर डाली और भवानी की मूर्ति को भी तोड़ डाला।"

घबराहट से लोग कांप गये—

"मूर्ति तोड़ दी?"

"अरे इतना ही नहीं। परम पूज्य भैरवाचार्य वक्रघोष पर तो उन डाकुओं ने पाद-प्रहार तक कर दिया। अनर्थ हो गया नागरिको! अब तो मगध में विनाश-लीला होगी। गिरिव्रज नगर में अकाल और संक्रामक रोग का प्रकोप होगा। प्रजा कीड़े-मकोड़ों की तरह मरेगी।"

इस तरह की बातों को हवा ले दौड़ती है। राजा के प्रति आक्रोश से जन-जन का रक्त उबलने लगा। वातावरण में ज्वालामुखी के विस्फोट का सा संकेत मिलने लगा। शस्त्रागार के अग्निकांड की कथा भवानी के श्राप के साथ जुड़ गयी। नगर में लूट-पाट चलती रही। आयुध-जीवियों एवं सामंतों की बन आयी। वे लोग, नगर में या नगर के बाहर, सभी जगह स्वच्छंद होकर मनमानी करने लगे।



अग्रहायण मास की गंगा रात के अंधेरे में धीर-गंभीर गति से बहती चली जा रही थीं। यदा-कदा उनकी लहरें आपस में टकरा जातीं तो गंगा खिलखिलाकर हंस पड़तीं—फिर आगे बढ़ जातीं। कभी-कभी टिटिहरी की कर्कश चीख 'टिट्-टिट्टिट्…'' अंधकार को चीरती हुई निकल जाती। इसके अतिरिक्त कहीं कोई रव नहीं, कोई ध्वनि नहीं। कूल के लता-द्रुम गंगा का गति-संगीत सुनते-सुनते सो गये थे। वे लता-द्रुम एक स्थिति में रहते-रहते जब जकड़ जाते तब हवा के सहारे कभी-कभी अपने अंगों को हिला-डुलाकर पुनः स्थिर हो जाते। 'छपाक्' से कोई जलचर पानी में कूद पड़ता। फिर शांति छा जाती।

ठीक उसी समय एक अश्वारोही मंद गति से गंगा के दाहिने किनारे-किनारे संगम की ओर बढ़ रहा था। उसकी देह काले लबादे में ढकी हुई थी। उसकी आंखें सामने लगी हुई थीं। कभी-कभी वह रुक कर दाहिनी ओर या पीछे देख लेता था और फिर चल पड़ता था।

संगम के पास शीजम के वृक्ष तले एक आकृति खडी थी। दूर से अश्व को आते देख कर वह आकृति अश्व की ओर बढ़ी। अश्वारोही ने पूछा—

"तुम कौन हो ?"

"नैकटिक भिक्षु !"

"युवावस्था में भिक्षु क्यों बने ?"

"देश के लिए।"

"मुझे भी उस राह पर ले चलो !"

भिक्षु ने क्षण-भर चुप रह कर प्रश्न किया—

"ऋषिगिरि से आ रहे हो ?"

"आचार्यपाद नारायणस्वामी के आदेश पर !"—भट्टिय उत्तर देकर अश्व से उतर पडा। भिक्षु ने भट्टिय का अभिवादन किया और कहा—

"मेरे साथ आइए।"

दोनों गंगा तट छोड़कर दाहिनी ओर मुड़ गये। चौड़ी पगडंडी उत्तर दिशा को जाती थी। दोनों चुपचाप चलते रहे। छोटा-सा आम्रवन पार करने के पश्चात एक भग्न मंदिर के उद्यान में भिक्षु खड़ा हो गया। उसने सावधानी से चारों ओर देखकर शृगाल जैसी ध्वनि की। भट्टिय ने देखा वहां पर छोटे-बड़े कई मंदिरों के अवशेष खड़े थे। इसके अतिरिक्त दूर-दूर तक किसी ग्राम या गृह का आभास तक नहीं हुआ।

मंदिर के भीतर बहुत दूर तक वीथी-पथ चला गया था जो गुफा जैसा लग रहा था। भट्टिय ने देखा उल्का लिए कोई व्यक्ति उस गुफा के दूसरे छोर से निकट आ रहा है। उल्काधारी भट्टिय के सामने आकर खड़ा हो गया। वह उल्काधारी क्षीणकाय तेजस्वी विवेचनात्मक दृष्टि से निरीक्षण कर रहा था। सामने के मंदिर में कोई कपाट नहीं था। मंदिर के भीतर, बहुत दूर तक पतला-सा पथ चला गया था, जो अंधकार होने के कारण भयावह गुफा जैसा दीख रहा था। भिक्षु की संकेत ध्वनि खंडहरों मे प्रतिध्वनित हो उठी। क्षण-भर बाद ही, मंदिर के वीथी-पथ के दूसरे छोर पर उल्का का प्रकाश उग उठा। धीरे-धीरे उल्काधारी व्यक्ति निकट आता गया। भट्टिय रहस्यमय वातावरण में आबद्ध होता गया। उल्काधारी व्यक्ति भट्टिय के सामने आकर तीक्ष्ण दृष्टि से उसे दे देखने लगा। वह

व्यक्ति प्रौढ़ एवं क्षीणकाय होते हुए भी अपार शक्ति का प्रतीक जैसा लग रहा था। अग्रहायण मास की रात्रि मे भी उसकी देह पर यज्ञोपवीत के अतिरिक्त कोई वस्त्र नही था, कटि प्रदेश में मात्र स्वच्छ धवल कार्पासी अंतरीय बंधा हुआ था। उसकी आंखों में वेधकता थी, मुखमंडल पर स्वाध्याय एवं आत्मवल की रश्मियां प्रस्फुटित हो रही थी। भट्टिय उस परम तेजस्वी व्यक्तित्व के मूक प्रभाव के वशीभूत हो गया। वह समझ गया उसे इसी अलौकिक पुरुष की सेवा मे भेजा गया है। अपरिचित एवं स्वाभिमानी होते हुए भी भट्टिय अनायास उस व्यक्ति के समक्ष झुक गया और म्यान से खड्ग निकालर उसके चरणों पर रखता हुआ बोला—

"आचार्यपाद नारायणस्वामी की आज्ञा से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। धर्मयुद्ध की जय के निमित्त मैं अपना खड्ग आपके अधीन करता हूं। जय या पराजय ईश्वराधीन है।"

तभी उसके कानों में आदेशपूर्ण, प्रभावशाली गहन गंभीर घोष जैसा चमत्कारिक स्वर सुनायी पड़ा—

"उठो वत्स ! जय या पराजय ईश्वराधीन होते हुए भी अनित्य है। यहां सब कुछ अनित्य है जो नित्य है मात्र संस्कार परंपरा। जो शुभ कर्मों की शृंखला मात्र है। अपने संस्कार अक्षुण्ण रक्खो। इसके निमित्त तुम्हें वीरोचित कर्त्तव्य का पालन करना होगा। जनपद कल्याण, जयी अनुष्ठान एवं स्त्री संरक्षण के हुते उद्घोषित युद्ध महान यज्ञ है—धर्माचरण का साध्य है और जो यज्ञ है, उसे आस्थापूर्वक संपन्न करना ही वीरोचित कर्त्तव्य है। उठो। यह खड्ग उठाकर संकल्प करो कि मगध महाजनपद से अन्याय का उच्छेद करके ही नगर वास करोगे।"

"संकल्प करता हूं ब्राह्मण देवता !"

"लोक कल्याण का यह यज्ञ अनंत काल तक चलता रहेगा। युद्ध शरीर के साथ समाप्त हो सकता है, किंतु यज्ञ आत्मा की तरह है। यह कभी न समाप्त होने वाला एक सत्य है। तुम्हें अपना जीवन इसी सत्य के साक्षात्कार के लिए अर्पित करने का संकल्प लेना है। एकता का सूत्र समस्त जम्बूद्वीप को सुदृढ़ता से आबद्ध किये रहे, ऐसी व्यवस्था स्थापित करने में तुम विश्वास के साथ मेरा निर्देशन स्वीकार करोगे। मेरा—आचार्य औदुम्बरायण का।"

औदुम्बरायण का नाम सुनते ही भट्टिय चौक उठा। महान वैज्ञानिक एवं विश्वविख्यान दडनीतिज्ञाता आचार्य औदुम्बरायण को सामने देखकर उसने अपने भाग्य को सराहा। वह श्रद्धापूर्वक बोल उठा—

"संकल्प करता हूं आचार्य !"

"साधु आयुष्मान ! मेरे साथ आओ।···पुनर्वसु, अश्व का यथोचित प्रबंध कर दो !"

भट्टिय हेमजित अपूर्व पराक्रम से युक्त और युद्ध कौशल में पारंगत तो था ही, वह विभिन्न शस्त्रों का ज्ञाता होने के कारण बड़ा ही प्रबुद्ध व्यक्ति था। स्पष्ट ही; वह सरलता से किसी के वशीभूत होने वाला नही था। किंतु, महर्षि औदुम्बरायण के अलौकिक व्यक्तित्व के प्रभाव में वह यंत्रवत व्यवहार करने लगा जैसे वह वशीकरण के अधीन हो गया हो। औदुम्बरायण आगे-आगे चलते और भट्टिय पीछे-पीछे। मंदिर में कुछ दूर जाने पर एक कुंड दीख पड़ा जिसमें जल भरा हुआ था। आचार्य औदुम्बरायण ने दीवार के पास की मूर्ति को घुमा दिया। ऐसा करते ही कुंड का निचला तल, जल सहित बगल में चला गया और वहां नीचे जाने की सीढ़ियां निकल आयीं। आचार्य के साथ ही भट्टिय हेमजित नीचे गर्भ-गृह में उतर गया। उल्काओं के प्रकाश में गर्भ-गृह पूरी तरह आलोकित था। वहां पांच प्रकोष्ठ और एक प्रांगण था। आचार्य ने सामने के प्रकोष्ठ की ओर उंगली उठाकर कहा—

"उस प्रकोष्ठ में जाकर विश्राम करो। प्रातःकाल यज्ञशाला में आना।"

"यज्ञशाला ?"—भट्टिय ने जिज्ञासा की।

"हां, यहां सामने के प्रकोष्ठ में है !"—कहकर आचार्य धीर गति से आगे बढ़ गये। भट्टिय उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही विस्मित-चकित देखता रह गया। तक्षशिला से गिरिव्रज की देहली पर उसके चरण रखते ही जिस गति से घटना-चक्र परिवर्तित होने लगा उसी गति से भट्टिय का मानस भी उद्वेलित होने लगा। आयुधजीवी होने के साथ-साथ वह सदगृहपति बनकर जीवन यापन करने की कल्पना लेकर गिरिव्रज आया था। किंतु, चित्र कुछ और ही उपस्थित हो गया।

श्रवणा का अपूर्व रूप एवं उसका अलौकिक प्रेम भट्टिय के हृदय को मथता रहता था। आचार्य औदुम्बरायण ने उसका हृदय ही परिवर्तित कर दिया। अब तो वह निश्चित रूप से यंत्रवत हो गया था।

आचार्य के बताये प्रकोष्ठ में पहुंचते ही उसे विभिन्न प्रकार की चिंताओं ने घेर लिया। श्रवणा, विश्वतारा एवं उसके पिता अरक्षित होंगे। वह, न जाने कितनी इच्छाएं संजोकर गिरिव्रज आया था! श्रवणा से कुछ बात भी नहीं कर पाया कि दुष्ट पुलिकसेन ने राहु की तरह उसके सुखमय जीवन को ग्रसित कर लिया!

ज्यों-ज्यों वह सोचता, पुलिकसेन के प्रति उसकी घृणा बलवती होती जाती।



हेमजित रात-भर तरह-तरह की चिंताओं में घिरा रहा। प्रयत्न करने पर भी उसे नींद नहीं आयी। अभी ब्राह्म मुहूर्त भी नहीं हुआ था कि भयंकर एवं दारुण चीत्कार सुनकर वह उठ बैठा। प्रकोष्ठ में दीप का मद्धिम प्रकाश प्रकंपित हो रहा था। संपूर्ण वातावरण उत्साहजनक रहस्य के चक्र में गतिशील था। जिज्ञासावश वह चुपचाप प्रकोष्ठ के द्वार पर जा पहुंचा।

तीक्ष्ण चीत्कार अब मद्धिम पड़ गया था। फिर भी उसकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई। दबे पांव उसी ओर बढ़ चला जिधर से चीत्कार की विचित्र ध्वनि आयी थी। अचानक उसे ज्ञान हुआ कि वह आचार्य की यज्ञशाला के द्वार पर आ पहुंचा है। अतएव, वह घबरा कर लौटने ही वाला

था कि आदेश आया—

"भीतर चले आओ।"

भट्टिय यंत्रवत् यज्ञशाला में प्रविष्ट हो गया। यज्ञशाला और कुछ नही, रसायनशाला था जहां विचित्र दृश्य उपस्थित था। एक श्वान आचार्य के समक्ष मृतवत् पड़ा था जिसपर उनका कुछ प्रयोग चल रहा था। सैकड़ों ओषधि-कुप्पियां, पशुचर्म, शुष्क पत्तियां आदि इधर-उधर पड़ी थी। आचार्य कार्यरत हो बोले—

"मैं जानता था कि तुम सो नही सकोगे। यह स्थान ही ऐसा है। क्या किया जाय। युद्ध की स्थिति ऐसी ही होती है वत्स। और तुम ठहरे इस युद्ध के नायक!"

"जी?"—भट्टिय चौंक उठा।

"हां वत्स! तुम्हारी भुजाओं में भावी भारतवर्ष की नीव रखने की शक्ति है। इसी दृष्टि से तक्षशिला में आचार्य भूरिश्रवा ने तुम्हें प्रशिक्षित किया है। मैंने कहा था न, कि एक शाश्वत यज्ञ आरंभ करना है। इसी यज्ञ के द्वारा अंत में चलकर भारत देश की स्थापना होगी। अभी तो यह देश खड-खंड होकर बड़े और छोटे जनपदों में बंटा हुआ है। इन जनपदों के शासक अपनी-अपनी सुख-समृद्धि और रास-रंग के लिए प्रजा को लूट रहे हैं। इन राजाओं के सामने कोई उद्देश्य नही है। ये अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गये हैं। इनका कर्त्तव्य होना चाहिए था कि दिन-रात एक करके ये प्रजा को सुख और समृद्धि की राह पर ले चलते, उनमें सुरक्षा की राह पर ले चलते, उनमें सुरक्षा की भावना उत्पन्न करते और उसे समान रूप से विकसित होने का अवसर देते। लेकिन, ये छोटे-छोटे राजा स्वयं अराजकता और अनुशासनहीनता के प्रतीक बन गये। ऐसी स्थिति में देश के विचारकों और मनीषियों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे प्रजा में से ही मेधावी, निष्ठावान, त्यागी, विवेकशील और शूरवीर युवकों की दूसरी शासक पंक्ति का निर्माण करें। आचार्य भूरिश्रवा इस सत्य को जानते थे कि तुम इस दूसरी शासक पक्ति के निर्माता बनने के सर्वथा योग्य हो।"

"मैं समझा नहीं आचार्य!" भट्टिय किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर बोला।

आचार्य के मुखमंडल का गांभीर्य गह्नतम हो उठा। वे बोले—

"तुम्हें सूर्योदय के पूर्व ही यहां से प्रस्थान कर देना है। अग की सीमा पर अराजकता फैली हुई है। पुलिकसेन मगध का राजा बनने के अपने षड्-यंत्र में उलझा हुआ है। राजा व्यभिचारी है। गिरिव्रज का शस्त्रागार जल जाने से राजा की शक्ति क्षीण हो गयी है। सामंतगण अलग स्वच्छंद होने की धुन में हैं। पड़ोसी राज्य अग के औत्साहिक सैनिक अपने राजा से प्रेरणा पाकर, मगध की सीमा मे अपनी दस्युवृत्ति को तुष्ट कर रहे हैं। प्रजा की चिंता किसी को नहीं है। तुम्हें उसी क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र पहुंचना है और व्यवस्था स्थापित करनी है।"

"किंतु, मैं किस अधिकार से वहां व्यवस्था स्थापित करने की धृष्टता कर सकता हूं?"

"प्रजापालक के अधिकार से—भारत के भविष्य-निर्माता के अधि-कार से राजा के कर्त्तव्यच्युत होने पर प्रजा के नेता के अधिकार से—श्रेणिय बल के महाबलाधिकृत होने के अधिकार से। आयुष्मान्! आचार्य भूरिश्रवा ने तुम्हें वयस्य नारायणस्वामी एवं मेरे निर्देशन में अपना जीवन-पथ निर्धारित करने का प्रवचन दिया। जानते हो क्यों? कभी विचार किया है? आचार्य भूरिश्रवा ने मात्र भविष्य की चिंता से प्रेरित होकर ऐसा आदेश दिया। मगध को एक नेता की आवश्कता थी जो संपूर्ण देश में एकता का मंत्र फूंक सके, जो बाहरी शत्रुओं से देश की रक्षा कर सके और जो वास्तविक सुराज स्थापित कर प्रजा का दुःख दूर कर सके। नेतृत्व का वह गुण हम लोगों ने तुम में परिलक्षित होते देखा। शस्त्राभ्यास काल में ही तुमने जिस प्रतिभा का परिचय दिया, तक्षशिला की रक्षा में तुमने शासानु-शास के अजेय सैनिकों के छक्के छुड़ाकर जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया और तक्षशिलीय सेना के सेनापति पद की लिप्सा त्याग कर अपने देश मगध मे मात्र सैनिक जीवन यापन करने का तुमने जो व्रत लिया उसी प्रतिभा, पराक्रम एवं त्याग को देखकर हम लोगों को विदित हो गया कि तुम्हें पाकर तुम्हारा देश मगध गौरवान्वित हो उठेगा। इसलिए, तुम्हारा देश तुम्हें सैनिक रूप में न हो—नेता रूप में वरण करता है। चम्पा की सीमा पर बसने वाली मगध प्रजा आतुरता से तुम्हारी राह देख रही है।"

"आपकी जैसी आज्ञा आचार्य!"

"किंतु वत्स ! इस कार्य के लिए तुम्हें अपनी अमूल्य से अमूल्य वस्तु का त्याग करना होगा।"

"मैं प्रस्तुत हूं।"

"तुम्हें अपना निजत्व त्यागना होगा।"

"वचन देता हूं।"

"तुम्हें ममता-मोह के बंधन से मुक्त हो जाना होगा।"

"संकल्प करता हूं।"

"साधु आयुष्मान् ! वासुदेव कृष्णा तुम्हें सफलता प्रदान करे। किंतु, तुम्हें कदाचित् विदित नही होगा कि गिरिव्रज छोड़ने के पश्चात तुम्हारे परिवार के साथ क्या घटना घटी है ?"

"क्यों ? क्या हुआ ?" भट्टिय आतुर हो उठा।

"महामात्य पुलिकसेन ने तुम्हारे पिता को कारागार में डाल दिया।"

"हैं ?"—भट्टिय आवेश से तन गया।

"और सुनो आयुष्मान् ! धीरज रखकर सुनो। तुम्हारी बहन, विश्वतारा को चांडाल पुलिकसेन वक्रघोष की सेवा मे रख आया। उसने तुम्हारी पत्नी को•••

"आचार्य ! मैं अभी गिरिव्रज जाऊंगा। पुलिकसेन का रक्त पीकर ही मुझे कोई अन्य राह दिखायी देगी।"—रोषावेष्टित होकर भट्टिय चीख उठा। आचार्यश्री गंभीर स्वर में बोले—

"भट्टिय ! तुम कुछ नहीं कर सकते ?"

"आचार्य !"

"हां, मैं ठीक ही कह रहा हूं। क्या तुम भूल गये कि तुमने मेरे समक्ष क्या संकल्प किया है ? जो अपने संकल्प को इतना शीघ्र भूल सकता है—उसका जीवन निरर्थक है। वह कुछ नहीं कर सकता ?"

"किंतु आचार्य ! माता पिता, बहन और पत्नी के प्रति भी तो मेरा कुछ कर्त्तव्य है ?"

"और देश के प्रति ?"

"सर्वोपरि !"

"फिर अधीर क्यो होते हो ? राजा और महामात्य की भोग-लिप्सा

पर न जाने कितनी तरुणियों के कौमार्य का बलिदान हो चुका है। मगध फिर भी शांत रहा। श्रवणा और विश्वतारा मे मगध को देखो वत्स ! इस घटना से तो तुम्हारे सकल्प को अधिक बल मिलना चाहिए।"

"चम्पा की सीमा पर जाकर मुझे क्या करना होगा ?"

"वहां पहुचने पर तुम्हें सब मालूम हो जायेगा। पांच सहस्र योद्धाओं का श्रेणिय बल संगठित रूप में तुम्हारा अनुसरण करेगा। पुनर्वसु तुम्हारी छाया बन कर तुम्हारे साथ रहेगा। इस पर विश्वास करना। पुनर्वसु ही तुम्हें समुचित स्थान तक पहुंचाने में पथ-प्रदर्शक का कार्य करेगा।"

"अच्छा तो आज्ञा दीजिए।"

"साधु आयुष्मान् !"

भट्टिय बाहर जाने को मुड़ा ही था कि आचार्य ने उसे रोका—

"ठहरो ! अपने मन में एक आस्था जमा लो कि गिरिव्रज के आसपास वयस्य नारायणस्वामी के रहते हुए तुम्हारे पिता, बहन तथा पत्नी का कोई स्पर्श भी नही कर सकता।"

"तो क्या मेरी बहन···?"

"सुरक्षित स्थान पर पहुंच गयी है। तुम्हारे पिता अभी कारागार में ही हैं और इसमें कोई क्षति भी नहीं है।" आचार्यपाद ने भट्टिय के उल्लास में बाधा देकर बात पूरी कर दी। भट्टिय आनंदविह्वल होकर आचार्य के चरणों पर झुक गया। आचार्य ने कहा—

"किंतु तुम श्रवणा से अब कभी नहीं मिल सकते।"

"क्यों ?" भट्टिय ने अधीर होकर पूछा।

"क्योंकि श्रवणा ने अपने प्राणों की आहुति दे दी।"

"आचार्य !" हेमजित चीख उठा।

"अधीर नहीं होते आयुष्मान् ! श्रवणा के समक्ष दूसरी कोई राह नही थी। चांडाल महामात्य पुलिकसेन श्रवणा के सतीत्व के साथ खिलवाड़ करना चाहता था। श्रवणा ने उसके मनोभाव पढ़ लिये। वह बंदी बनाकर महामात्य के वासना-तृप्तिगृह चतुःशाल के प्रकोष्ठ में डाल दी गयी। महामात्य विश्वतारा को भैरवाचार्य की सेवा में रखने चला गया। श्रवणा कदाचित् समझ गयी कि लौटकर महामात्य उसके साथ कैसा व्यवहार

करेगा। इसलिए, और कोई उपाय न देखकर उसने प्रकोष्ठ में जलते हुए दीप से अपनी देह फूककर राख कर दी। काष्ठ के चतु:शाल का आधा भाग भी जलकर राख हो गया। श्रवणा अमर हो गयी।" इतना कहकर आचार्य चुप हो रहे।

श्रेणिय भट्टिय हेमजित की आंखें सूखी हुई थीं। वह अपलक दृष्टि से सामने शून्य में देख रहा था। अचानक उसने आचार्य के चरणों पर हाथ रखकर कहा—

"आपके चरणों को साक्षी रख कर मैं मृत श्रवणा की सौगंध खाता हूं, मैं मगध महाजनपद की सौगंध खाता हूं, मैं अपने गुरुदेव की सौगंध खाता हूं कि मैं तब तक चैन की सांस नही लूंगा जब तक कि महामात्य पुलिकसेन सहित बार्हद्रथ वंश का उच्छेद नहीं कर दूगा। मैं मगध के अपवित्र आर्य-पट्ट की कभी वंदना नहीं करूंगा।"

इतना कहकर वह रसायनशाला से बाहर हो गया। कुछ देर बाद, दो अश्वारोही ब्राह्म मुहूर्त में ही पाटलिग्राम से पूर्व की ओर उड़े चले जा रहे थे।



मगध के ठीक पूर्व में अंग महाजनपद था जिसकी राजधानी चम्पा थी। उन दिनों चम्पा नगर की शोभा देखते ही बनती थी। नगर के चारों ओर तीन परकोटे थे जिसके बाद खाई खुदी हुई थी। परकोटे के ऊपर देवपथ तथा तोरण बने हुए थे। नगर में आने-जाने के लिए चारों दिशाओं में चार

विशाल द्वार निर्मित थे जिन पर कठोर पहरा लगा रहता था।

नगर में धन कुबेर जैसे श्रेष्ठिगण निवास करते थे जिनका सार्थवाह जल-थल मार्ग से उत्तर में कम्बोज तक तथा पूर्व में समुद्र मार्ग से सुवर्णभूमि तक आता-जाता था। चम्पा का अपार वैभव आर्यावर्त के, विशेषकर प्राच्य प्रदेश के राजाओं की महत्त्वाकांक्षा को उद्वेलित करता रहता। किंतु, अंग की शक्तिशाली सेना के भय से शत्रुगण अपने हाथ पांव समेटे रहते थे। अंग का आतंक मगध को सन्त्रस्त किये हुए था।

उन दिनों अंग के राज्यसिंहासन पर प्रतापी महाराज दधिवाहन विराजमान थे। किंतु अचानक ही चित्र बदल गया। चम्पा पर विपत्ति के बादल मंडराने लगे। वत्सराज सतानिक की लोलुप दृष्टि से चम्पा आतंकित हो गयी। इधर, मगध सीमा की ओर से दस्युगण चम्पा नगर में घुस कर दिन-दहाड़े व्यापारियों को लूटने लगे। दस्युओं का उत्पात दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। वे अचानक आ पहुंचते और जब तक राजसैनिक वहां पहुंचें-पहुंचे तब तक वे पुनः चम्पारण्य के गहन आंचल में जा छुपते। दस्युओं का नेता कोई दुर्धर्ष व्यक्ति था जिसका नाम पता किसी को भी मालूम नहीं था। किंतु जिसके पौरुष की गाथा उस क्षेत्र के लोकगीतों का मुख्य विषय बन गयी थी।

दस्यु-नेता का रूप किसी ने नहीं देखा था। निस्संदेह उसका आकार-प्रकार बहुतों ने देखा था जिसके आधार पर वह तरुणियों की दृष्टि में कृष्ण बनकर रम गया था। अपनी उदारता के कारण वह कुछ ही दिनों में लोक-कथाओं का नायक बन बैठा। वह मुक्तहस्त होकर ब्राह्मणों, निर्धनों एवं असहायों को गुप्तदान देता था, स्त्री एवं बाल बच्चों का रोआं तक स्पर्श नहीं करता था, निरस्त्र जनों पर शस्त्र नहीं उठाता था और साधारण नागरिक के जीवन-क्रम में रंचमात्र भी बाधा नहीं उपस्थित करता था।

अंगराज दधिवाहन स्वयं पराक्रमी एवं प्रजावत्सल थे। प्रजा का दुःख दूर करने का उन्होंने बहुत यत्न किया। चम्पा के श्रेष्ठियों के दुःख एवं पीड़ा से महाराज विह्वल हो उठे। उन्होंने स्वयं कई बार दस्युओं का पीछा किया। किंतु सफल नहीं हो सके। महाराज, चम्पारण्य में, आखेट के बहाने, दस्युराज का सामना करने को सन्नद्ध होकर गये। कई दिनों तक वन में

पड़ाव डाले पड़े रहे और अंततोगत्वा चम्पा लौट आये। दस्युराज से साक्षात्कार नहीं हुआ। फिर भी महाराज दधिवाहन ने प्रयत्न नहीं छोड़ा।

इधर मगध राज्य का पूर्वी भाग दस्युराज के अधिकार-क्षेत्र मे आ गया था। वहां वह लूट-पाट नहीं मचाता था। मात्र भूमिकर तथा पण्यशुल्क प्राप्त करने का अधिकार उसने सीमावर्ती क्षेत्र में बसी प्रजा से ले लिया और जनसाधारण को अभय-दान दे दिया था। अतएव, वहां के ग्रामीण और नागरिक बहुत संतुष्ट एवं प्रसन्न थे। कृष्ण दस्यु के आगमन को उन लोगों ने वरदान मान कर ईश्वर को धन्यवाद दिया। कारण, कृष्ण दस्यु के आगमन के साथ ही अंग के सैनिक दस्युओं का उत्पात समाप्त हो गया।

सूर्यास्त हो गया था राजा दधिवाहन आखेट से लौट आये थे। किंतु अग की राजकुमारी चन्द्रबाला स्कंधावार में अब तक नहीं लौटी थीं। दधिवाहन चिंताकुल होकर अपने विशाल कांडपटमंडप में चक्कर काट रहे थे। राजकुमारी के अंगरक्षकों का भी कहीं पता नहीं था।

रात उतर आयी। राजकुमारी के अंगरक्षक स्कंधावार में लौट आये। घटना इस प्रकार घटी कि महाराज के दल से विलग होने के पश्चात् राजकुमारी की दृष्टि एक हिरण पर जा पड़ी। हिरण का पीछा करते करते राजकुमारी अपने अंगरक्षकों से दूर चली गयीं। अंगरक्षकों ने उन्हें ढूढ़ निकालने का ध्रुव प्रयत्न किया। राजकुमारी जैसे पृथ्वी में समा गयी थी। उनका कहीं चिह्न तक नहीं मिला। अंगरक्षकों ने सोचा कि कदाचित् राजकुमारी स्कंधावार में पहुंच गयी हैं। हार-थक कर वे लोग लौट आये।

अंगरक्षकों को अकेला देखकर महाराज दधिवाहन क्रोध से पागल हो गये। उनकी रही सही आशा समाप्त हो गयी। अब यह निश्चित हो गया कि राजकुमारी या तो जंगल में भटक रही होंगी या अन्य पशु ने उन्हें··· ! आशंका मात्र से राज्याधिकारी विचलित हो उठे। आदेश पाकर सहस्रों सैनिक उल्का ले-लेकर चम्पारण्य के बीहड़ अंचल में घुस पड़े।

महाराज की चिंता पराकाष्ठा पर पहुंच गयी। चन्द्रबाला उनकी एकमात्र संतान थी। उसे उन्होंने पुत्रवत पाला था। यही कारण था कि वे जहां भी जाते, चन्द्रबाला को साथ ले जाते थे।

उधर चन्द्रबाला का अश्व हिरण का पीछा करते करते वन प्रदेश के भीतर जा पहुंचा। राह दुर्गम हो गयी थी। अश्व की गति मद पड गयी। हिरण कहीं अंतर्धान हो गया। हिरण को सामने न देखकर राजकुमारी को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। सभी अंगरक्षक उनसे बिछुड़ चुके थे। राजकुमारी चन्द्रबाला के ललाट पर घबराहट के मारे पसीने की बूंदें निकल आयी।

फिर भी संयमित होकर उन्होंने अपना अश्व मोड़ दिया। राजकुमारी का अश्व चलते-चलते थक गया था। किंतु, वन प्रदेश की अथ-इति का कुछ भी अनुमान नहीं लग पा रहा था। अंधकार उतरने लगा था। चन्द्रबाला चिंता, भय एवं दुःख के आधिक्य से विचलित हो उठी। किंतु, विपत्ति अकेली नहीं आती। चन्द्रबाला का अश्व अचानक रुक गया। चन्द्रबाला ने देखा कि सामने की राह पर थोड़ी ही दूर एक सिंह बैठा हुआ अश्व को बड़े चाव से देख रहा है। आखेट में प्रवीण होते हुए भी चन्द्रबाला के हाथ-पांव फूल गये। बहुत कठिनाई से साहस बटोर कर उसने अपना शल्य साध कर फेंक दिया। कदाचित् वह संधान करने में चूक गयी थी। क्योंकि अकस्मात् सिंह की दहाड़ से वन प्रदेश कांप उठा। चन्द्रबाला को लगा, जैसे कोई विशाल चट्टान उसके ऊपर आ गिरी हो। उसके बाद उसकी चेतना जाती रही। उसे निश्चय हो गया कि वह मृत्यु के मुख में जा पड़ी है।

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत रहा था। चन्द्रबाला पर्यंकिका से उठ बैठी। उसने आंखें फाड़-फाड़कर अपने चारों ओर देखा और वह कौतूहल से भर गयी। वह समझ नहीं पा रही थी कि इस कुटीर में कैसे चली आयी ? सामने फूस की टाटी पर गैंडे की ढाल के नीचे दो हाथ का खड्ग लटक रहा था। मस्तिष्क पर जोर देते रहने के बाद धीरे-धीरे चन्द्रबाला को सभी घटनाएं स्मरण होने लगीं। फिर भी, सिंह की चपेट खाकर वह इस कुटीर में कैसे आ पहुंची, यह बात उसकी समझ में नहीं आयी। उसने सिंह के पंजे का घाव देखने के लिए अपनी देह टटोलनी चाही। किंतु उसका दाहिना हाथ उठ नहीं सका। वह कराह कर रह गयी। तब उसने अनुभव किया कि दाहिने कंधे से लेकर नीचे वक्ष तक पट्टियां बंधी हैं। वह चुपचाप लेटी रही। कुटीर में दीपक मंद-मंद जलता रहा। चन्द्रबाला अपने प्राण-रक्षक

को देखने के लिए आतुर हो उठी। उसने अपने रक्षक को बहुत बडा पुरस्कार देने का भी मन ही मन निश्चय कर लिया।

अधिक काल तक उसे प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। बाहर से किसी के आने की आहट मिलने लगी। द्वार पर आकर पदचाप की ध्वनि रुक गयी। चन्द्रबाला ने सिर घुमाकर देखा—एक बलिष्ठ परम तेजस्वी तरुण हाथ में जड़ी-बूटी लिये कुटीर में आकर खड़ा हो गया है। तरुण के दायें हाथ में भयंकर भाला था, बायें कंधे पर बहुत बड़ा महेशाष्व धनुष तथा पीठ पर सपत्र बाणों से भरा तुणीर लटक रहा था। कटि में पट्टिका के सहारे रत्न-जटित मूठवाला खड्ग सुशोभित था।

"बड़ी अच्छी बात है कि आपकी चेतना लौट आयी है। घाव की पीड़ा कैसी है ?"—तरुण ने सहानुभूति के स्वर में पूछा। चन्द्रबाला उस देव पुरुष को देखती ही रह गयी। पुरस्कार देने की मन की बात मन में ही रह गयी। लगा, जैसे वह तरुण जन्म-जन्मांतर से उसका जाना-पहचाना हो—निरा अपना हो। तरुण ने अपना प्रश्न दुहराया तब चन्द्रबाला की चेतना लौटी। बोली—"हाथ हिलाने पर भयंकर पीड़ा होती है। वैसे ठीक हूं।"

"ऐसा तो होगा ही। घाव भरने मे तीन-चार दिन लग जायेंगे।"

"तीन-चार दिन ?" चन्द्रबाला चौंक उठी।

"हां।" कह कर तरुण भेषज-सामग्री को खरल करने लगा। चन्द्रबाला उस स्थिर-चित्त तरुण को क्षण-भर देखती रही फिर बोली—

"मैं तीन-चार दिन तक यहां इसी प्रकार पड़ी रहूं ? घर न जाऊं ?"

तरुण ने मुस्कराकर चन्द्रबाला की ओर देखा। दोनों की आंखें मिली। चन्द्रबाला की आंखें झुक गयीं। तरुण किंचित् मुस्कराकर बोला—

"कैसे कहूं कि आप घर में ही पड़ी है। वन तो है ही, किंतु यहां वन-राज का भय नहीं है।"

चन्द्रबाला ने दूसरी ओर देखते हुए मद मुस्कान के साथ धीमे से कहा—

"वनराज तो सामने ही बैठे हैं।"

"जी ?"—तरुण चौंक उठा।

"कदाचित् वनराज से मेरे जीवन की रक्षा आपने ही की।"

"जी नही। कृष्ण वासुदेव ने।"

"वह तो सर्वोपरि हैं। किंतु उसके निमित्त आप ही थे। थे न ?"

"हां, आप ऐसा कह सकती हैं !"

"गंगा को धारण करने का निमित्त कितना महान था ?"

"आपका तात्पर्य ?"

"कृष्ण वासुदेव की साकार शक्ति धारण करने वाला निश्चय ही महान् होगा !"

"आप मेरी अकिंचनता का उपहास कर रही हैं।"—तरुण ने किंचित् गंभीर होकर कहा। चन्द्रबाला, अचानक तरुण की ओर मुड़ गयी। तरुण की बात सुन कर वह विकल हो उठी। बहुत ही गंभीर होकर बोली—

"ऐसा न कहिए। मुझे किसी का उपहास करना नहीं आता। फिर आप तो मेरे...मेरे...मेरे प्राणदाता है। यदि आप समय पर नहीं आते, या आपके स्थान पर कोई अन्य होता तो क्या मैं अभी बोलती होती ? किसी को पता भी नहीं चलता कि मेरा अन्त किस प्रकार हुआ। मेरे पिता-श्री तो मेरे अभाव में मरणासन्न ही हो जाते।" बात को गंभीर रूप पकड़ते देखकर तरुण हंसता हुआ बोल उठा—

"आपको खोकर आपके पिता निश्चय ही आनंद में होंगे।"

"आपका तात्पर्य ?"

"यही कि आप जैसी सुंदर, सुकुमार षोडशी कन्या को आखेट के लिए बीहड़ वन प्रदेश में भेजने का साहस रखने वाला पिता निश्चय ही अपनी कन्या से मुक्ति चाहता होगा !"

"अब आप मेरा उपहास कर रहे हैं।" चन्द्रबाला ने भोलेपन से तरुण को देखते हुए कहा। तरुण ने अप्रतीक्ष्य उत्तर दिया—

"हां, आपने ठीक ही समझा। आपके पिता सचमुच क्रूर हैं।"

"आपको पता है कि मेरे पिता कौन हैं ?"

"आपकी वेशभूषा से अनुमान लगा सकता हूं—निस्संदेह कोई सामंत होंगे।"

"सामंत नहीं—सम्राट। परमेश्वर परमवीर परम भट्टारक महा-कुलीन महाराज दधिवाहन देव।"

तरुण ने अचानक गंभीर होकर रूखे स्वर में कहा। अंतिम वाक्य कहते-कहते तरुण के मुखमंडल पर घृणा एवं आक्रोश का भाव घनीभूत हो उठा। चन्द्रबाला ने अनुभव किया जैसे उसने कोई अनुचित और ओछी बात कह दी हो। वह चुप हो रही। कुछ क्षणों के पश्चात् तरुण का भावावेश जाता रहा। स्नेहपूर्वक बोला—

"किंचित् हाथ यहां से हटाइए। पट्टी खोल दूं।"

"ऐसा कैसे हो सकता है? आप पट्टी खोलेंगे?"

"तो और कौन बैठा है यहां?"

"तो क्या आपने ही यह पट्टी बांधी थी?"

"ऐसा स्वर्ण अवसर भला हाथ से चला जाने देता?"—तरुण ने चिढ़ाने के भाव से मुस्कराकर कहा। तरुणी चन्द्रबाला लाज से मर-सी गयी। विह्वल स्वर में स्वगत भाषण करती हुई बोली—

"हे ईश्वर! आपको रंचमात्र भी संकोच नहीं हुआ!"

"क्यों इसमें संकोच की क्या बात है? आपको मर जाने देता?"

"मैं तो यह बात सुनकर ही संकोच एवं लज्जा से मरी जा रही हूं। आपने मुझे निर्वसनावस्था में···"

"राजकुमारी! समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं होगा। अभी आप रोगिणी हैं—और मैं वैद्य। मेरी दृष्टि में आपके सभी अंग एक जैसे हैं—भले ही वह अंग आपका हाथ हो या स्तन!"—तरुण ने अनासक्त भाव से कह दिया। चन्द्रबाला लाज के मारे दूसरी ओर आंखें बंद किये मुड़ गयी। संकोच, श्रद्धा एवं समर्पण के अतिरेक से वह अभिभूत हो उठी। क्षण-भर के लिए वह अलौकिक स्थिति में पहुंच गयी। तरुण को अच्छा अवसर हाथ लगा। उसने झटपट उसका कंधा पकड़कर पट्टी खोल डाली। चन्द्रबाला चाहते हुए प्रतिरोध नहीं कर सकी। तरुण ने ओषधि लगाकर पुनः पट्टी बांध दी और कहा—

"गरम दूध के साथ थोड़ा हलुआ खाकर सो जाइए। अभी ले आता हूं!" बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये तरुण कुटीर से बाहर चला गया और कुछ ही देर बाद दूध और हलुआ लेकर लौट आया। उसने स्वयं अपने हाथों से चन्द्रबाला को हलुआ खिलाया, दूध पिलाया और आचमन करा-

कर वस्त्र-खंड से उसका मुंह पोछ दिया। चन्द्रबाला लेटी-लेटी खाती रही और मुग्ध दृष्टि से तरुण का स्नेहसिक्त मुखमंडल निहारती रही।



"तुम मुझे अपना परिचय नहीं बताओगे ?"—खट्वा पर बैठी-बैठी विनती के स्वर में चन्द्रबाला ने तरुण से प्रश्न किया। तरुण पास ही बैठा था। उसके होठों पर विषादपूर्ण मुस्कुराहट कांपने लगी। मन के दु:ख छिपाता हुआ बोला—

"परिचय प्राप्त करके क्या करोगी ? मैं विधुर यायावर हू। राजयोग में जन्म लेकर भी शंकुपथ का भिक्षुक बना हुआ हूं। वैभव से आवृत होने पर भी दरिद्र का जीवन-यापन कर रहा हूं। गृहपति का अधिकार पाकर भी निहंग बना घूम रहा हूं।" तरुण की बातें सुनकर चन्द्रबाला की आंखें छलछला आयीं। तरुण ने हंसकर अपने आच्छादनक से उसके अश्रु पोंछते हुए प्यार से पूछा—

"क्या हो गया है तुम्हें ?"

"कुछ नहीं ! यहां से जाने को जी नहीं चाहता। फिर भी मुझे जाना ही पड़ेगा !"

"हां, जाना तो पड़ेगा ही ! सुख पहुंचाने के उपक्रम में मैंने तुम्हें घोर विपत्ति में डाल दिया। मैं बहुत लज्जित हूं चन्द्रा ! मेरे चलते···"

"नहीं, ऐसा मत कहो—ऐसा मत कहो।"—चन्द्रबाला ने तरुण के मुख पर हाथ रख दिया। बोलो—"तुम मेरे प्राण-देवता हो ! इन्द्र हो !

तुमने मुझे सत्य ही जीवन-दान दिया है ।"

"ऐसा जीवन भी क्या चन्द्रा जो मृत्यु से भी हीन हो । उधर तुम दुखी होगी इधर मैं आकुल रहूंगा ।"

"तो तुम मेरे पिता के समक्ष चलते क्यों नहीं ? यहां चम्पारण्य में क्या धरा है ?"

"बहुत कुछ धरा है चन्द्रा ! मेरा संकल्प, मेरी गुरु दक्षिणा, मेरा देश और मेरा धर्म इसी वन-प्रदेश में स्थापित है । मेरा जीवन अपना नहीं है । मेरी आकांक्षाएं मेरी नही हैं । अन्यथा मैं तुम्हें कही नहीं जाने देता ।"

"तुम बड़े निष्ठुर हो ! चार दिन मे ही तुमने मेरे हृदय को बेधकर रख दिया । प्राण-दान देकर जीवन हर लिया । नही, मैं कहीं नही जाऊंगी। तुम्हारे बिना मैं जी नही सकती ।"

"यही तो असंभव है सखी ! मैं तुम्हें यहां नही रख सकता । चम्पा का धवलगृह ही तुम्हारे योग्य है और मेरे लिए चम्पारण्य का वन-प्रदेश । विधि का यह विचित्र विधान है । भाग्य का यह अनोखा व्यवहार है, जिसे हम-तुम नहीं समझ सकते । मैंने तुम्हें ऐसे स्थान पर, ऐसी स्थिति में पाया जहां मनुष्य मात्र का प्रवेश वर्जित है । कदाचित् इसी हेतु हम-तुम मिलकर भी नहीं मिल पा रहे हैं ।"

"तो क्या तुम मुझे अपने दर्शन से भी वंचित रखोगे ?"

"उससे क्या लाभ होगा भला ? दुख तो बढ़ेगा । चन्द्रा ! मेरे भाग्य में प्रेम तो है किंतु प्रतीक्षा के रूप में । मुझ पर उत्सर्ग होनेवाले तो हैं किंतु अकेला बना देने के लिए ।"

चन्द्रबाला चीख उठी—

"किंतु मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी—नहीं छोड़ूंगी—नहीं छोड़ूंगी !" और वह तरुण से लिपट गयी । तरुण उसकी पीठ को हाथ से सहलाता रहा । क्रूर आयुधजीवी तरुण की आंखें भर आयीं । इसी तरह दोनों एक-दूसरे से न जाने कितनी देर तक आबद्ध रहे । अचानक चन्द्रबाला तरुण के बाहुपाश से मुक्त होकर उसकी आंखों में देखती हुई बोली—

"क्या हम लोग इस जन्म में कभी एक नहीं हो सकते ?"

"क्यो नहीं हो सकते?" तीक्ष्ण, गंभीर भविष्यवाणी जैसा स्वर कुटीर

को बेधता हुआ दूर निकल गया। तरुण चौककर खट्वा से नीचे खड़ा हो गया। चन्द्रबाला सकपकाकर सकोच से सिकुड़ गयी।

कुटीर के द्वार पर एक परम तपस्वी, परम तेजवान प्रौढ़ व्यक्ति खड़े थे। तरुण ने झुककर अभ्यर्थना की—

"आचार्य औदुम्बरायण ! आप ?"

"हां, वत्स हेमजित ! मेरी गणना मिथ्या नही हो सकती। मै ठीक समय पर आ पहुंचा।"

आचार्य ने चन्द्रबाला की ओर उन्मुख होकर कहा—

"सुमगली चन्द्रबाला ! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी !"

चन्द्रबाला 'सुमंगली' संबोधन सुनकर चौंक उठी। बोली—

"मैं अभी कन्या हूं मुनिवर !"

"जानता हूं ! जो तुम्हारा नाम-गोत्र जान सकता है वह तुम्हारी वास्तविकता से अपरिचित नहीं रह सकता। तुमने मन-ही-मन इस तरुण का वरण किया है अतएव मैंने तुम्हें सुमंगली कहा। और सामाजिक मान्यता का विधान अभी संपन्न नही हुआ इसीलिए मैंने कहा कि तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। किंतु, तुम्हें एक संकल्प लेना होगा।"

"मैं कुछ भी करने को प्रस्तुत हूं आचार्य प्रवर !"

"तुम संकल्प करो कि इस तरुण की परोक्ष या अपरोक्ष रूप से किसी के समक्ष चर्चा नहीं करोगी, अपने प्रेम को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करोगी।"

"ऐसा ही होगा आचार्य ! किंतु कब तक ?"—चन्द्रबाला ने उल्लसित होकर पूछा।

आचार्य औदुम्बरायण ने आदेशात्मक स्वर में कहा—"समय का निश्चय समय ही कर सकता है ?"

"मैं संकल्प करती हू !"—चन्द्रबाला ने कहा।

"साधु सुमंगली ! मैं भारद्वाज गोत्र का महाकुलीन आदित्यव्रतिक ब्राह्मण औदुम्बरायण पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित होकर 'गार्हपत्य' अग्नि का आह्वान करके तुम दोनों का उपयमन संस्कार सपन्न कराऊंगा।

"किंतु आचार्य··· !"

"किंतु-परंतु कुछ नही। तुम्हारे धर्मयुद्ध के उपयुक्त ही यह विधान है!" आचार्य ने भट्टिय की बात बीच मे ही काट दी और चन्द्रबाला से कहा—

"कल ब्राह्म मुहूर्त में तुम्हारा विवाह होगा। और नौ दिन तक तुम दोनों इसी वन-प्रदेश में साथ-साथ रहोगे। दसवें दिन ही तुम यहां से चम्पा जा सकोगी। मेरी भविष्यवाणी है कि तुम्हारा पुत्र सार्वभौम सम्राट के पद पर अभिषिक्त होगा।"

इतना कहकर आचार्य औदुम्बरायण कुटीर के बाहर चले गये। क्षण-भर विस्मितावस्था में पड़े रहने के पश्चात भट्टिय ने चन्द्रबाला को आलिंगन-बद्ध कर लिया।



रात्रि के प्रथम प्रहर की अवधि बीतने ही वाली थी कि दो अश्वारोही चम्पा नगर के पूर्वी प्रमुख द्वार पर से नगर में प्रविष्ट हुए। द्वार के प्रहरियों ने शंकालु होकर उन अश्वारोहियों की ओर देखा।

कृष्ण कौषेय आच्छादनक से पूर्णतया ढका होने पर भी दोनों अश्वारोहियों का छद्मवेश छिपाये नहीं छिपता था। एक अश्वारोही अति बलिष्ठ एवं तेजस्वी योद्धा दीखता था तो दूसरा छरहरा, सुकुमार और सलोना।

चम्पा के राजपथ पर नागरिकों, श्रेष्ठियों एवं राज्याधिकारियों के रथ और अश्व दौड़ लगा रहे थे। पैदल चलनेवालों की देह छिल रही थीं। बने-ठने श्रेष्ठि-पुत्र पान की गिलौरियां दाबे मुख उठाकर रसभरी बातें कर रहे थे—हंस रहे थे।

दोनों अश्वारोही इन तथ्यों से उदासीन अपने-आपमें डूबे हुए धवल-गृह की ओर अग्रसर हो रहे थे। श्रेष्ठि चत्वर की धकापेल समाप्त हुई। सामने धवल-गृह चौथाई योजन दूर रह गया था। अश्वारोही चुपचाप बढ़ते रहे। जन-शून्य क्षेत्र में राजपथ के किनारे एक विशाल वट-वृक्ष था। योद्धा सदृश अश्वारोही ने अपना अश्व वहीं रोककर कहा—

"अच्छा! अब हमें विदा दो। मुख्य द्वार बंद होने में विलंब नहीं है।"

"फिर कब दर्शन दोगे?" छरहरे अश्वारोही ने रुद्ध स्वर से पूछा। निस्संदेह प्रश्नकर्त्ता पुरुष नहीं स्त्री थी।

योद्धा ने अपना अश्व स्त्री अश्वारोही के समीप कर लिया। क्षण-भर की चुप्पी के बाद स्त्री ने पुनः प्रश्न किया—

"कब तक प्रतीक्षा करनी होगी?"

"धर्म-कार्य के लिए गये हुए पति की आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करने का विधान है प्रिये!" योद्धा ने दुख को घटाने के उद्देश्य से हास्य के स्वर मे कहा। स्त्री की सजल आंखें अंधकार को बेधकर योद्धा को जी-भर देख पाने के निमित्त अपलक बनी रहीं। योद्धा बोला—

"धीरज मत खोना। आचार्य की भविष्यवाणी मिथ्या नहीं हो सकती। हम लोग शीघ्र ही मिलेंगे।"

"मेरा मन आशंकाओं से उद्वेलित है। लगता है, जैसे हम लोग स्वप्नवत् मिले थे।"

ऐसा ही सही। किंतु हमारा स्वप्नवत् मिलन धर्मसूत्र में आबद्ध होकर शाश्वत स्वरूप ग्रहण कर चुका है। अब इसे कोई नहीं मिटा सकता।"

"मेरे पिता पूछेंगे कि तुम कहां थीं? किसने तुम्हारा पाणिग्रहण किया तो क्या कहूंगी?"

"यदि कह दूं तो रुष्ट तो नहीं होगी? घृणा तो नही करोगी?"

"छिः! क्या बोलते हो?"

"आश्चर्य तो नहीं होगा?"

"इससे बड़ा आश्चर्य और क्या होगा कि हम लोग भयावह अगम्य वन में मृत्यु की छाया तले मिले, विचित्र परिस्थिति में उपयमन संस्कार में बधे और आज अचानक ही अनिश्चित काल तक वियोग के अंधकार में अग्रसर

होने को प्रस्तुत है।"

"तो सुनो ! मैं हूं कृष्ण दस्युराज तुम्हारे पिता की शाति का शत्रु।" योद्धा ने गंभीर स्वर में कहा। पाठक समझ गये होंगे कि ये दोनों अश्वारोही और कोई नही—भट्टिय हेमजित एवं चन्द्रबाला हैं।

"क्यों मेरे भाग्य के साथ खिलवाड करते हो ?"—चन्द्रबाला ने अनिश्चय के स्वर में कहा। भट्टिय भरोसा दिलाते हुए बोला—

"चन्द्रा ! मैं सचमुच ही कृष्ण दस्यु हूं ! मैं मागध हूं ! तुम्हारे भाग्य के साथ खिलवाड़ करने की मैं कल्पना भी नही कर सकता। निस्संदेह, भाग्य मेरे साथ खिलवाड़ कर रहा है। तक्षशिला से स्नातक होकर मैं अपने देश की सेवा करने गिरिव्रज लौटा, किंतु, आचार्यपाद नारायणस्वामी एव महर्षि औदुम्बरायण की प्रेरणा से इस मार्ग पर आ लगा। मै नही जानता कि मैं क्या कर रहा हूं ! मैं नहीं जानता कि मैं कहां चल रहा हूं ! मैं तो मात्र इतना जानता हूं कि मुझे महामात्य पुलिकसेन तथा बार्हद्रथ वंश का विनाश करके मगध का बोझ हलका करना है, श्रवणा का ऋण चुकाना है। तुम न जाने मेरे विषय में क्या कुछ सोच रही होगी। किंतु चन्द्रा ! मै वास्तव में दस्यु नहीं हूं--देश-प्रेमी हूं। मैं तुम्हारे पिता का शत्रु भी नहीं हूं। बोलो चन्द्रा ! मुझ पर अविश्वास तो नही करती हो ?"

"नही मेरे प्राण ! तुम वीर हो ! तुम्हारे जैसा पति पाकर मैं गौरवान्वित हुई। आश्वस्त हुई।"

"अच्छा, चन्द्रा ! अब तुम जाओ। मैं यहीं से तुम्हारा जाना देखता रहूंगा।"

"नहीं, थोड़ी दूर और चलो।" चन्द्रा का स्वर कांप रहा था।

दोनों राजपथ पर बढ़ चले। अभी कुछ ही दूर गये होंगे कि भट्टिय को पीछे से कुछ खटका हुआ। उसने सिर घुमाकर देखा तो लगा कि दूर अंधकार में कुछ अश्वारोही बढ़े चले आ रहे हैं। भट्टिय परिस्थिति भांप गया। बोला—

"चन्द्रा, तुम अपना अश्व भगाओ ! तुम्हारे पिता के सैनिक मेरा पीछा कर रहे हैं। इन्हें थोड़ी शिक्षा दे दूं।"

"नहीं प्रिय। वे लोग संख्या में बहुत है। मैं अभी इन्हें अपना परिचय

देकर रोकती हूं।"

"चन्द्रा !"—भट्टिय का स्वर किंचित् कठोर एव आदेशात्मक हो गया।—"तुम अपना अश्व आगे भगाओ। भट्टिय हेमजित को जिस दिन स्त्री से संरक्षण पाकर प्राण बचाना होगा उस दिन भट्टिय अपना ही खड्ग अपनी गरदन पर फेर देगा।"

"मेरे प्रियतम !"—चन्द्रा चीख उठी। भट्टिय ने तोष देते हुए कहा—

"जाओ चन्द्रा ! मुझ पर विश्वास रखो। मैं अकेला ही एक सहस्र सैनिकों को हंसा-खेलाकर परास्त कर देने की क्षमता रखता हूं।" इतना कहकर भट्टिय ने चन्द्रबाला के अश्व के पुट्ठे पर कसकर चाटा मारा। अश्व धवल-गृह की ओर उड़ चला।

क्षण-भर बाद ही अश्वारोही सैनिक पास आ गये। भट्टिय ने देखा—कुल बीस सैनिक थे। भट्टिय ने उन सैनिकों को पास आने दिया। सैनिकों को निश्चित रूप से पता नही था कि वे किसका पीछा कर रहे हैं। उन लोगों ने जब देखा कि एक अश्वारोही धवल-गृह की ओर भागा और दूसरा मध्य राजपथ पर खड़ा है, तब उनका माथा ठनका। सैनिकों के नायक ने ललकारा—

"देखो, उस अश्वारोही को भागने मत दो। पकड़ो उसे।" पांच अश्वारोहियों ने अपना अश्व तेज किया ही था कि भट्टिय का आदेशात्मक स्वर गूंज उठा—

"सावधान नायक ! उस अश्वारोही का पीछा मत करना। वे हैं अंग की राजकुमारी चन्द्रबाला।"

पांचों अश्वारोही ठिठक कर खड़े हो गये। नायक ने शेष अश्वारोहियों के साथ भट्टिय के पास आकर शंका के स्वर में पूछा—

"तुम कौन हो ?"

"राजकुमारी का प्राणदाता।"

"बड़े प्रगल्भ हो। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मैं नाम में नहीं, कर्म में विश्वास करता हूं।"

"परदेशी मालूम पड़ते हो।"

"सार्वभौम जहां चरण रखता है वह देश उसी का हो जाता है।"

"तुम अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हो।"

"योद्धा की मर्यादा सैनिक शक्ति नहीं है नायक !"

"उसका निर्णय अभी हो जाता है प्रगल्भ !"—नायक ने दात पीसते हुए कहा—"सैनिको ! इसे बंदी बनाकर कारागार में डाल दो।

तभी भट्टिय अट्टहास कर उठा। सैनिक आगे बढ़ते-बढते रुक गये। भट्टिय ने अचानक ही अश्व की रास दांत से पकड़ ली और वह दायें हाथ मे भयंकर शल्य तथा बायें से खड्ग चलाता हुआ अश्व को उछालकर सैनिकों की पंक्ति के पार पहुंच गया। अकस्मात् ही छह सैनिक धराशायी हो गये। नायक पर प्रथम प्रहार हुआ था। वह तो वहीं गिरकर ढेर हो गया।

सब कुछ अचानक ही घटित हो गया। जब तक शेष सैनिकों को ज्ञान हुआ, भट्टिय का अश्व हवा की गति से उड़कर चम्पा नगर के मुख्य द्वार से बाहर जा चुका था।

तूर्य निनाद से चम्पा नगर का अंधकार हिल उठा। नक्कारों के तर्र-तर्र से नागरिक दहल उठे। अश्वारोही सैनिकों एवं उल्काओं से चम्पा का आकाश प्रकंपित हो उठा। किंतु, उस समय भट्टिय हेमजित चम्पारण्य के बीहड़ वन-प्रदेश में चन्द्रबाला के गीत गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था।



गिरिव्रज नगर में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। सहस्रों नागरिक भिन्न-भिन्न रोगों से पीड़ित हो रहे थे। सैकड़ों मर चुके थे और सैकड़ों मरने

की तैयारी में थे। कोई कहता, अतिसार है तो कोई कहता, आस्राव है। रोग की वास्तविक पहचान किसी को नहीं हो पा रही थी। सभी वैद्य विस्मित थे। उनकी कोई ओषधि प्रभाव नहीं डाल पा रही थी।

तरह-तरह के यज्ञ करके यजमान लोग प्रकृति का कोप शांत करने का प्रयत्न कर रहे थे। कहीं यक्षों की पूजा हो रही थी तो कही भवानी पर सहस्रों पशुओं की बलि अर्पित की जा रही थी। कपटी भिक्षुओं का बोल-बाला था। कापालिकों की प्रतिष्ठा बढ गयी थी। रोग का प्रकोप घटने के स्थान पर बढ़ता ही जा रहा था।

नगर में मत्स्य-न्याय का साम्राज्य स्थापित था। राज-शासन में विनय, विवेक एवं विचार का सर्वथा अभाव हो गया था। कोई किसी की सुधि लेनेवाला नहीं था। धर्म एवं परंपरा मृतप्राय-सी हो गयी थी।

कर्मण्यों की कहीं पूछ नही थी। चापलूसों, कपटियों, देशद्रोहियों, जघन्य कृत्यों द्वारा जीविकोपार्जन करनेवालों का बोलबाला था।

ग्रीष्म का सूर्य ठीक सिर के ऊपर चमक रहा था। तभी श्रेष्ठि चत्वर के मध्यमार्ग पर खड़े होकर एक प्रौढ़ ने पुकार लगायी—

"गिरिव्रज के नागरिको ! मैं उदीच्य प्रदेश का वासी, महानाम्नी ब्राह्मण भविष्यवाणी करता हूं कि गिरिव्रज पर से दैवी प्रकोप की छाया शीघ्र ही हटनेवाली है। गिरिव्रज के नागरिक ध्यान देकर मेरी बात सुने—पश्चिम से स्वयं इन्द्रदेव पधारकर, आसुरी शक्ति का विनाश करनेवाले है।"

उस कुरूप प्रौढ़ ज्योतिषी की वाणी सुनकर श्रेष्ठि नागरिक, कर्मकर आदि वहां इकट्ठे हो गये। पल-भर में सैकड़ों की भीड़ एकत्र हो गयी। ज्योतिषी ने कहा—

"संहार के पश्चात् ही सृजन होता है। होने दो—सब कुछ का संहार होने दो। यही प्रकृति का नियम है। जो प्रकृति के विरुद्ध चलेगा उसका विनाश निश्चित है। सावधान ! गिरिव्रज के नागरिक कान खोलकर सुन लें। पश्चिम से एक व्यक्ति कृष्ण अश्व पर आरूढ़ होकर आयेगा। गिरिव्रज में जीवन की लहर दौड़ जायेगी। वह व्यक्ति और कोई नहीं, स्वयं इन्द्रदेव होंगे। उनके आगमन की प्रतीक्षा करो। उस शुभ घड़ी को शीघ्र लाने के

हेतु बलि दो। जब वे आयें तब कोई उनका प्रतिरोध न करे। कोई उनके कार्य मे बाधा नहीं डाले। अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। नागरिको ! महाकाल शिव के मंदिर को अपवित्र करने का भयावह परिणाम तुमने देख लिया है। अब इन्द्रदेव को कुपित करने की धृष्टता मत करना।"

"किंतु ज्योतिषी प्रवर ! वे कब पधारेंगे ?"

"जिस दिन तुम सब हृदय मे प्रार्थना करोगे।"

"तब तक तो संपूर्ण गिरिव्रज श्मशान हो जायेगा।" एक नागरिक ने कहा।

ज्योतिषी ने उस नागरिक को घूरकर देखा और कहा—

"नागरिक ! मैं तुम्हारा दुख जानता हूं। तुम्हारे पुत्र को राज्य-सैनिकों ने मार डाला। क्यों ठीक है न ?"

"धन्य है ज्योतिषी महाराज ! आप सचमुच अंतर्यामी है।"

"और सुनो। तुम्हारी सुंदरी षोडशी कन्या को समज्या के अवसर पर राजा ने नृत्य करते देखा और उसके कल होकर ही रात्रि में कुछ लोग बलपूर्वक तुम्हारी पुत्री को उठा ले गये। क्यों सत्य है न ?"

उक्त नागरिक इतनी बात सुनते ही ज्योतिषी के चरणों पर गिर पड़ा। रुद्ध स्वर में अनुनय-विनय करता हुआ बोला।

"मेरी कन्या कहां है देवता ? वह मेरी एकमात्र संतान है। बता दीजिए। मैं जीवन-भर आपका दास बना रहूंगा।"

"उठो। मेरे चरण पकड़ने से कुछ नहीं बनेगा। विधाता की रेख कोई नहीं मिटा सकता। हां, पश्चिम मे आनेवाला व्यक्ति चाहे तो सब कुछ कर सकता है। उसी की आराधना करो। तुम्हारी कन्या का जिसने हरण किया है उसका विनाश उसी व्यक्ति के हाथों संभव है।"

एकत्रित भीड़ आश्चर्यचकित रह गयी। लोग भांति-भांति के प्रश्न करने लगे। ज्योतिषी की तीक्ष्ण दृष्टि भीड़ पर घूमती-घूमती एक व्यक्ति पर जाकर रुक गयी। वह व्यक्ति सैनिक वेश में था। सैनिक की भृकुटी तनी हुई थी। ज्योतिषी ने हंसकर कहा—

"तू मुझे घूरकर क्या देख रहा है ? अपने भाग्य को देख। कल तक तू राज्य-कार्य से गिरिव्रज के बाहर था। आज प्रातःकाल ही यहां आया है।

तुम्हारी पत्नी मर चुकी है। आजकल तुम्हारा पुत्र एक रूपाजीवा के प्रेम जाल में पड़ा हुआ है। द्यूतक्रीड़ा एवं मद्यपान ही उसकी दिनचर्या है। क्यों ? फिर घूरेगा मुझे ?"

इतनी बात सुनते ही वह सैनिक भी ज्योतिषी के चरणों पर गिर पड़ा। बोला--

"मुझे बचाइए ब्राह्मण देवता ! मैं आत्महत्या कर लूंगा। मेरा जीवन नरक बन गया है।"

"नहीं ! तू आत्महत्या नहीं करेगा। तुझे भी उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करनी है। अब तुम लोग जा सकते हो। जाकर प्रतीक्षा करो।" इतना कहकर ज्योतिषी ने अपनी आंखें बद कर ली। भीड़ वाचाल हो उठी। तभी ज्योतिषी कड़क उठा—

"तुम लोग जाते हो या श्राप दूं ?"

भीड़ शुष्क पत्तों की भांति क्षण-भर में बिखर गयी।

ज्योतिषी पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा। आंखों से ओझल होते ही कुछ लोग जिज्ञासावश पीछे दौड़े। किंतु, ज्योतिषी का कहीं पता नहीं था। जैसे वह भूमि में समा गया हो। लोग चमत्कृत हो उठे।

संपूर्ण गिरिव्रज में ज्योतिषी की भविष्यवाणी आग की लपटों की तरह क्षण-भर में फैल गयी। जितने मुंह उतनी बातें। लोग ज्योतिषी की अलौकिक शक्ति के संबंध मे तरह-तरह की कहानियां गढ़कर एक-दूसरे से कहने लगे।

नगर का वातावरण ही परिवर्तित हो गया। किंतु, महामारी का प्रकोप घटने की जगह बढ़ता ही गया।



आधी रात बीत चुकी थी । गिरिव्रज नगर के मुख्य-द्वार से दो अश्वारोही बाहर निकले और द्रुत गति से पश्चिम की ओर जानेवाले पण्य-पथ पर चल पड़े । इतनी रात्रि को नगर का द्वार खुलना असाधारण बात थी । निश्चय ही दोनों अश्वारोही राज्य के कोई बड़े अधिकारी थे ।

एक योजन तक दोनों अश्वारोही चुपचाप चलते रहे । थोड़ी दूर के बाद ही वन-प्रदेश आरंभ होता था । दोनों अश्वारोही पण्य-पथ छोड़कर बायीं ओर के वीथी-पथ पर अग्रसर हुए । उस दुर्गम पथ पर अधिक नहीं चलना पड़ा । सामने विस्तृत मैदान था और चारों ओर पहाड़ियों की शृंखला । मैदान में कहीं कोई पेड़-पौधा नहीं था जैसे जंगल काटकर भूमि को साफ-सुथरा कर दिया गया हो ।

दोनों अश्वारोही वहां उतर पड़े । "क्यों व्याघ्रक । इस क्षेत्र के चारों ओर कड़ा पहरा तो लगा दिया गया है न ?" अश्वारोहियों में एक स्वयं महामात्य पुलिकसेन थे और दूसरा उनका विश्वासपात्र गौल्मिक व्याघ्रजिन । व्याघ्रजिन ने सिर झुकाकर निवेदन किया—

"जी हां श्रीमन् !"

"साधु भणे । संकेत स्वर ध्वनित करो ।"

व्याघ्रजिन ने अपने मुंह से किसी वनचारी का स्वर ध्वनित किया । क्षण-भर बाद ही दो व्यक्ति अंधकार में से निकट आते दृष्टिगोचर हुए । दोनों ने आकर महामात्य को अभिवादन किया ।

"क्यों सेनापति स्वस्तिसेन। भैरवाचार्य वक्रघोष पधार गये हैं ?"

"जी हां श्रीमान् ।"—सेनापति स्वस्तिसेन ने उत्तर दिया। महामात्य पुलिकसेन सेनापति स्वस्तिसेन के साथ मैदान के मध्य भाग की ओर अग्रसर हुए। महामात्य ने पुनः प्रश्न किया—

"क्या योजना है ?"

सबसे पहले सामंतों के साथ हम लोग मंत्रणा कर लें। भैरवाचार्य बाद में पधारेंगे। सामंतों को आभास तक नहीं मिले कि भैरवाचार्य पधारने वाले हैं। भैरवाचार्य की यही इच्छा है। अब आपका जो आदेश हो।"

"उत्तम योजना है। नाटकीय प्रभाव पड़ेगा।" महामात्य इस ढंग से बोले जैसे स्वगत भाषण कर रहे हों।

मध्य मैदान में लंबे-चौड़े भूखंड को, कनात से घेर दिया गया था। कनात के भीतर सौ व्यक्ति आसानी से बैठ सकते थे। उसके बाहर चारों ओर सैनिक खड़े थे। सैनिकों को कनात के बाहरी हिस्से से इतनी दूर रखा गया था कि वे कनात के भीतर होनेवाली बातचीत को नहीं सुन सकते थे। महामात्य पुलिकसेन सेनापति के साथ परिवस्त्रा के भीतर पहुंचे। वहां, पहले से ही सात सामंत विराजमान थे। महामात्य को देखते ही सभी सामंत उठ खडे हुए।

मत्रणा आरंभ हुई। महामात्य ने सर्वप्रथम अपना विचार प्रकट किया—

"सामंतगण निर्णय करें। मगध महाजन पद की प्राचीन परंपरा प्रायः लुप्त हो चुकी है। धर्माचरण की राह में बाधाएं उपस्थित कर दी गयी हैं। लोक-कल्याण के नाम पर उगाये गये शुल्क एवं कर से भरा गया राज-कोष, राजा की मनमानी इच्छा पर रिक्त किया जा रहा है। प्रजा अनाथ जैसी हो गयी है। डाकू और लुटेरे दिन-दहाड़े सार्थवाहों एव नागरिकों को लूट लेते हैं। पूर्वी सीमा पर अंग देश के औत्साहिक सैनिक और दस्यु हमारे प्रदेश में आतंक फैला रहे हैं। महान् जरासध द्वारा स्थापित प्राचीन गिरि-व्रज नगर दैवी प्रकोप की पीड़ा से संत्रस्त होकर सिसकियां भर रहा है। महाराज निपुंजय के राज्य में न किसी की प्रतिष्ठा सुरक्षित है, न प्राण। मैं करूं तो क्या करूं ? महामात्य के पद पर रहते हुए राजाज्ञा का उल्लंघन

कर नही सकता । अतएव, आज मै कृतनिश्चय होकर आया हूं कि आप लोगों को स्थिति से अवगत कराकर यहीं से उज्जैन चला जाऊंगा।"

महामात्य के कथन का सामतों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। क्षण-भर की चुप्पी के पश्चात् एक सामंत बोला—

"क्यों न हम सब मिलकर राजा को राज्य-सिंहासन से च्युत कर दे।"

"हां।" दूसरा सामंत बोला—"राजा अपने कर्तव्य-पथ मे विरत हो गया है। वह अपनी यह प्रतिज्ञा भूल गया कि यदि वह प्रजा के साथ किसी भी प्रकार से द्रोह करे, उस पर अत्याचार करे तो उसका वह सब शुभ कर्म नष्ट हो जाय जो वह जन्म से मृत्यु पर्यंत करता है। राजा दंड से परे नहीं है। उसे दंड मिलना चाहिए।"

महामात्य ने कहा—

"ऐसा आप तभी कर सकेंगे जब मैं महामात्य का पद त्यागकर शासन-कार्य से अलग हट जाऊं।"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आपको अपने पद पर बने रहना है।" तीसरे सामंत ने कहा।

अब अवन्ति का सेनापति स्वस्तिसेन बोला—

"मेरा एक सुझाव है। क्यों न हम अवन्ति की अस्सी सहस्र सेना लेकर गिरिव्रज पर आक्रमण कर दें और राजा को मार डालें। बीस सहस्र अवन्ति सैनिक तो मगध के जंगलों में ही इधर-उधर छिपे हुए मेरे आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"नहीं सेनापति। मैं अवन्ति का शासक हूं तो क्या हुआ? पहले मागध हूं फिर कुछ और। बाहरी सेना की सहायता से देश में सुरक्षा स्थापित करने का प्रयत्न पराधीनता को आमंत्रित करने के बराबर है।" महामात्य पुलिकसेन ने सामंतों को अपनी देश-भक्ति की भावना से परिचित कराने के विचार से कहा। निस्संदेह सामंतगण प्रभावित हो उठे।

"तो फिर आप ही मार्ग प्रदर्शित कीजिए।" पाचवें सामंत ने कहा।

महामात्य क्षण-भर चिंता में डूबे रहे। फिर बोले—

"एक ही राह है। मैं उज्जैन चला जाता हूं। सेनापति स्वस्तिसेन आप लोगों की सहायता करेंगे। आप लोग अपने में से किसी एक को राजा

निर्वाचित कर दीजिए और उसी के नेतृत्व में मगध का सिंहासन अधिकृत कर लीजिए।"

सामंतगण मन के लड्डू खाने लगे। महामात्य पुलिकसेन ने ऐसा जाल फेंका कि सभी मछलियां फंसकर आपस में ही टकराने लगी। एक सामंत बोला—

"यह तो ठीक है। किंतु, निर्वाचन किस आधार पर हो?"

दूसरे सामंत ने कहा—

"कुल-परंपरा के आधार पर।"

तीसरे ने कहा—

"नहीं, आधिपत्य के आधार पर।"

चौथे ने कहा—

"पराक्रम के आधार पर।"

पांचवें ने कहा—

"गुण के आधार पर।"

"तुम लोग अंधे हो।"—एक कर्कश स्वर मंत्रणा-मंडप को बेधता हुआ परिवस्त्रा के पार पहाड़ियों से जा टकराया। भैरवाचार्य को सामने देखकर सब लोग अभ्यर्थना में उठ खड़े हुए। भैरवाचार्य ने कहा—

"मैं मात्र यह कहने आया हूं कि तुम सब अंधे हो। पांच सामंतों ने जो पांच बातें बतायी हैं, वे सभी गुण एक ही व्यक्ति में विद्यमान है। किंतु, तुम्हें दिखायी नहीं देता।"

"कौन है वह?" कई सामंत एकसाथ बोल उठे।

"महामात्य पुलिकसेन।" भैरवाचार्य महामात्य की ओर रक्तिम आंखों से देखते हुए गंभीर स्वर में बोले। मंत्रणा-मंडप में क्षण-भर के सन्नाटे को तोड़ता हुआ एक सामंत बोल उठा—

"भैरवाचार्य की वाणी सर्वथा ग्राह्य है—उपयुक्त है।"

शेष सामंत एक-दूसरे का मुख देखने लगे। भैरवाचार्य ने गर्जना की—

"मुंह क्या देखता है! अनुरोध कर महामात्य से। अन्यथा नरक में पड़ेगा। आद्या का प्रकोप मगध को स्वाहा कर देगा।"

"हम सब प्रस्तुत हैं।"—सभी सामंत बोल उठे।

"किंतु, मैं प्रस्तुत नहीं हूं। भैरवाचार्य मेरी धृष्टता क्षमा करे। सिंहासन के लिए मैं राजद्रोह नहीं करूंगा।"

"तुझे सिंहासन पर बैठने को कौन कहता है ? मगध के राज-सिंहासन पर अभिषिक्त होगा कुमारसेन—महामात्य पुलिकसेन का प्रतापी पुत्र।" और सब लोग देखते रह गये—भैरवाचार्य वक्रघोष अचानक ही परिवस्त्रा से निकलकर पैर पटकते हुए बाहर अंधकार में खो गये।

क्षण-भर सन्नाटा रहा। फिर महामात्य अपने आसन पर प्रतिष्ठित हो गये। सामंतगण भी मंचातिमंच आसीन हुए। महामात्य ने गंभीर घोषणा की—

"भैरवाचार्य का आदेश सर्वोपरि। आप सब लोग सूचना की प्रतीक्षा करें। संकेत मिलते ही गिरिव्रज पहुंच जायें।"

"किंतु, एक निर्णय होना अभी शेष है।"—एक सामंत ने कंठ साफ करते हुए कहा।

"कहिए।" सबने कहा।

"हम सामंतों की महाराज कुमारसेन के आधिपत्य में क्या स्थिति होगी ?"—एक सामंत ने प्रश्न किया।

"हां-हां, इसका निर्णय भी कर ही लेना चाहिए।"—सभी सामंतों ने एक स्वर में कहा।

"आप सभी सामंत अपने-अपने ग्रामों के प्रभु होंगे। आपके पास जितने ग्राम हैं—कुमारसेन के अभिषिक्त होते ही उतने और ग्राम पुरस्कारस्वरूप आपके अधीन कर दिये जायेंगे। सभामंडप में आपके सुखासन की व्यवस्था आर्यपट्ट के निकट, महामात्य के समकक्ष की जायेगी। आप सभी परिषद् के सदस्य निर्वाचित किये जायेंगे। जनपद का वास्तविक शासन तो आपके हाथ में ही होगा।"

इसके पश्चात् मंत्रणा समाप्त हो गयी। सभी सामंत यथा-स्थान प्रस्थान कर गये। बच रहे महामात्य पुलिकसेन, सेनापति स्वस्तिसेन तथा व्याघ्रजिन। महामात्य ने व्याघ्रजिन की पीठ पर हाथ रखकर कहा—

"व्याघ्रजिन ! आज तुम्हारे मित्र ने तक्षशिलीय ज्योतिषी का अभि-

नय करके गिरिव्रज का वातावरण ही बदल दिया। मै तुम पर बहुत प्रसन्न हूं।"

"मैं आपकी चरण-धूलि हूं श्रीमान।"—व्याघ्रजिन ने विनीत होकर कहा। महामात्य क्षण-भर चुप रहे, फिर बोले—

"उस ज्योतिषि को कल प्रातःकाल मेरे पास भेज दो। उससे एक महत्वपूर्ण कार्य संपन्न होगा।"

"जैसी आज्ञा!"

"अच्छा तो स्वतिसेन! वह घड़ी शीघ्र ही आनेवाली है। अपनी सेना के साथ संकेत-चिह्न की प्रतीक्षा कीजिए।"

"आप निश्चित रहें महाराज।"

"मुझे आपसे ऐसी ही आशा है। आज भैरवाचार्य ने भी अद्भुत कर दिया। व्याघ्रजिन।"

"आज्ञा श्रीमान्।"

"अश्व यहीं ले आओ। अब हमें शीघ्र ही नगर पहुंच जाना चाहिए।"

"जैसी आज्ञा।"

कुछ देर बाद ही दो अश्वारोही गिरिव्रज नगर की ओर द्रुतगति से जाते दीख पड़े। सूर्योदय होने में अभी विलंब था।



मध्याह्न हो चुका था। बाह्यास्थानमंडप में राज-सभा के सभ्य मंचाति-मंच विराजमान थे। अध्यक्षगण, महामात्य, अमात्य, सेनापति एवं

पुरोहित भी पधार चुके थे। किंतु, आर्यपट्ट रिक्त ही था। बार्हद्रथवंशी महाराज रिपुंजय अभी धवलगृह से बाहर नही आये थे।

यह कोई नयी बात नहीं थी। ऐसा कई बार हो चुका था। महामात्य पुलिकसेन अन्य अवसरों पर मन-ही-मन अत्यंत कुपित हुए थे। किंतु, आज उन्हें प्रसन्नता हुई। उन्होंने उठकर सभ्यों को संबोधित करके कहा—

"सभ्यगण महाराज की प्रतीक्षा में बैठे हैं। किंतु, लगता है, महाराज अपनी दिनचर्या भूल गये हैं। निश्चय ही वे अभी वासगृह या चन्द्रशालिका में वारविलासिनियों के बीच फंसे रहने के कारण या जल-केलि में या सुरा-पान में बेसुध होने से राज-सभा मे पधारना भूल गये हैं। मैं स्वयं जाकर महाराज को आप लोगों की उपस्थिति की सूचना देता हूं।" यह कहकर महामात्य पुलिकसेन मन-ही-मन पुलकित होते हुए धवलगृह की ओर चले। उद्यान के बाहर ही दौवारिक ने उनकी अभ्यर्थना की।

महाराज रिपुंजय सचमुच ही दक्षिणी उद्यान में, पुष्करिणी के किनारे संगमर्मर की चौकी पर बैठे हुए थे। पीछे खड़ी दो वारविलासिनियां चामर डुला रही थीं। सिर पर रत्नजटित छत्र तना हुआ था। चारों ओर बहुत-सी सुंदरी नवयौवना गणिकाएं विभिन्न मुद्राओं में अधलेटी-सी बैठी बातें कर रही थीं—खिलखिला रही थीं। सुरापान चल रहा था। शालभंजिका, अक्षद्यूत जल-केलि आदि मनोरंजन की विविध क्रीड़ाएं चल रही थीं। चारों ओर सौंदर्य एवं सुरा की सरस उन्मादक धारा प्रवाहित हो रही थी। महाराज के झुर्रीदार मुख-मंडल पर काम के भाव परिलक्षित हो रहे थे। उनकी उन्मीलित आंखों में सुरा का अतिरेक अभिव्यंजित हो उठा था।

परिचारिक ने महामात्य के आगमन की सूचना दी। महाराज मन-ही-मन क्रुद्ध से गये। तरुणियां संभलकर बैठ गयी। महामात्य ने महाराज का अभिनंदन करके निवेदन किया—

"राज-सभा में समिति के सभ्य आपकी अनुपस्थिति मे किंचित रुष्ट हो गये है। उन लोगों को सभा में आये बहुत देर हो चुकी है।" महामात्य ने जान-बूझकर 'रुष्ट' शब्द का प्रयोग किया। महाराज तिलमिला उठे—

"मैं उन सभ्यों का अनुचर नहीं हूं कि उनके समक्ष उनकी इच्छा पर उपस्थित रहा करूं। मैं महाराज हूं।"

"आप उचित ही कहते हैं महाराज ! किंतु, सभा के क्षत्रिय कुलीन सदस्य कुछ धृष्ट हैं। वे सोचते हैं कि उन्ही के भुज-बल से बार्हद्रथ वंश-परंपरा अक्षुण्ण बनी हुई है।"

"महामात्य।"—महाराज चीखकर सचेत बैठ गये—"मै इन क्षत्रिय सभ्यों-सामंतोकाउच्छेद कर दूंगा। मै बार्हद्रथवंशी महाकुलीन परमभट्टारक, परमेश्वर जरासंध कुल गौरव महाराज रिपुंजय प्रण करता हूं कि··· इहिं-इहिं-खाय···खांय।"

महाराज प्रण के शब्द उच्चरित करने ही वाले थे कि उन्हें भयंकर खांसी हो आयी। परिचारिकाएं सुरा लेकर दौडी। महामात्य होठों में मुस्कराते रहे। महाराज खांसते-खासते व्याकुल होकर लेट गये।

महामात्य ने निवेदन किया—

"महाराज का स्वास्थ्य ठीक नही है। महाराज विश्राम करें। मैं सभ्यो को कह देता हूं कि सभा स्थगित होती है। रुष्ट क्षत्रियों को भी समझा-बुझाकर···"

"नहीं ! उन्हें कह दीजिए कि मै उनके लिए परशुराम हूं। मैं उस प्रतापी जरासंध का वंशज हूं जिसने क्षत्रियों को पानी पिला-पिलाकर मारा था – क्षेत्रीयों के सिर-मुकुट कृष्ण को देश से निकाल बाहर···इंहिह्··· इंहिह्···खांय···खांय···"

"आप विश्राम करें। मैं सब ठीक कर दूगा। किंतु, एक निवेदन और था। मेरे यहां तक्षशिला के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी आये हुए हैं। धवलगृह में महिषी एवं अन्य प्रजावतियां युवराज का मुख देखने को व्याकुल हैं। मगध जनपद की समस्त प्रजा भी युवराज के जन्म की आकुल प्रतीक्षा में वर्षो से यज्ञ-पूजन आदि करती आ रही है। मेरा विश्वास है कि तक्षशिलीय ज्योतिषी निश्चय ही सत्य मार्ग का निर्देशन कर पायेगा। यदि महाराज की आज्ञा हो तो···"

"हां-हां ! उसे शीघ्र मेरे समक्ष उपस्थित किया जाय।"

"जैसी आज्ञा।"—महामात्य अभिवंदना करके चले गये।

राजसभा में पहुंच कर उन्होंने सभ्यों से कहा—

"राजाज्ञा से सभा स्थगित की जाती है। महाराज अभी दक्षिणी उद्यान

में जल-केलि एवं सुरापान का आनद ले रहे है। उन्हें इस आनंद में किसी प्रकार विघ्न सह्य नहीं है। सभ्य गण मुझे क्षमा करें। मै महामात्य के नाते महाराज को राजसभा मे ला सकने में असमर्थ रहा। कारण, सभ्यों की प्रतिष्ठा का स्मरण दिलाने पर महाराज क्रोध से हुंकार कर उठे। कहने लगे कि मैं समिति या सभ्यों का सेवक नहीं हूं। मै उस जरासंध का वंशज हूं जिसने क्षत्रियों को पानी पिला-पिलाकर मारा—क्षेत्रीयों के सिर-मुकुट कृष्ण को देश-निष्कासन का दंड दिया। महाराज का क्रोध देखकर, मैं चुप-चाप चला आया। सभ्यगण मेरे विचार से सहमत होंगे कि क्रोध करने का कोई अवसर न होते हुए भी महाराज ने मुझे अपमानित किया। वंश-परंपरा एवं देश-भक्ति के कारण मैं राज-सेवा करता चला आ रहा हूं। अन्यथा, कब का माहिष्मती चला गया होता। आप लोगों के स्नेह के चलते मैं यहां टिका हुआ हूं। आप लोगों को बहुत कष्ट हुआ। राज्य के एक अधिकारी के नाते मैं इसके लिए आप लोगों से क्षमा की याचना करता हूं और राजा की आज्ञा से सभा भंग करता हूं।"

इसके पश्चात् महामात्य ने गौल्मिक को बुलाकर द्वार पर रथ प्रस्तुत करने को कहा।

सब लोग उठकर जाने लगे। एक क्षेत्रीय सामंत ने जाते-जाते चीख कर कहा—

"राजा ने प्रजा से द्रोह किया है। अतएव, उनके जन्म की रात्रि से लेकर अब तक की अर्जित संतति, धन, आयुष्य और यश नष्ट हो गया।"

कुछ लोगों ने उसकी हां-में-हां मिलायी—

"वचन भंग करके महाराज आर्यपट्ट पर आसीन होने के अधिकारी नहीं रहे।"

महामात्य पुलिकसेन के कुटिल हास्य में आशा का कंप भर गया। बाह्यास्थान मंडप से सभी सभ्यों के प्रस्थान कर जाने पर वहां प्रतिहारी-गण बच रहे।

महामात्य शीघ्र ही छद्मवेशी ज्योतिषी को लेकर धवलगृह के दक्षिणी उद्यान में उपस्थित हो गये।

"महाराज की जय हो !"—ज्योतिषी ने उद्यान में प्रविष्ट होते ही

ऊंचे स्वर से जय-जयकार किया।

वारविलासिनियों को महामात्य ने संकेत किया। वे सब वहा से दूर चली गयी। महाराज अपने स्थूलकाय शरीर को समेटकर बैठ गये। ज्योतिषी ने कहा—

"आपको निश्चित रूप से पांच पुत्र प्राप्त होंगे।"

"तत्काल तो एक भी नहीं है।"—महाराज ने ऐसे स्वर में कहा जैसे अब वे रो देंगे !

"होगा और एक नही—पांच होंगे ! मेरी भविष्यवाणी मिथ्या नहीं हो सकती। पूरे चालीस वर्ष तक तक्षशिला में ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन किया है। किंतु, एक ग्रह है जिसका निराकरण करना होगा।"

"क्या ?" महाराज ने कौतूहल से पूछा।

"अभी बताता हूं। अरी ओ मानवती ···।"— ज्योतिषी ने दूर खड़ी एक वारविलासिनी को पुकारा। वारविलासिनी सहमती हुई निकट आयी।

"तुझे क्या अभाव है कि ऐसा निर्घिन कार्य किया ?"

इतनी बात सुनते ही तरुणी भय से पीली पड़ गयी।

महाराज चकित-विस्मित होकर देखने लगे। ज्योतिषी ने कहा—

"मैं भविष्य का ही ज्ञाता नहीं हूं—संपूर्ण काल में घटित होनेवाली सभी घटनाओं का लेखा-जोखा रखता हूं। इस तरुणी ने आपको सुरा पिलाते समय आपके आच्छादनक में खचित दो बहुमूल्य रत्न निकाल लिये। दे दे—कंचुकी में तूने छिपा रखे हैं। मैं यहीं से, अंतर्चक्षु से देख रहा हूं।"

वारविलासिनी ने सचमुच ही कंचुकी से निकालकर दो जगमगाते रत्न महाराज के चरणों पर रख दिये। महाराज मंत्रमुग्ध से हो गये। बोले—

"ये रत्न आपके हुए ब्राह्मण।" चमत्कृत होकर महाराज ने रत्न ज्योतिषी के हाथ पर रख दिये। ज्योतिषी ने तुरंत ही उस दासी को बुलाया और कहा—

"मैं ब्राह्मण हूं महाराज ! रत्न लेकर क्या करूंगा। अरी ओ वार-

विलासिनी ! ये रत्न तू ही रख ले ! महाराज इस भोली को कोई दंड न दीजिएगा। अब यह कभी ऐसा कार्य नहीं करेगी। इसकी भविष्य गणना ऐसा ही कहती है।"

"आपके उपदेश का पालन किया जायेगा ब्राह्मण ! किंतु, आपने यह तो बताया ही नहीं कि मेरे मार्ग में ग्रह कौन-सा है।"

"यह मैं आपको नहीं बताऊंगा। हां, ग्रह शांति का उपाय अवश्य बताऊंगा।"—ज्योतिषी ने कहा और अपनी आंखें बंद कर ली। महाराज टुकुर-टुकुर देखते रहे। कुछ काल बाद ज्योतिषी ने आंखें बंद किये-किये ही कहा—

"बहुत कठिन कार्य है राजन ! आपको अपने पूर्वजों का-सा पराक्रम दिखाना होगा।"

"मैं पुत्र के लिए, सब-कुछ करने को प्रस्तुत बैठा हूं।"

"यदि आपने ग्रह-शांति का उपाय सुनकर उसे कार्यरूप नहीं दिया तो अनर्थ हो जायेगा।"

"आप विधान तो बताइए ब्राह्मण।"—महाराज ने अधीर होकर कहा।

"अच्छा तो सुनिए ! आपको कुंड पाद्य यज्ञ का आयोजन करना होगा जो एक वर्ष का सत्र होता है। इस यज्ञ में अध्वर्यु के पद पर प्रतिष्ठित होने योग्य मात्र नारायण स्वामी हैं। यज्ञ से पूर्व आपको पाणिग्रहण संस्कार संपन्न करना होगा।"

"मैं तो विवाहित हूं।"

"मैं जानता हूं कि आपके तीन सौ इक्कीस रानियां हैं। किंतु, आपके औरस से जिस स्त्री के गर्भ में राजकुमार आयेगा वह अभी कन्या है।"

"क्या वह कन्या मागधी है ?"

"जी हां ! इसी गिरिव्रज नगर में रहती है।"

"फिर क्या कठिनाई है ?"

"कठिनाई यह है कि उस कन्या से आपको राक्षस विवाह करना होगा।"

"तो ठीक है ! मैं अपने बलाधिकृत को सैनिकों के साथ उस कन्या

का अपहरण कर लाने के लिए अभी आज्ञा देता हूं।"

"नही। आपको स्वयं जाना होगा।"

"अच्छी बात है। मैं डरता थोड़े हूं ? फिर मेरे साथ मागध सेना भी तो होगी।"

"अब उस कन्या का पता जान लीजिए। वह क्षत्रिय कुल की है— महासामन्त क्षत्रिय कुलावतंस वयोवृद्ध चन्दमित्र की परम सुंदरी षोडशी वसुमित्रा।"

"अरे वह तो अपूर्व सुंदरी है !"— महामात्य ने उत्तेजना दिलाने के स्वर में कहा।

"ठीक है। मै आज ही उसका अपहरण कर लाता हूं।"

"नहीं। आज से ठीक एक माह पश्चात्—मध्याह्न काल में। किंतु, महाराज, उसका पिता मगध ही नहीं, अवन्ती तक के क्षत्रियों में मूर्धन्य है— पूजित है। और उसका भाई वरुणदत्त नारायण स्वामी का शिष्य एवं महान् योद्धा है। ज्योतिष गणना से तो ऐसा ही मालूम होता है। सत्य क्या है—यह तो नगराध्यक्ष जानें। अतएव, कार्य सुगम नहीं है।"

"ब्राह्मण देवता ! आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि मैं कौन हूं।"

"मैं जानता हूं महाराज ! तभी तो मैंने आपको यह मार्ग सुझाया ! अच्छा, अब आज्ञा दीजिए।"

"किंतु, आपकी दक्षिणा !"

"मात्र एक भस्त्रा अन्न"

"महामात्य इसकी व्यवस्था कर देंगे।"

"अच्छा, महाराज! आपकी जय हो।"—इतना कहकर ज्योतिषी जी वहां से उठकर चल दिये। महामात्य भी महाराज की अभ्यर्थना करके ज्योतिषी के साथ हो लिये।



कुवलया गणिका के गिरिव्रज में वास करते ही सपूर्ण नगर उन्मत्त हो गया। कुवलया सत्रह वर्ष की गौरवर्ण अनुपम सुंदरी थी। नृत्य-गीत-वादित्र में पारंगत होने के अतिरिक्त सुमधुर भाषिणी थी। उसका यौवन वर्षा ऋतु की वेगवती नदी जैसा उद्दाम था। जो कोई उसके पास जाता, सौंदर्य-लहरी की लपेट में पड़ कर छिन्न-भिन्न हो जाता—अस्तित्व खो देता! जब वह सोलहों श्रृंगार करके नृत्य आरंभ करती तो देखनेवाले अर्द्धमूर्छित से हो जाते। वह ऐसी विद्युत थी जिसे देखकर ही लोग पछाड़ खाने लगते, स्पर्श की तो मात्र कल्पना ही कर पाते। कुछ ही दिनों मे गिरिव्रज का चौथाई वैभव कुवलया के भवन मे सिमट आया—संपूर्ण नगर के तरुण दिन-रात उसी की कल्पना में डूबे रहने लगे। प्रत्येक संपन्न व्यक्ति उसका सान्निध्य पाने को उन्मत्त होकर अपना वैभव उड़ाने लगा।

महाराज का धवल-गृह और महामात्य पुलिकसेन का प्रासाद भी कुवलया की उन्मादक ख्याति से अछूता नही रह सका। महाराज की उम्र ढल चुकी थी। उनका जीवन-रस सूख चुका था। एक तरह से वे नपुंसकत्व को प्राप्त हो चुके थे। फिर भी नित नवीन तरुणियों के सहवास में जीवन गंवाने का उनका रोग अभी युवा था।

कुवलया धवलगृह में अनायास ही प्रवेश पा गयी। स्वय महाराज भी रात-विरात छद्मवेश में कुवलया के भवन में पहुंचने लगे।

रसिकता में महामात्य पुलिकसेन भी पीछे नहीं थे। कुवलया उनके

षड्यंत्रकारी मस्तिष्क को श्रांति देने का मात्र उपचार बन गयी। राजा एवं सभी राज्याधिकारी कुवलया के हाथ में कठपुतली बनकर रह गये। कुवलया जो नाच चाहती, नचाती। लोग आशा की डोर के सहारे नाचने लगे। नारी का सहवास प्रायः अस्थायी आनंद का स्रोत होता है जो बुभुक्षित, उद्दाम स्पर्श-आकांक्षा के महासागर में पहुंचकर खो जाता है। फिर मन उचट जाता है या ऊब जाता है। कुवलया इसमें अपवाद थी। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं तो कुवलया के प्रेमपाश में आबद्ध होने को तरसता रहता, और दूसरों को शका एवं ईर्ष्या की दृष्टि से देखता। किंतु, वास्तविकता यह थी कि कुवलया का स्पर्श-सुख कोई भी प्राप्त नहीं कर सका था। उसने बड़ी चतुराई से सबको अपने स्पर्श से वंचित ही रखा। सब लोग आज-कल की आशा में बेचैन हो तड़पते रहे।

रात्रि के दूसरे प्रहर का मध्य व्यतीत हो रहा था कि कुवलया का रथ उसके विशाल भवन के द्वार पर आकर रुक गया। कुवलया रथ से उतर कर राजहंसिनी की-सी गति से भवन में प्रविष्ट हुई। मुखशाला पार कर वह भीतर पहुंची ही थी कि उसने दीर्घिका के पास खड़ी परिचारिका से पूछा—

"कोई आया है ?"

"हां स्वामिन् ! ऊपर के प्रकोष्ठ में प्रतिदिन के मात्र अतिथि प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

अतिथि के साथ 'मात्र' की ध्वनि सुनते ही कुवलया के पैरों में पंख लग गये। वह दो-दो सीढ़ियां चढ़ती हुई भागी-भागी ऊपर जा पहुंची।

"कब से बैठे हो।" कुवलया ने प्रतीक्षा में बैठे युवक को देखते ही उत्साह से पूछा। युवक आसन से उठकर खड़ा हो गया। उसके वस्त्र साधारण कर्मकर के से थे। किंतु, उसके मुख-मंडल की दीप्ति राजकुमारों को भी म्लान कर देने के लिए पर्याप्त थी। कर्मकर के वेश में होते हुए भी युवक ने कटि में खड्ग लटका रखा था। उसने विनीत स्वर में उत्तर दिया—

"अभी थोड़ी ही देर हुई। मुझे शीघ्र ही यहां से प्रस्थान कर देना है।"

"किंतु, इतनी रात को जाओगे कैसे ? नगर द्वार तो बंद होगे। रात्रि यहीं व्यतीत करो। प्रातःकाल चले जाना।"—कुवलया ने चिंताकुल

होकर कहा।

"मेरी राह राज-पथों या द्वारों से नही जाती देवी ! मै तो शकु-पथ एव अज-पथ से भी दूर-दूर चलता हूं। कोई नयी सूचना ?"

युवक पुनः बैठता हुआ बोला ! कुवलया आसन ग्रहण करती हुई बोली—

"अनर्थ होनेवाला है।"

"क्या ?"

"महामात्य पुलिकसेन के एक अनुचर ने ज्योतिषी का छद्मवेश धारण कर महाराज को यह पाठ पढ़ा दिया है कि वे वसुमित्रा से राक्षस-विवाह करके पुत्र-रत्न प्राप्त कर सकते हैं।"

युवक चौंक कर उठ खड़ा हुआ। क्रोध के अतिरेक से अनायास ही उसका हाथ खड्ग की मूठ पर जा पड़ा। दात पीसता हुआ बोला—

"रक्त की नदियां बहा दूगा। बार्हद्रथवश की परपरा चलनी तो दूर रही इसी खड्ग से रिपुंजय का शिरोच्छेद करके मगध जनपद से जरासध का धिक्कृत अवशेष मिटा डालूंगा।"

"धीरज ! मागध वीर, धीरज ! नियति का चक्र पूर्ण होते ही वह घड़ी भी आयेगी। यदि असमय ही तुमने विनाश का शंख फूक दिया तो सृजन का पुण्य रूठ जायेगा।"

"मुझे इसकी चिंता नही है देवी ! सृजन का पुण्य लूटने के लोभ में वसुमित्रा का जीवन एवं पराक्रमी कुल की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा को मिटते देखने का धैर्य मुझमें नहीं है। ऋषिगिरि-शृंग पर चढ़कर अपने महेष्वास धनुष की टंकार मात्र से संपूर्ण गिरिव्रज को प्रकंपित कर देने की मेरी सामर्थ्य अब किसी की आज्ञा या अनुमति की अपेक्षा नहीं रखती। बहुत सह चुका !"

"गुरुदेव को सूचित करना भी आवश्यक नहीं समझते ?" कुवलया ने दुखी होकर कहा। 'गुरुदेव' शब्द की ध्वनि कान मे पड़ते ही युवक का क्रोध अनुशासन के कगारों से जा टकराया। लाचारीवश उसका मस्तक चिंता के बोझ से झुक गया। संस्कार की चेतना से वह सयमित हो उठा। बोला—

"हां देवी ! उन्हें सूचित कर दूंगा। पिता एवं बहन का ऋण चुकाने में यदि गुरु का ऋण बाधक हुआ तो अपने प्राणों की आहुति देकर बहन का मार्ग आलोकित कर जाऊंगा ! किंतु, जीते-जी अपनी अबोध बहन को नरपिशाच रिपुंजय के कलुषित हाथों में नहीं पड़ने दूंगा।...हा, स्मरण आया, गुरुदेव का आदेश है कि दो दिन के भीतर आप किसी विध राज-मुद्रिका प्राप्त कर उनके पास भिजवा दें।"

"यह लो ! आने-जाने की बाधा न रहे इसलिए स्वयं महाराज ने ही मुझे यह अर्पित कर दी है। महामात्य की दी हुई मुद्रिका मेरे पास रहने दो। गुरुदेव का आदेश हुआ तो यह भी ले जाना।"—कुवलया ने उंगली से रत्नजटित मुद्रिका निकालकर युवक को दे दी। युवक ने प्रशंसा के स्वर में कहा—

"देवी सचमुच ही अंतर्यामी है !"

"धन्यवाद बधु ! किंतु, यह न भूलना कि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही अपना अस्तित्व मिटा कर इस भयावह मार्ग पर चल रही हूं। अग्नि-परीक्षा के समय साक्षी रहना !"

"आपकी अग्नि-परीक्षा तो हो चुकी है देवी !"

"किंतु, राम के समक्ष नही।"

"उससे क्या हुआ ? मगध गाथा के रचयिता हमारे गुरुदेव महर्षि वाल्मीकि की तरह वहां स्वयं उपस्थित थे। अच्छा देवी ! और कोई आज्ञा ?"

"गुरुदेव से निवेदन कर देना कि सामंतों, क्षत्रियो, सभ्यो एव राज्या-ध्यक्षों की पूर्ण सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करने में महामात्य पुलिकसेन द्रुतगति से सफलता के शिखर पर आरोहण करता चला जा रहा है। वक्र-घोष की छद्मचाल से प्रभावित होकर कुछ सामंतों ने पुलिकसेन के पुत्र कुमारसेन को मगध के आर्यपट्ट पर अभिषिक्त करने का निश्चय कर लिया है। ज्योतिषी की भविष्यवाणी को सत्य होते देखने के लिए गिरिव्रजवासी आकुल प्रतीक्षा में बैठे हैं। पश्चिम से आनेवाला तथाकथित इन्द्रपुत्र और कोई नही स्वयं कुमारसेन है। यह सब वातावरण महामात्य पुलिकसेन के गुप्त आदेश पर उत्पन्न किया जा रहा है। इसका शीघ्र निराकरण होना

आवश्यक है।"

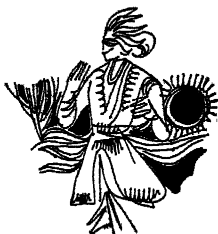
"अच्छी बात है देवी ! अब मैं चलता हूं।"

"थोड़ी कापिशायनी सुरा पी लो। स्फूर्ति आ जायेगी ! श्रमभार से क्लांत दीखते हो !"

"देवी धृष्टता क्षमा करें। स्फूर्ति के लिए आपका आशीर्वाद ही पर्याप्त है। विलंब के डर से पीड़ित हूं।"

"अच्छी बात बंधु ! राज-मुद्रिका साथ होने से अब तुम निर्विघ्न रूप से किसी भी समय नगर-द्वार से बाहर जा सकते हो।"

युवक कुवलया की अभ्यर्थना करके भवन के पिछले द्वार से शीघ्रता-पूर्वक नीचे उतर चला। भवन के पीछे से वीथी आरंभ होती थी जो दो रज्जु बाद राज-पथ में मिल जाती थी। वीथी के किनारे अश्व खड़ा था। युवक कूद कर अश्व पर आरूढ़ हो गया। सकेत पाते ही अश्व राजमार्ग की ओर उड़ चला।



ऋषिगिरि पर वासुदेव कृष्ण मंदिर के गर्भगृह में तीन व्यक्ति बैठे वार्तालाप कर रहे थे—आचार्यपाद नारायण स्वामी, महर्षि औदुम्बरायण और वरुणदत्त। महर्षि औदुम्बरायण ने तीक्ष्ण दृष्टि से वरुणदत्त की ओर देखकर कहा—

"तुम्हें ब्राह्म मुहूर्त से पूर्व ही चम्पारण्य के लिए प्रस्थान कर देना है।"

"किंतु, यहां रिपुंजय की कलुष···"

"इसकी चिंता मुझ पर छोड़ दो वत्स ! युद्ध में बाहुबल से अधिक नीति-बल सफल होता है। क्रोध में आकर व्यर्थ ही प्राण गंवा देने से तुम अपनी विफलता देखने को भी जीवित नही रह सकोगे। विष का प्रभाव विष से ही दूर होगा। पशुता का उत्तर पशुता से देना होगा।"

"किंतु आचार्य…"

"किंतु-परंतु सुनने का अभ्यस्त मैं नही हूं, कुमार ! संकटग्रस्त देश का उद्धार मत-स्वीकृति से नहीं, कठोर अनुशासन से ही संभव है ! ब्राह्म मुहूर्त से पूर्व ही तुम्हें चम्पारण्य के लिए प्रस्थान कर देना है। तुम्हारा अभीष्ट मुझमें प्रतिष्ठित हुआ।"—आचार्य औदुम्बरायण ने कठोर स्वर में आदेश दिया।

वरुणदत्त सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा।

इस बार आचार्यपाद नारायणस्वामी बोले—

"वयस्य औदुम्बरायण ठीक ही कहते हैं, आयुष्मान ! अभी प्रश्न एक का नहीं—अनेक का है ! और विधि का विधान देखो कि अनेक का प्रश्न किसी विवेकी, त्यागी, अनासक्त, संवेदनशील—'एक' में प्रतिष्ठित होते ही समाधान का स्वरूप ग्रहण करने लगता है। तब मात्र आस्था की, विश्वास की एवं त्याग की आवश्यकता होती है। विश्वास रक्खो। मेरा यही आदेश है। यही उपदेश है।"

"किसी भी मूल्य पर आप आचार्यों के आदेश का पालन करूंगा। आज्ञा कीजिए !" वरुणदत्त ने विनीत होकर कहा। आचार्य औदुम्बरायण पूर्ववत तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए बोले—

"अंगराज दधिवाहन को अधीनस्थ करने के लिए वत्सराज सतानिक विशाल सैन्यबल लेकर चम्पा की ओर अग्रसर हो रहा है। भट्टिय हेमजित के लिए मेरा आदेश है कि वत्सराज सतानिक का अभियान विफल होना चाहिए। यदि सतानिक विजयी हुआ तो वत्स साम्राज्य अमर हो जायेगा और मगध शताब्दियों तक श्रीहीन बना रहेगा। मुझे भट्टिय के पराक्रम एवं युद्धकौशल पर पूरा भरोसा है। सतानिक को पराजय देकर भट्टिय को अवन्ति पहुंचाकर अपनी गतिविधियों से राज्य में आतंक फैला कर अवन्ति सेनापति स्वस्तिसेन को सदल-बल अवन्ति लौटने पर लाचार कर देना है।

मगध के उद्धार के लिए यह आवश्यक है। और तुम्हें चम्पारण्य में रह कर भट्टिय का स्थान ग्रहण करना है।"

"जैसी आज्ञा !"

"एक अनुल्लंघनीय आदेश और है ! चम्पारण्य पहुंच कर कुवलया के भूत-वर्तमान को भूल जाना है। उसका नाम भी जिह्वा पर नहीं आना चाहिए !"

"ऐसा ही होगा आचार्य !"

"गिरिव्रज की व्यूह-रचना के लिए धन का अभाव हो गया है। अतएव, चम्पारण्य पहुंचते ही शत सहस्र स्वर्ण-निष्क भेजने की योजना करो ! भट्टिय की अनुपस्थिति में वहा की प्रगति बनी रहे—इसी में तुम्हारा कल्याण है। साथ में जयसेन को लेते जाओ। बस ! अब तुम जा सकते हो।"

वरुणदत्त वंदना करके गर्भगृह से बाहर चला गया। गर्भगृह मे क्षण-भर शांति व्याप्त रही। दोनों दिग्गज गर्भगृह के द्वार की ओर देखने के बहाने सुदूर भविष्य के अतराल मे कुछ ढूंढते रहे। रात्रि व्यतीत होती रही।

तभी आचार्यपाद नारायणस्वामी ने कहा—

"यदि मुझे कुंडपाद्य यज्ञ का अध्वर्यु पद ग्रहण करने की राजाज्ञा मिली तो एक वर्ष तक मुझे उस सत्र की मर्यादा में आबद्ध हो जाना पड़ेगा। लगता है, वासुदेव कृष्ण के भक्तों को नेतृत्वहीन बना कर निरुद्देश्य भटका देने के लिए ही यह षड्यंत्र रचा जा रहा है।"

महर्षि औदुम्बरायण के मुखमंडल पर विनययुक्त विलक्षण आत्म-विश्वास साकार हो उठा। बोले—

"निस्संदेह, महामात्य पुलिकसेन का यही अभिप्राय है। किंतु, वासुदेव कृष्ण के भक्तों को भटका सकने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। वयस्य नारायण-स्वामी, ऐसा कोई यज्ञ नहीं होगा। यह सब कुछ महामात्य के कूट-युद्ध की व्यूह-रचना है। वसुमित्रा के साथ राक्षस-विवाह करने के उद्यम में ही राजा रिपुंजय काल का ग्रास होगा। यज्ञ का अवसर ही नही आयेगा ! किंतु, यज्ञ का आयोजन महामात्य पुलिकसेन मे आत्मविश्वास के अभाव को

प्रकट करता है। उसने सोचा होगा कि कदाचित्, वसुमित्रा का अपहरण राज्य-क्रांति लाने में असमर्थ रहे तो यज्ञ के नाम पर होनेवाली लूट-मार प्रजा को अव्यवस्थित-उद्वेलित कर देगी और उस समय वह आपको भी नियमबद्ध किये रहेगा !''

''आपका विश्लेषण तो सत्य की सटीक है। किंतु, कार्यक्रम क्या है ?'' —नारायणस्वामी ने धीर-गंभीर स्वर में पूछा। महर्षि औदुम्बरायण ने कहा—

''राजा की हत्या स्वयं महामात्य पुलिकसेन करे ! ऐसी ही स्थिति उत्पन्न करनी होगी। कारण, अत्यंत कापुरुष, निर्बल एवं पशु होते हुए भी यह राजा सहस्रों वर्ष पूर्व स्थापित बार्हद्रथ राज-वंश का प्रतिनिधि है। प्रजा के संस्कार में इसके पूर्वज आतंक बनकर रमे हुए है। पुलिकसेन द्वारा इसकी हत्या होने पर हमारा अभीष्ट सुगमता से हमें प्राप्त हो जायेगा। राजा के हत्यारे पुलिकसेन को निर्मल करने में प्रजा की संपूर्ण शक्ति एवं निष्ठा हमारे साथ होगी। और वही निष्ठा एवं शक्ति आगामी व्यवस्था की नींव बनेगी। प्रजा की निष्ठा के अभाव मे हिमालय सदृश शासन-व्यवस्था को भी पिघल कर बह जाते देर नहीं लगती है। और इस कार्य की सिद्धि के लिए हमें सर्वप्रथम वक्रघोष का आतंक समाप्त करना है। कल से ही उसके चमत्कार की इतिश्री आरंभ हो जायेगी। मुझे आज्ञा दीजिए।''

महर्षि औदुम्बरायण के प्रस्थान के पश्चात आचार्यपाद नारायणस्वामी समाधिस्थ हो गये।

इधर वरुणदत्त गर्भगृह से निकल कर सीधे मंदिर के अंतराल की ओर चला। जैसा कि पाठक जानते हैं, मंदिर के क्षेत्र का विस्तार बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। उसमें सहस्रों प्रकोष्ठ एवं कई प्रांगण थे। गर्भगृह से अंतराल में जाने के लिए कई वीथियां, प्रांगण एवं अंधकारपूर्ण दीर्घिकाएं पार करनी पड़ती थीं।

वरुणदत्त अपनी कल्पनाओं में उलझा हुआ चला जा रहा था। महामात्य की नीचता और महाराज की धृष्ट कामुकता की बात का स्मरण होते ही उसके दांत कटकटा उठते। किंतु, महर्षि औदुम्बरायण की नीति का रहस्यजाल मानस के समक्ष आते ही वह समर्पण के भाव से स्थिर हो

जाता।

इन्ही उलझनों में उलझते हुए उसने अंधकारपूर्ण दीर्घिका के प्रथम सोपान पर पांव रखा ही था कि अचानक दीवार की ओर के गहन अंधकार से एक हाथ ने उसके कंधे को पकड़ लिया। वरुणदत्त उछल कर दूर जा खड़ा हुआ और अपना खड्ग निकाल कर गर्जना के स्वर में बोला—

"कौन है ? सामने आओ !"

तभी दीर्घिका में कोमल संगीतमय हंसी की खिलखिलाहट बिखर गयी।

"ओह! तुम हो विश्वतारा !"—वरुणदत्त ने झेंपकर खड्ग को म्यान में रखते हुए कहा।

विश्वतारा हंसती हुई बोली—"तुमने क्या समझा ?—कि महामात्य पुलिकसेन पधार गये ?"

"फिर तो आनंद आ जाता ! आज ही उऋण हो जाता।"

"अच्छा ! तो क्या करते ? उसे मार डालते !"

"और नही तो क्या आरती उतारता ?"

"कदाचित्, आरती ही उतारते। क्योंकि, तुम्हारे जैसे व्यक्ति से यह निर्घिन कार्य कभी नहीं हो सकता।"

"तुम्हारा कहना कदाचित् सत्य ही हो विश्वतारा ! पितृ-ऋण से मुक्त होने का यह कार्य तो पुण्य का होता, किंतु, मेरे गुरुजनों को ऐसा स्वीकार नहीं है।" वरुणदत्त विषादपूर्ण स्वर में बोल कर क्षण-भर के लिए मौन हो गया। फिर उसने लंबी सांस छोड़ते हुए पूछा—

"किंतु, तुम यहां क्या कर रही थीं ?"

"तुम्हारी प्रतीक्षा !"

"असत्य !"

"सत्य ही मेरे वरुण ! तुम्हें मंदिर के गर्भगृह की ओर जाते हुए मैने देख लिया था। तब से यहीं दीर्घिका में बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं।"

"अरे ! मुझे यहां से गये हुए प्राय: डेढ़ प्रहर व्यतीत हो रहा है।"

"मुझे तो लग रहा था जैसे डेढ सहस्र युग व्यतीत हो गया !" विश्वतारा ने रुद्ध स्वर में कहा। वरुण उसके निकट आ गया बोला—

"तुम पागल हो गयी हो विश्वा ! मैं तो गुरुदेव एवं तुम्हारे अग्रज के चरणों पर चढ़ा हुआ बलि का फूल हूं। मेरे जीवन का क्या भरोसा ? इस प्रकार भावना प्रकट करोगी तब तो मैं पथभ्रष्ट ही हो जाऊंगा !"

"उस दिन मै, अपना लज्जास्पद शरीर त्याग कर, तुम्हारा पथ निष्किल्विष कर जाऊंगी।"

"विश्वा !"

"हां मेरे वरुण ! तुम्हारा उत्कर्ष, देशप्रेम, त्याग एवं वीरता ही तो मेरा सौभाग्य है। जिस दिन वह नही रहेगा, उस दिन सब निःशेष हो जायेगा !"

"विश्वा ! तुम मात्र अद्भुत हो—अनुपमेय हो !"—वरुणदत्त ने विश्वतारा को हृदय से लगा कर कहा। दोनों, एक-दूसरे से आबद्ध, खड़े रहे। अचानक, वरुण को अपनी यात्रा का स्मरण हो आया। बोला—

"मैं चम्पारण्य जा रहा हूं।"

"कब ?"

"अभी ! तुरंत ! आर्य भट्टिय हेमजित के दर्शन करके आंखें तृप्त करूंगा !"

"फिर कब लौटोगे ?"

"क्या मालूम विश्वा ! मैं तो यही रहना चाहता था। बहन वसुमित्रा का जीवन संकट में है। आततायी रिपुंजय ने मेरी बहन का बलात् अपहरण करके उससे राक्षस-विवाह करने का निश्चय किया है। पिताश्री वृद्ध हैं। न जाने मेरी अनुपस्थिति में उन लोगों का क्या होगा ?"

"क्या तुमने गुरुदेव को ये बातें नहीं बतायीं ?"

"बतायी तभी तो चम्पारण्य प्रस्थान करने का आदेश मिला। महर्षि औदुम्बरायण की नीति का रहस्य मेरी समझ में तो आता नहीं। और उनके समक्ष मेरी जिह्वा तालू से चिपक जाती है।"

"फिर निश्चिंत रहो वरुण ! महर्षि औदुम्बरायण की शक्ति अपार है। जिसमें तुम्हारा और देश का कल्याण होगा—महर्षि औदुम्बरायण वही करेंगे।"

"अच्छी बात विश्वा ! मुझे स्नेह दो। वस्त्रादि की व्यवस्था करनी है

और जयसेन को भी सूचित करना है।"

"तुम जयसेन को सूचित कर आओ। मैं तब तक तुम्हारी यात्रा की व्यवस्था कर देती हूं। मेरे कारण जो समय शेष रह जायेगा—वह मेरा होगा।"

"वहीं क्यों ? मेरा संपूर्ण जीवन तुम्हारा है।···विश्वा ! क्यों न हम अपने गांधर्व-विवाह की बात गुरुदेव को बता दें ?"

"गुरुदेव जानते हैं !"

"है, गुरुदेव जानते हैं ! कैसे ?"—वरुणदत्त चौंक उठा।

विश्वतारा वरुणदत्त के वक्षस्थल पर सिर रखे-रखे बोली—

"गुरुदेव अंतर्यामी हैं। एक दिन उन्होंने मुझे अपने पास बुला कर कहा कि तुम मां बननेवाली हो। तुम्हें अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए !"
"इतनी बात सुनकर मैं लजा कर भाग आयी थी। तब से वे मुझे प्रतिदिन देखने आते हैं।"

"आश्चर्य है विश्वा ! किंतु, क्या सचमुच तुम···तुम मां बननेवाली हो ?"

"नहीं तो क्या झूठ ?"

वरुणदत्त गंभीर विचार में डूब गया। विश्वतारा आशंकित स्वर में पूछ बैठी—

"क्यों ? बहुत गभीर हो गये।"

"मैं सोच रहा हूं विश्वा, कि यह कदाचित् अच्छा नहीं हुआ।"

"क्या अच्छा नहीं हुआ?"—विश्वतारा ने किंचित् दृढ़ स्वर में पूछा।
वरुणदत्त अपनी भूल अनुभव करके ग्लानि से सकपका कर बोला—

"नहीं···नहीं···कुछ नहीं। ठीक ही हुआ।"

"तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो। तुम्हें कहना ही पड़ेगा।"

"बात यह है विश्वा कि हम लोगों का विधिवत उपयमन संस्कार अभी तक संपन्न नहीं हुआ। और इधर तुम मां बननेवाली हो, उधर मैं रणक्षेत्र में जा रहा हूं। मेरे-तुम्हारे लिए न सही, किंतु आनेवाली संतान के लिए तो समाज की अनुमति एवं आशीर्वाद अनिवार्य है।"

"सत्य एवं प्रेम को किसी की अनुमति, सहमति की आवश्यकता नहीं

होती। और आशीर्वाद का जहां तक प्रश्न है, आचार्यपाद नारायणस्वामी ही हमारे लिए सब कुछ हैं।"

"सो तो ठीक है•••अच्छा विश्वा मैं, जयसेन को प्रस्तुत रहने की सूचना दे आऊं।"

इतना कहकर वरुणदत्त ने विश्वतारा को आवेशपूर्वक आलिंगनबद्ध करके उसके स्निग्ध उष्ण अधरों को चूम लिया।

दीर्घिका के गहन अंधकार मे दो हृदयों का चिरविदग्ध भुजातराल-मिलन आर्यावर्त के विराट प्रकाश पुंज का भविष्य-पथ निर्धारित करता-सा प्रतीत हुआ।

प्रकाश पुंज ! एकाकी, विदग्ध, चिरभासित।



महामारी के असह्य आतंक से पीड़ित गिरिव्रज नगर में जीवनदायिनी आशा की लहर दौड़ गयी। नगरवासी उत्साह से भर उठे। उन्हें लगा, जैसे द्वार पर आया हुआ यमदूत असमर्थ हो वापस लौट जाने की तैयारी में लग गया हो। क्या सामंत, क्या नागरिक, क्या श्रेष्ठि, क्या कर्मकर, क्या भिक्षु, क्या कापालिक —जिसे देखो वही गिरिव्रज नगर के पूर्वी भाग में स्थित सामंत, चन्दमित्र के एकशालिक की ओर भागा जा रहा था। एक विश्वास फैल गया कि हो न हो स्वयं विष्णुरूप कृष्ण वासुदेव पुनः अवतार लेकर महामारी रूपी जरासंध का विनाश करने के लिए गिरिव्रज आ गये हों।

चन्दमित्र के उद्यान के एकशालिक में आचार्य आत्रेय के शिष्य महान् वेदाचार्य शैवलिक के पधारते ही गिरिव्रज में चमत्कार उत्पन्न हो गया। वैद्यराज शैवलिक का तेजोमय भू-मंडल, तीक्ष्ण दृष्टि और गंभीर वाणी का प्रभाव पड़ते ही रोगी का आधा रोग तत्क्षण दूर हो जाता। ओषधि उदर में जाते ही चमत्कार उत्पन्न कर देती।

अगदंकार शैवलिक के आदेश पर, प्रतिदिन संध्या-काल, सुसज्जित रथ एकशालिक के द्वार पर उपस्थित कर दिया जाता। आचार्य शैवलिक रथ पर चढ़कर गिरिव्रज नगर के सभी कूपों एवं पुष्करणियों में विशेष प्रकार की ओषधि डालते और मध्याह्न तक एकशालिक में लौट आते।

सात दिन के भीतर ही गिरिव्रज नगर का रोग-शोक छू-मंतर हो गया। शैवलिक कृष्ण वासुदेव की तरह पूजे जाने लगे। लोग उनके दर्शनों को लालायित रहने लगे। यहां तक कि रूप गर्विता कुवलया भी शैवलिक के दर्शनार्थ वहां उपस्थित होती। कभी-कभी उसे दर्शनों के लिए प्रातः-काल से मध्याह्न तक प्रतीक्षा में बैठे रह जाना पड़ता था। लोग चकित-विस्मित थे। जिस कुवलया का दरस-परस पाने को गिरिव्रज के नागरिक आकुल-व्याकुल रहते, उस कुवलया को, आचार्य शैवलिक के प्रताप से, अपने बीच घंटों बैठे पाकर, नागरिक जन चमत्कृत हो गये।

गिरिव्रज के नागरिकों को ज्योतिषी की भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। ज्योतिषी ने कहा था कि स्वयं इन्द्र-पुत्र पश्चिम दिशा से गिरिव्रज नगर में प्रविष्ट होगा और नगर का उद्धार करेगा। शैवलिक पश्चिमी द्वार से ही नगर में प्रविष्ट हुए थे। लोगों का विश्वास सुदृढ़ हो गया कि शैवलिक कोई साधारण वैद्य नहीं हैं, बल्कि स्वयं इन्द्र-पुत्र हैं। कृष्ण वासुदेव के अवतार हैं। कुवलया का समर्पण देखकर तो लोग शैवलिक के प्रति भक्ति-भाव से भर गये। शैवलिक के चरणों पर स्वर्ण-निष्क एवं कार्षापणों का अंबार लगने लगा। शैवलिक उसे पैरों से रौंदते हुए एकशालिक के प्रकोष्ठ में चले जाते।

महाराज रिपुंजय तक उनकी ख्याति जा पहुंची। स्वयं महाराज रिपुंजय, उद्यान-द्वार से एकशालिक तक दर्शन के लिए पांव प्यादे ही भागे आये। उन दिनों ऐसी ही प्रथा थी। आचार्यों, ऋषियों और महात्माओं के

का गंभीर स्वर सुनायी पड़ा—

"पधारिए, मगध महामात्य पुलिकसेन !"

यह स्वर सुनते ही अश्वारोही, महामात्य निष्प्रभ हो गये। क्षण-भर के लिए वे द्वार पर जड़ बने खड़े रहे। आगे बढ़ने का साहस जाता रहा। किंतु कोई उपाय न देखकर महामात्य को भीतर जाना ही पड़ा।

"उस आसन पर बैठ जाइए।" शैवलिक स्थित-प्रज्ञ की तरह व्याघ्र-चर्म पर बैठे-बैठे ही बोले। वे उस समय रसायन बना रहे थे। उन्होंने दृष्टि उठाकर भी महामात्य को नहीं देखा। महामात्य चुपचाप बैठ गये।

महामात्य को अनुभव हो रहा था, जैसे सामने बैठे विराट् पुरुष ने उनकी सपूर्ण शक्ति को अपने में विलीन कर लिया हो। उनकी समझ में नही आ रहा था कि अपरिचित शैवलिक ने आहट पाते ही उन्हें कैसे पहचान लिया। पुलिकसेन रहस्य के असीम अतल महासागर में डूबते-उतराते रहे। क्षण-भर के सन्नाटे को भग करते हुए शैवलिक ने कहा—

"मै जानता था कि आप एक न एक दिन यहां अवश्य आयेंगे। किंतु, महामात्य ! रात्रि के गहन अंधकार में नियम-विरुद्ध कार्य करनेवाला राज्याध्यक्ष, अपनी दुर्बलता के चलते, सूर्योदय होते ही अपनी लीला आप समाप्त कर देता है।"

"मैं समझ नही पाया वैद्यप्रवर !" महामात्य पुलिक ने निष्प्रभ होकर टूटे स्वर में कहा। शैवलिक ने अब अपनी तीक्ष्ण दृष्टि महामात्य की आंखों में स्थिर कर दी। महामात्य कांप उठे। शैवलिक ने कहा—

"मेरे यहा सूर्यास्त के पश्चात् आना वर्जित है। किंतु, आप तो दिन में आ नही सकते। रोग-शोक से संत्रस्त प्रजा के क्रंदन को देखने-सुनने की सामर्थ्य आप मे नही है। क्यों नही हैं ? यह आप जानें। रात्रि में या अपनी मुखशाला के अधकार में, आप प्रजा-रंजन के लिए जो कुछ योजना बनाते है, उसका परिणाम आपके समक्ष हैं। और, प्रकृति का विधान है कि रात्रि के पश्चात् दिन आता है। वह दिन अब दूर नहीं है महामात्य, जब आपकी कलुषित योजना के घिनौने लेखों से भरे पृष्ठ प्रकाश की किरणों मे उजागर हो जायेंगे। उस समय अपनी लीला के अध्याय का समापन स्वय करना होगा। यदि अब भी मेरा आशय स्पष्ट नहीं हुआ

हो, तो आपका दुर्भाग्य। कहिए, मैं आपका क्या उपकार कर सकता हूं?"

"मैं तो···मैं तो आपके मात्र दर्शन के लिए आया हूं।" महामात्य की यह बात सुनकर शैवलिक ओषधि की पुड़िया बनाते हुए बोले—

"वह तो आप कर चुके, इसलिए जा सकते हैं!"

"किंतु···।"

"किंतु क्या?"

"मुझे लगता है, आपको मेरे बारे में भ्रम है। उसका निवारण···।"

"समय करेगा महामात्य। आपको भी मेरा परामर्श है कि समय का लाभ उठाइए।"

"आपका परामर्श शिरोधार्य है। किंतु, किस प्रकार?"

"कर्तव्य करके। योजना बनाने वाला यदि स्वयं ही उसे कार्य रूप दे तो समय उसके गले में सफलता की माला डाल देता है।"

"क्या वैद्यप्रवर अपना आशय और स्पष्ट करने की कृपा करेंगे?"

"महामात्य! मैं वैद्य तो हूं ही, ज्योतिष एवं राजनीतिशास्त्र का थोड़ा-बहुत ज्ञान भी रखता हूं। यह ज्ञान मैने तक्षशिला मे अर्जित किया है। परिभाषा एवं भविष्य गणना तो मैं कर सकता हूं किंतु कार्यक्रम या कार्य-विस्तार बताना मेरा काम नहीहै। हां, आपको सावधान कर देना मैं अपना धर्म समझता हूं। क्योंकि, द्रष्टा होने के कारण, मैं आपका भयावह विनाशकारी भविष्य स्पष्ट देख रहा हूं।"

"मुझे क्या करना चाहिए?"

"आपको क्या करना चाहिए, यह मैं क्या जानूं? नीति बता सकता हूं कि जो कुछ भी करणीय हो उसे स्वयं करना चाहिए। अन्यथा कार्य संपन्न करने का श्रेय जिसे मिलेगा, वही आपकी योजना का सुफल भी प्राप्त कर लेगा। आप देखते ही रह जायेंगे। ज्योतिष गणना के अनुसार, साध्य की प्राप्ति पहला साधन अपनाते ही हो जायेगी। किंतु सावधान महामात्य! सामर्थ्य प्रदर्शित करने का सुयश किसी अन्य को न मिलने पाये!"

"मैं आपका ऋणी हुआ! किंतु, आदेश अब भी अस्पष्ट है।"

"इसे अस्पष्ट ही रहने दो महामात्य! राक्षस-विवाह एवं यज्ञ जैसे

कार्य अस्पष्ट है फिर कारण तो निश्चय ही प्रच्छन्न होंगे।" शैवलिक का संकेत वाक्य सुनते ही महामात्य भय से पीले पड़ गये। लगा, जैसे उन्हें बिच्छू ने डंक मार दिया हो। शैवलिक ने तीक्ष्ण दृष्टि से महामात्य को देखा। महामात्य की आंखें व्याध के हाथ में पड़े कपोत की आंखों जैसी दीख रही थीं। शैवलिक ने कठोर स्वर में आश्वासन देते हुए कहा—

"त्रिकालदर्शी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मैं बनूंगा तुम्हारे यज्ञ का अध्वर्यु। सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।"

"अनुगृहीत हुआ आचार्य। आज से आपका आदेश ही मेरा धर्म हुआ।"

"तो मेरा आदेश तुम्हें समय-समय पर प्राप्त होता रहेगा। तत्काल मेरा यही आदेश है कि श्रेणिय बल को राज्य-प्रश्रय मिलना बंद कर दिया जाय और राज्य-कर में किसी भी वर्ण, श्रेणी या नैगम को मुक्त नहीं किया जाय। अनार्य सेना को प्रोत्साहन एवं प्राथमिकता दी जाय।"

"यह सब तो आपने मेरे मन की बात कह दी।"

"महामात्य! मैं तपस्वी ब्राह्मण हूं। मुझे अपने हित की बात नहीं कहनी है। जो तुम्हारे हित की बात होगी वही कहूंगा।"

"किंतु, मुझे मेरा साध्य कब प्राप्त होगा?"

"एक मास के भीतर। किंतु, अपना संपूर्ण ध्यान उस ओर केंद्रित कर दो। अपने आर्य नायकों पर विश्वास मत करो। अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के लिए जो कुछ भी किया जा सकता है करो।"

"वही तो कर रहा था कि आपने अपनी ओषधि के चमत्कार से मेरे किये-कराये पर पानी फेर दिया।"

"अच्छा! तो कूपों एवं पुष्करणियों में तुम्हारे ही आग्रह पर कुछ कापटिक विष डालते फिर रहे हैं?"

"जी हां। मैं परम तांत्रिक वक्रघोष का शिष्य हूं।"

"सुंदर।"

"मैं देश में अराजकता उत्पन्न कर देना चाहता हूं।"

"तो इसके लिए, राजा को रास-रंग में लिप्त रखने का प्रबंध करो, श्रेष्ठियों पर कर का बोझ द्विगुणित कर दो, सभी सामंतों को राजाज्ञा

भेजकर, धवल-गृह के लिए अच्छे कुल की प्रजावती, परिचारिकाओं एवं दासियों की व्यवस्था करने को कहो, समाज-भोज को प्रोत्साहन दो, सैनिकों को स्वच्छंद कर दो और राज्याधिकारियों पर से नियन्त्रण हटा लो। फिर देखो कि पंद्रह दिनों में क्या से क्या हो जाता है।"

"आप तो मेरे लिए वरदान सिद्ध हुए आचार्य।"

"वरदान नहीं मुक्तिदाता। अब तुम जा सकते हो। हां, एक-शालिक के प्रहरियों ने तुम्हें पहचान लिया है। इसलिए उन्हें किसी ऐसे स्थान में भेज दो कि ये कुमारसेन के राजतिलक से पहले यहां न लौट सकें। इसके स्थान पर मैं अन्य प्रहरियों को नियुक्त कर दूंगा। कारण, मेरा-तुम्हारा मिलन अभी गोपनीय रखना तुम्हारे लिए हितकर होगा। एक बात और। जो कुछ करो, राजाज्ञा के नाम पर करो। राज्याधिकारी यदि सत्ता की जड़ खोदना चाहें तो उन्हें छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा काम राजा के नाम पर ही करना चाहिए। करणीय स्वयं करो—कहने के लिए कहो कि राजा कहता है, राजा चाहता है, राजा सोचता है आदि-आदि। समझे ?"

"जी हां।"

महामात्य वहां से प्रफुल्लित होकर अपने प्रासाद मे लौटे। एक-शालिक के सभी प्रहरीगण न जाने कहां भेज दिये गये। उद्यान के द्वार पर नये प्रहरी नियुक्त कर दिये गये। शैवलिक-महामात्य मिलन अंधकार में तिरोहित होकर रह गया।



महामात्य पुलिकसेन और शैवलिक का मिलन गोपनीय ही रहा और संपूर्ण मगध महाजनपद ज्वालामुखी के मुख पर जा बैठा। एक सप्ताह के भीतर ही गिरिव्रज नगर तथा उसके आस-पास अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी। शैवलिक की बातों को पुलिकसेन देववाणी समझ कर, उसके अनुरूप ही आदेश विज्ञापित करने लगा।

कर के बोझ से व्यापार ठप्प पड़ गया। सार्थवाह मगध की सीमा से ही लौट जाने लगा। स्वच्छंद राज्याधिकारियों के अन्याय-अत्याचार से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। चापलूसों की बन आयी। गुणवान एवं देश-प्रेमी उपेक्षा के पात्र बनकर रह गये। समज्या समारोह के उल्लास में देश का दुर्भाग्य अट्टहास कर उठा। राजकोष रिक्त होने लगा।

परंपरागत योद्धा, आर्य सैनिक, श्रेणिय बल उपेक्षा और अपमान से तिलमिला उठे। क्षत्रिय-कुल प्रतिशोध की ज्वाला में जलने-सुलगने लगे। सामंतों के पास व्याजांतर से संदेश पहुंचा कि वे धवल-गृह के लिए सुंदर, सुगढ़, कुलीन षोडशियों का प्रबंध करें। इससे बढ़कर अपमान-जनक व्यवहार राजा और क्या कर सकता था। सामंतगण क्रोध के अति-रेक से उन्मत्त हो उठे।

मगध की दुर्दशा का समाचार शीघ्र ही आग की लपटों की तरह दूर-पास के जनपदों तक जा पहुंचा। कोशल, काशी, अंग, वज्जि आदि जनपद अचानक ही सक्रिय एवं जागरूक हो उठे।

देश के भीतर क्रांति की आग सुगबुगाने लगी। देश के बाहर महत्वाकांक्षी राजाओं के मन में सीमा-विस्तार की भावना उठने लगी। विनाश के कगार पर खड़ा गिरिव्रज नगर, पुलिकसेन के दुर्द्धर्ष घात-प्रतिघातों को सहता हुआ, आतंक की प्रलयंकारी बाढ़ के उतर जाने का दिवास्वप्न देखता रहा।

पूर्णमासी का दिन अवकाश का दिन होता है। किंतु उस दिन पूर्णमासी होते हुए भी राजमहल के सभा-मंडप में राजसभा का आयोजन किया गया। लाचार होकर सभी राज्याधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित हुए।

सभा में सभी सभ्य, सामंत एवं राज्याध्यक्ष मंचातिमंच विराजमान थे। महामात्य अभी तक नहीं पधारे थे। सभ्यगण बैठे हुए आपस में कानाफूसी कर रहे थे। वातावरण में यदि शिथिलता थी तो सनसनाहट भी थी, शांति थी तो उत्क्रोश भी था, लाचारी थी तो प्रतिरोध भी था। सामन्तगण अत्यधिक गंभीर बने बैठे थे। प्राय: सबके मन में एक ही प्रश्न था कि रिपुंजय की कामाग्नि में मगध जनपद कब तक जलता रहेगा ? अनाचार-अपमान एवं आतंक की घुटन से कब तक मुक्ति मिलेगी ?

कुछ क्षण की प्रतीक्षा के पश्चात् ही उद्घोषणा का स्वर गूंज उठा, "परम प्रतापी परम शैव परमेश्वर परम भट्टारक बार्हद्रथ वंश कुलावतंस महाराजा रिपुंजय देव पधारते हैं।"

महाराजा रिपुंजय के पधारते ही सभी सभ्य अभ्यर्थना में उठकर खड़े हो गये। महाराज के पीछे-पीछे महामात्य पुलिकसेन भी थे।

महाराज के आसन ग्रहण करते ही सभ्यगण भी अपने-अपने आसन पर बैठ गये। तभी महामात्य पुलिकसेन ने सभ्यों को संबोधित करके कहा—

"सभ्यगण सुनें। बार्हद्रथ वंश कुलावतंस महाराज रिपुंजय देव ने तीन सौ इक्कीस बार, तीन सौ इक्कीस कुलों की, तीन सौ इक्कीस कन्याओं से उपयमन संस्कार संपन्न करके उन्हें सौभाग्य प्रदान किया। किंतु, दुर्भाग्यवश सभी प्रजावतियां महाराज के प्रतापी औरस को धारण करने मे असमर्थ रही। सभ्यगण को विदित ही है कि महाराज वसु की वंश-

परंपरा के अंतिम गौरव अब महाराज रिपुंजय देव ही रह गये है। इस कारण, समस्त मगध-प्रजा भविष्य की चिंता से शोक-संतप्त हो उठी है। महाराज रिपुंजय देव प्रजा के दुःख का अनुभव करके एक बार पुनः किसी कुलीन कन्या को राजमाता बनने का अवसर प्रदान कर प्रजा-रंजन के निमित्त कृपा करने को प्रस्तुत हो गये हैं।"…

महामात्य की घोषणा सुनते ही सभा-मंडप मे आश्चर्य एवं जिज्ञासा की लहर दौड़ गयी। महामात्य ने विहंगम दृष्टि से एक बार सभ्यों को देखा और घोषणा जारी रखी—"किंतु, विवाह-विधि में थोड़ा परिवर्तन करना पड़ा है। ज्योतिष गणना के अनुसार, राक्षस-विवाह से प्राप्त कन्या ही महाराज का औरस धारण करने मे समर्थ होगी। इसलिए, महाराज ने निर्णय किया है कि देश के कल्याण हेतु वे अपने विवाह के लिए कन्या का बलात् हरण करेंगे…।"

सभा में सन्नाटा छा गया। सब लोग एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। महामात्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से सभ्यों को देखकर अपने भाषण का प्रभाव भांपने का प्रयत्न किया। महाराज रिपुंजय ने एक लंबी जम्हाई ली। महामात्य ने ऊचे स्वर में कहा—

"संयोग एवं प्रसन्नता की बात है कि वह कन्या गिरिव्रज नगर में ही एक अच्छे कुल की है। ज्योतिषी के अनुसार यदि वही कन्या महाराज के साथ उपयमन सस्कार में आबद्ध हो जाती है तो मगध का सिहासन कभी रिक्त नहीं होगा।"

"कौन है वह कन्या ?" कई सभ्यों ने पूछा।

"क्षत्रिय कुलावतंस चन्दमित्र की कन्या वसुमित्रा।"

यह घोषणा सुनते ही सभा में मृत्यु का संगीत संतरित हो उठा। क्षत्रियों की मुट्ठियां बंध गयी। कइयों के दांत कटकटा उठे। दूर बैठे सभ्यों के बीच से कोलाहल का स्वर उठने लगा। कुछेक ने तो क्रोध से अपने होठ काटकर रक्त बहा लिया। एक क्षत्रिय सामंत अपना क्रोध न पी सका और बोल उठा—

"यह समस्त क्षत्रिय जाति का अपमान है।"

"कौन कहता है कि इसमें क्षत्रिय जाति का अपमान है ?" महाराज

रिपुंजय जैसे नींद से चौंककर बोले, "उस क्षत्रिय कुल को गौरव का अनुभव करना चाहिए जिसकी कन्या को मैं स्वीकार करता हूं। महारानी का पद प्राप्त करना अत्यधिक गौरव की बात है। पराजित की कन्या विजेता की हृदय-सम्राज्ञी होगी।"

"महाराज भूल रहे हैं कि हम आयुधजीवी होते हैं। अपनी प्रतिष्ठा को आंच आते देखकर चुप बैठे नहीं रह सकते।" दूसरा सामंत बोल उठा। महामात्य कुटिल दृष्टि से सभ्यों की ओर देखते रहे। महाराज रिपुंजय चीख उठे—

"और तुम भूल गये कि मेरे पूर्वजों ने तुम लोगों को कीटिका समझकर कुचल दिया। किंतु, मैंने दया करके तुम्हें जीवन दिया, प्रतिष्ठा दी।"

"हम अपनी प्रतिष्ठा के लिए, आप पर मर मिटना चाहते हैं। इतनी सामर्थ्य हममें है। आप अपने निर्णय पर पुनः विचार कर देखिए कि आप कितना बड़ा अन्याय करने जा रहे हैं।"

महाराज रिपुंजय क्रोध से आग हो गये। उन्होंने गर्जना की—

"कोई है ? मैं आज्ञा देता हूं कि ये दोनों सामंत बंदी बना लिये जायें और कल प्रातःकाल होते ही जीवित पृथ्वी में गाड़ दिये जायें। शिकारी कुत्ते इनके मांस नोच कर खा जायें।"

सभा-मंडप में खलबली मच गयी। सैनिकों ने उन दोनों सामंतों को बंदी बना लिया। तभी महामात्य बोले—

"महाराज से मेरा अनुरोध है कि इन दोनों सामंतों को इस बार क्षमा कर दिया जाय।"

"कदापि नहीं।" महाराज चीख उठे, "मैं चन्द्रमित्र की कन्या का अपहरण करूंगा और जो कोई मेरे विरोध में एक शब्द भी बोलेगा उसकी यही दुर्गति कराऊंगा। मैं किसी का अनुरोध सुनने को प्रस्तुत नहीं हूं। ले जाओ इन श्वान क्षत्रियों को। आप लोग भी जा सकते हैं। सभा समाप्त की जाती है।" इतना कहकर महाराज रिपुंजय सिंहासन से उतरकर धड़धड़ाते हुए धवल-गृह की ओर चले गये।

सभा-मंडप सूना हो गया। बच रहे वहां मात्र महामात्य पुलिकसेन— विजय-गर्व का उल्लास होठों तक लबालब भरे हुए।



चम्पा नगर मे रात्रि का सूनापन उतरते ही पूर्वी भाग की एक निषद्या से एक व्यक्ति निकला। उसने अपने सपूर्ण शरीर को आच्छादनक में छिपा रखा था।

लुकता-छिपता हुआ वह, कई वीथियों को पार कर, एक छोटे से एकांत भवन के द्वार पर पहुंचा और धीरे-धीरे थपकियां देने लगा। पल-भर बाद ही द्वार खुल गया। उस व्यक्ति ने द्वार खोलनेवाले के कान में कुछ कहा और शीघ्र ही धवल-गृह की ओर प्रस्थान कर दिया।

उन दिनों चम्पा नगरी वत्स महाजनपद की शक्तिशाली सेना से घिरी हुई थी। नगर में आतंक एवं भय का साम्राज्य छाया हुआ था। वत्सराज सतानिक की गिद्ध-दृष्टि अंग पर बहुत दिनों से लगी हुई थी। तभी उनके कानों में अंगराज दधिवाहन की अपूर्व सुंदरी कन्या चन्द्रबाला के रूप, गुण और माधुर्य की ख्याति पहुंची। साम्राज्य की लिप्सा सौंदर्य के आकर्षण में खो गयी। चन्द्रबाला को रानी के रूप में प्राप्त कर महाराज सतानिक अंग से मित्रता स्थापित करने को आतुर हो उठे। अंग के महाराज दधिवाहन को मित्रता की यह राह अच्छी लगी। चन्द्रबाला जैसी अपूर्व कन्या के लिए वत्सराज सतानिक सर्वथा योग्य पति हो सकते थे। अतएव उभय पक्ष ने स्वीकृति दे दी।

किंतु मनुष्य अपनी योजना बनाने में बहुत विलंब कर देता है, विधाता का निर्णय उसके पूर्व ही हो जाता है। पाठक जानते हैं कि आखेट के अवसर

पर चन्द्रबाला तन-मन से भद्रिय हेमजित की हो चुकी थी। चन्द्रबाला चम्पा के धवलगृह में चली आयी। बहुत दिनों तक किसी को मालूम नहीं हुआ कि चन्द्रबाला का विवाह हो चुका है।

चन्द्रबाला के विवाह की बात वत्सराज सतानिक तक जा पहुंची। उनके क्रोध की सीमा नही रही जब उन्होंने सुना कि अंगराज दधिवाहन ने अपनी कन्या के लिए वत्सराज की अपेक्षा किसी अज्ञात कुलशील युवक को अधिक उपयुक्त समझा। प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा के अतिरेक से वे उन्मत्त हो उठे। अंगराज के इस व्यवहार में उन्हें अपमान की गंध लगी। वे तिल-मिला उठे। साम्राज्य-विस्तार की उनकी सुप्त आकांक्षा पुनः जागृत हो उठी। आत्म-सम्मान की भावना एवं सैन्य-शक्ति ने उन्हें युद्ध के लिए उद्वेलित कर दिया और वे पूरे वेग से अग पर चढ़ दौड़े।

अंग के प्रसिद्ध नगर अश्वपुर, भद्रिक आदि समृद्ध स्थानों को पददलित करती हुई वत्स-सेना चम्पा नगर के बाहर स्कंधावार स्थापित कर डट गयी।

रहस्यमय युवक, धवलगृह के मुख्य द्वार पर न जाकर, पश्चिमी भाग के पक्ष द्वार पर जा पहुंचा। वहां पूर्व से ही प्राचीर के पास आम्र-वृक्ष की छाया में एक स्त्री खड़ी थी। स्त्री धवलगृह की परिचारिका-सी लगती थी। युवक को देखते ही परिचारिका आम्र-छाया से निकल कर पक्ष द्वार की ओर बढ़ी। युवक उस परिचारिका के पीछे हो लिया। उद्यान तक दोनों ही एक-दूसरे से अनजान बने चुपचाप चलते रहे। उद्यान से एक वीथी-पथ धवलगृह के बिलकुल भीतर चला जाता था। वहां पहुंच कर परिचारिका ने कहा—

"इस राह से आर्य धवलगृह के अंतरायण में पधारें।" इतना कह कर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही परिचारिका बाहर-बाहर धवलगृह की मुखशाला की ओर बढ़ गयी।

परिचारिका के चले जाने के पश्चात रहस्यमय युवक धवलगृह में प्रविष्ट हुआ। प्रस्तर प्राचीरों के बीच से वीथी-पथ जाता था। धवलगृह मे प्रविष्ट होते ही उसने अपने-आप को जनहीन वीथी-पथ में पाता। निस्तब्ध उल्काएं प्रज्वलित थीं। कुछ ही दूर चलने पर, उसे प्रकोष्ठ से एक नारी-

स्वर सुनायी पड़ा—

"इधर आ जाओ !"

युवक ने प्रकोष्ठ में पहुंचते ही देखा एक सुंदरी उसकी ओर सजल आंखों से देखती हुई बांहें फैला कर खड़ी थी। युवक अपने-आप पर नियंत्रण नहीं रख सका और उस स्त्री को अपनी भुजाओं में कस कर बेसुध हो गया। क्षण-भर उस निस्तब्ध प्रकोष्ठ में चिर-इच्छित मिलन के स्वप्न में दोनों खोये रहे कि अचानक पर्यंक से एक तोतला स्वर सुनायी पड़ा—

"मां ! तुम कहां तली गयी ?"

"कहीं नहीं पुत्र। यह देखो, तुम्हारे पिता आये हैं !"—सुंदरी उस बालक के पास दौड़ती हुई पहुंच कर बोली। युवक भी तब तक पर्यंक के निकट पहुंच चुका था और वात्सल्य-भरी आंखों से बालक को निहार रहा था। अनायास ही युवक ने बालक को उठा कर हृदय से लगा लिया। सुंदरी विभोर होकर बोल उठी—

"यही तुम्हारा पुत्र है प्राण ! तुमने बहुत प्रतीक्षा करवायी। आज पूरे पांच वर्ष बाद तुम्हें देख पायी हूं।" तुम्हारा पुत्र बार-बार तुम्हारे संबंध में मुझसे प्रश्न किया करता था।"

"आचार्य का ऐसा ही आदेश था चन्द्रा। मैं तो दिन-भर में, न जाने कितनी बार, तुम्हारे पास आ पहुंचता था, तुमसे बातें करता था, आकुल-व्याकुल होकर पुनः अपने उद्देश्य की सिद्धि में जुट जाता था। क्या करता? तन न सही मन तो जुड़ा लेता था। ज्यों-ज्यों विपत्तियां सघन होती जा रही है, आचार्य का रहस्योत्पादक प्रभाव स्पष्ट एवं उद्भाषित होता जा रहा है। यही देखो कि मुझे बिलकुल उपयुक्त समय पर यहां आने का आदेश दिया।"

पाठक समझ गये होंगे कि युवक और कोई नहीं परम प्रतापी भट्टिय हेमजित था। और वह स्त्री थी अंगराज दधिवाहन की इकलौती पुत्री चन्द्रबाला। भट्टिय का निश्चित स्वर सुनकर चन्द्रबाला विचलित हुई। बोली—

"तुम नहीं जानते कि ये पांच वर्ष मैंने किस प्रकार व्यतीत किये है। आचार्य के आदेशानुसार मैं तुम्हारा नाम तक जिह्वा पर नहीं ला सकती

थी। लोग तरह-तरह के प्रश्न करते थे। मैं चुप लगा जाती थी। स्वयं पिताश्री ने कई बार प्रश्न किये। किंतु मैं मौन ही रही। पिताश्री को मेरे व्यवहार से बड़ा आघात पहुंचा। राजकुमारी हूं तो क्या हुआ ? अंततः स्त्री ही तो हूं। पिता का पता नहीं, और मैं मां बन गयी। मुंह पर कोई कुछ नहीं बोलता था। किंतु, विभिन्न प्रकार की लज्जास्पद कथाएं हवा में तैरती रहती थीं। और मेरे चाचा ब्रह्मदत्त ने तो मेरा जीना ही दूभर कर दिया।"

"मैं सब जानता हूं चन्द्रा ! यहां घटित होनेवाली प्रत्येक घटना की सूचना मुझे तत्काल मिल जाती थी। विक्षुब्ध-विह्वल होकर मैं प्रज्वलित हो उठता था। आचार्य का आदेश मुझे लाचार किये रहा। क्या करता ? किंचित् मेरी दशा का तो अनुमान करो। सामर्थ्य रहते मैं अपने पत्नी-पुत्र को कुल-गोत्रहीन बनाये हुए था।"

"अब क्या होगा ? वत्सराज सतानिक की सेना नगर को घेरे हुए है। ब्रह्मदत्त शत्रु-पक्ष से मिल गये हैं। महाराज चिंता से अर्धमृत-से हो रहे हैं। मुझे अपनी चिंता नहीं है प्राण! चिंता है पिताश्री की और तुम्हारे इस पुत्र की।"

"चिंता मत करो चन्द्रा ! अब मैं आ गया हूं।"

"किंतु, तुम अकेले क्या कर लोगे? वत्सराज का अपार सैन्यबल चम्पा दुर्ग के परकोटे को भी छिन्न-भिन्न कर देने में समर्थ है।"

"दुर्ग के परकोटे टूट जाने से देश पराधीन नहीं होते चन्द्रा ! देश पराधीन होते हैं नागरिकों की एकता और अनुशासन टूट जाने से, उनका उत्साह एवं राज्यभक्ति समाप्त हो जाने से। वत्सराज तो क्या स्वयं इन्द्र भी अनुशासित प्राणवान् एवं एकता के सूत्र में आबद्ध देश का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इसलिए अंग का शत्रु वत्स नहीं, ब्रह्मदत्त है। अंग को ब्रह्मदत्त से सावधान रहना चाहिए, सतानिक से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यह तो तूफान है जो उड़ जायेगा। यह क्षणिक प्रकोप है, जिसका उपचार करने की सामर्थ्य मैं स्वयं रखता हूं।"

चन्द्रबाला अपने देव सदृश पति को निहारती रही—प्रसन्नता से, आशा से, द्विधा से। भद्रिय ने कुछ देर चुप रह कर पूछा—

"ब्रह्मदत्त अभी कहां होगा ?"

"अपने प्रासाद में या शत्रुओं के शिविर में।"

"धवल-गृह का गुप्त द्वार किधर है ?"

"यहां पार्श्व के प्रकोष्ठ से सोपान आरंभ होता है।"

"ठीक। क्या ब्रह्मदत्त को गुप्त द्वार का पता है?"

"निस्संदेह !"

"अच्छा तो कुछ पुराने वास:खंड का प्रबंध करो शीघ्र।"

वस्त्र प्राप्त होने पर भट्टिय ने चन्द्रबाला की सहायता से लगभग दस गोले बनाये, ठीक कंदुक-जैसे और पट्टिका डोर से एक कुप्पी निकाल कर उसको रसायन गोलों पर छिड़क दिया। यह कार्य संपन्न हो जाने पर भट्टिय बोला—

"ये गोले तुम उठा लो ! मैं पुत्र को उठाता हूं।"

"कहां चलना है ?"

"जहां मैं कहता हूं।"

"महाराज का क्या होगा ?"

"शत्रु उनका स्पर्श तक नही कर पायेगा। और तुम यहां रह कर भी क्या कर लोगी ?"

"किंतु, यदि शत्रु अचानक आक्रमण कर दे तब ?"

"ऐसा हो नहीं सकता।"

"कैसे ?"

"मुझ पर विश्वास करने से। विलंब मत करो।"

चन्द्रबाला चुपचाप वास:खंड के गोले उठा कर चल पड़ी। कुछ क्षण के पश्चात् ही गुप्त मार्ग द्वार आ गया। वे लोग गुप्त मार्ग में उतर पड़े। वहां का वीथी-पथ बहुत ही संकरा था और पत्थर का बना हुआ था। प्रकाश का आभास तक नहीं था। दोनों टटोल-टटोल कर आगे बढ़ते रहे। कुछ काल तक चलने के पश्चात् स्वच्छ वायु के झोंके का अनुभव हुआ। भट्टिय बोला—

"लगता है, हम लोग बाहर पहुंचने ही वाले हैं ?"

"हां।"

"तो गोले यहीं रख दो !"

चन्द्रबाला गोले रख कर कुछ ही दूर पहुंची थी कि भट्टिय चौक कर खड़ा हो गया। बाहर से किसी के आने की आहट मालूम पड़ी। भट्टिय शीघ्रता से चन्द्रबाला की गोद मे पुत्र को रखकर आठ-दस पग आगे बढ़ गया। चन्द्रबाला सांस रोके खड़ी रही।

उसकी आशंका निर्मूल नही थी। क्षण-भर पश्चात् ही; दो मूर्तियां बाहर से चली आती हुई दीख पड़ी। वहां स्थानाभाव था। फिर भी भट्टिय प्राचीर से चिपक कर अंधकार में मिल गया। दोनों मूर्तियां ज्यों ही भट्टिय के पास पहुंची कि भट्टिय ने उन दोनों को एकसाथ दबोच लिया और मुष्टिका-प्रहार से मृतप्राय कर दिया। चीख-चिल्लाहट सुन कर चन्द्रबाला पास आ पहुंची। तब तक उन दोनों को भट्टिय ने उन्हीं के पट्ट-डोर से एक-साथ बांध कर लुढ़का दिया था। भट्टिय ने पत्थर के संघर्षण से प्रकाश करके उन दोनों को देखा। चन्द्रबाला बोल उठी—

"अरे ये तो महाराज के सैनिक हैं।"

भट्टिय ने पूछा—

"तुम लोग गुप्त मार्ग से क्यों आ रहे थे ?"

दोनों सैनिक चुप रहे। भट्टिय ने एक सैनिक की कनपट्टी पर प्रबल वेग से मुष्टिका प्रहार किया। सैनिक चीत्कार कर उठा। भट्टिय ने कठोर स्वर में कहा—

"मैं हूं कृष्ण दस्यु ! यदि तुमने सत्य बात नहीं बतायी तो कल्पना कर सकते हो कि तुम्हारी क्या दशा होगी ?"

कृष्ण दस्यु का नाम सुनते ही सैनिकों के प्राण सूख गये। एक सैनिक गिड़गिड़ा कर बोला—

"मेरा कोई दोष नहीं है प्रभो ! महाराज कुमार ब्रह्मदत्त के आदेश पर हम लोग यहां आये हैं।"

भट्टिय ने घृणा के स्वर में पूछा—

"देश एवं राजा के प्रति द्रोह करने में तुम्हें संकोच एवं ग्लानि नहीं हुई। अच्छी बात है। मैं शीघ्र ही वापस आकर तुम्हारे प्रायश्चित्त की व्यवस्था करता हूं। तब तक यहां पड़े रहो।"

भट्टिय अपनी पत्नी एवं पुत्र को लेकर बाहर आया। उद्यान के पीछे कई अश्वारोही प्रतीक्षा में खड़े थे। भट्टिय ने उन लोगों को समुचित आदेश दिया। सभी अश्वारोही चन्द्रबाला के साथ वहां से विदा हो गये।



रात ढलने को हो आयी थी कि तभी अंगराज के धवल-गृह के ऊपर शिखर के पास, अंधेरे में उल्काएं हिलने लगीं। नगर के प्रहरीगण इस रहस्यमय संकेत का अर्थ समझ भी नहीं पाये थे कि अचानक चम्पा नगर का पश्चिमी मुख्य द्वार खुल गया और वत्सराज के सैकड़ों सैनिक, प्रलयंकारी बाढ़ के उद्धत जल-प्रवाह की तरह नगर में घुसने लगे।

चम्पा के स्कंधावार में तूर्य निनाद हो उठा। पथों पर, वीथियों में, उद्यान मे—हर जगह खड्ग से खड्ग, गदा से गदा, शल्य से शल्य टकराने लगे। नगर में कोलाहल मच गया। नागरिक अपने-अपने घर और वैभव का मोह त्याग कर पूर्व की ओर भागने लगे।

अश्वारोहियों, पदाति एवं हस्ति-सेना के प्रलयंकारी गर्जन-तर्जन से चम्पा की अजेय शक्ति प्रकंपित हो उठी। वत्सराज सतानिक स्वयं सैनिक सचालन कर रहे थे। वे चार अश्वों वाले रथ पर वर्म धारण किये आगे बढ़ रहे थे। रथ पर दो सारथी, दो ढलैत और दो धानुष्क सैनिक सन्नद्ध थे।

अब तक लगभग पांच सहस्र सैतिक नगर में घुस आये थे, जिनमे

प्रासक, आसिक, धानुष्क, पारश्वधिक, शाक्तीक, याष्टीक—सभी प्रकार के सैनिक सम्मिलित थे। सैकड़ों उल्काएं प्रज्वलित थीं। शत सहस्र कंठों से फूटने वाला चीत्कार प्रलयकाल का वातावरण उपस्थित कर रहा था। वत्सराज सतानिक के रथ के साथ ब्रह्मदत्त स्वयं अश्व पर चढ़ा हुआ उनका मार्ग-प्रदर्शन कर रहा था। जब देश का भाग्य फूटने को होता है, तब देश के भीतर ही, सत्ता प्राप्त करने के लिए, घात-प्रतिघात का आरंभ होता है। बाहरी शत्रु तो निमित्त-मात्र होते हैं।

महाराज सतानिक का रथ, धवल-गृह से कुछ दूर इधर ही, अचानक रुक गया। सैनिकों का प्रवाह आकस्मिक असंभाव्य प्रतिरोध की शिला से टकरा कर पीछे मुड़ गया। अंधकार में डूबे हुए धवल-गृह के प्राचीर से सहस्रों सपत्र बाण अंधकार को बेधते हुए वत्सराज सतानिक के सैनिकों के उदर, नाभि, कुक्षि, ग्रीवा, हृदय, मस्तक आदि विभिन्न अंगों में घुसने लगे। महाराज सतानिक ने क्रुद्ध दृष्टि से ब्रह्मदत्त की ओर देखा। ब्रह्मदत्त का उत्साहपूर्ण मुख-मंडल भय के मारे पीला पड़ गया। गुप्त मार्ग से उसने एक सहस्र योद्धाओं को पहले ही धवल-गृह में भेज दिया था। उसने सोचा था कि धवल-गृह के बाहरी द्वार पर ही महाराज दधिवाहन, बंदी वेश में, स्वागतार्थ खड़े मिलेंगे। किंतु, बात सर्वथा उल्टी निकली।

शत्रु-पक्ष अभी सम्हल भी नहीं पाया था कि पीछे से अचानक ही आक्रमण हो गया। सोचने या सावधान होने का अवसर तक नहीं मिला। वत्स देश के सैनिक गाजर-मूली की तरह कटने लगे। पीछे से आक्रमण करने वाले सभी अश्वारोही थे। महाराज सतानिक विचलित हो उठे। मगधराज ने उन्हें अंग तक पहुंचने का मार्ग देकर अपनी मित्रता का परिचय दिया था। फिर दधिवाहन के पक्ष में यह कौन-सी दैवी शक्ति आ गयी। वत्सराज किंकर्त्तव्य विमूढ़ से अपना पतन देखते रह गये। क्षण-भर में न जाने उनके कितने सैनिक सपत्र बाण एवं खड्ग की बलि चढ़ गये। पृष्ठभूमि से होने वाले आक्रमण ने वत्सराज को सर्वथा श्रीहीन बना दिया।

उसी समय कम्बोजी अश्व फेंकता हुआ एक बलिष्ठ अश्वारोही उनके रथ के पास आ पहुंचा। झिलमिल अंधकार में भी उक्त अश्वारोही की वर्म-

युक्त बलिष्ठ देह, उसके शस्त्रास्त्र, उसकी शक्ति-स्फूर्ति और उसके पराक्रम का आभास चिनगारियों की तरह प्रस्फुटित हो रहा था। उसकी गंभीर गर्जना सुनकर महाराज सतानिक उसकी ओर देखने लगे। अश्वारोही कह रहा था—

"वत्सराज ! आपसे मेरी कोई शत्रुता नही है। अतएव मैं आपको प्राण-भिक्षा देता हूं। पश्चिम का मुख्य द्वार अवरुद्ध है। आपके लिए दक्षिणी द्वार से होकर कौशाम्बी जाने का मार्ग प्रशस्त है। मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त अन्य•••

अश्वारोही योद्धा ने वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि उसका दायां हाथ विद्युत गति से उछला।

'भनाक्' की ध्वनि के साथ ही एक चीख निकली और महाराज सतानिक के पार्श्व में खड़े पदाति सैनिक के हाथ का खड्ग दूर जा गिरा। पदाति सैनिक का निष्प्राण शरीर महाराज सतानिक के रथ की धुरी से टकरा कर भूमि पर स्थिर हो गया। उसकी ग्रीवा में अश्वारोही की हेति धंसी हुई थी। पलक मारते ही यह घटना घट गयी। महाराज सतानिक अश्वारोही का पराक्रम देख विस्मित रह गये। अश्वारोही पूर्ववत् स्वर में, जैसे कोई घटना ही नहीं घटी हो, बोला—

"अभागे की मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी थी। तभी इसने मुझ पर खड्ग चलाने की धृष्टता की।"

"क्या मैं आप जैसे पराक्रमी का परिचय प्राप्त कर सकता हूं ?" महाराज सतानिक ने गौरवयुक्त किंतु विनीत स्वर में पूछा। अश्वारोही ने कहा—

"कुछ कारणवश मैं तत्काल कृष्ण दस्यु हूं। वैसे मेरा नाम भट्टिय हेमजित है। चन्द्रबाला का पाणिग्रहण करने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हुआ है। साधारण सैनिक हूं। आप मेरे नाम से परिचित नहीं होंगे।"

महाराज ने तत्क्षण ही युद्ध बंद करने का आदेश दिया। तूर्य-निनाद से अंधकार प्रकंपित हो उठा। अश्वारोही ने भी तूर्य बजा कर विचित्र ढंग से ध्वनि की। पक्ष-विपक्ष के सैनिक दूध की तरह फट गये। महाराज सतानिक

ने कहा—

"मैं आपके कुल-गोत्र से परिचित नहीं हूं। किंतु, इतना कह सकता हूं कि आप जैसे सिंह पुरुष ही कुल-गोत्र की परंपरा आरंभ करते है। आपके परामर्श का मैं आदर करता हूं और महाराज दधिवाहन के पास संधि का प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं।"

"मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे परंतप परमेश्वर परम भट्टारक महाराज द्वारा मेरा प्रस्ताव समादृत हुआ। फिर कभी अवसर आया तो आपके दर्शन करूंगा। आप मगध के मित्र हैं। अतएव, मागध होने के नाते मैं आप की जय चाहता हूं—साथ ही यह भी चाहता हूं कि आप महाराज दधिवाहन की प्रभुता का सम्मान करें।"

"ऐसा ही होगा मागध वीर।"

इसके पश्चात् भट्टिय ब्रह्मदत्त की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालता हुआ पश्चिम की ओर चला गया। सूर्योदय होने पर चम्पा के नागरिकों ने देखा कि सहस्रों शवों का ढेर छोड़ कर वत्सराज सतानिक नगर से दूर जा चुके हैं। धवल-गृह पर अंग की राज-पताका गर्व के साथ लहरा रही है।



सूर्योदय हो चुका था। चम्पा के नागरिक आश्वस्त होकर अपने-अपने गृहों को लौट रहे थे। युद्ध का तूफान लौट चुका था। वत्सराज के सैनिक चम्पा से दूर जा चुके थे। नगर में शांति थी—श्मशान की शांति। अनाथ बच्चों की पुकार, विधवाओं का क्रंदन और घायलों, अपाहिजों का आर्त्तनाद चम्पा

नगर पर दारुण विषाद का वितानक बन कर झूल रहा था। विवेकशील चुप थे। उनकी चुप्पी में असह्य वेदना समाहित थी। आक्रमण, फिर प्रत्याक्रमण और उसके बाद शत्रु-पक्ष का पलायन—यह सब कैसे हुआ ? कब हुआ ? यह रहस्य किसी की समझ में नहीं आया। युद्ध की विभीषिका एक भयावह रहस्य बन कर चम्पा के नागरिकों पर लद गयी।

नगर का विध्वंस देखते हुए दो अश्वारोही धीरे-धीरे धवल-गृह की ओर बढ़ रहे थे। एक अश्व पर स्वयं भट्टिय हेमजित अपने पुत्र के साथ आरूढ़ था, दूसरे पर उसकी पत्नी चन्द्रबाला।

धवल-गृह के बाह्य सन्निवेश पर मात्र एक सैनिक प्रहरी उपस्थित था। राजकुमारी को देखते ही उसने सैनिक अभिवादन किया। किंतु, उसकी आंखों में श्रद्धा नहीं, भय की चमक दीख पड़ी। दोनों अश्वारोही आगे बढ़े। राजद्वार पर कोई प्रहरी नहीं था। चन्द्रबाला कौतूहल एवं शंका से भर उठा। उसका मन भयंकर कल्पनाओं से व्यग्र हो उठा। तभी एक कानन-कपोत अजिर की ओर से उड़ता हुआ फर्र से बाहर निकल गया।

चन्द्रबाला के प्राण सूख गये। उसने भयातुर दृष्टि से भट्टिय की ओर देखा। भट्टिय भी किंचित् शंकालु हो उठा था। अश्व से उतरता हुआ वह स्वगत भाषण के स्वर मे बोला—

"लगता है, यहां से अपने सैनिक हटा कर मैंने भूल की।"

कुछ काल तक, तीनों चुपचाप सोपान चढ़ते रहे। फिर भट्टिय ने अपने कथन का आप ही खंडन किया—

"किंतु, अपने मागध सैनिक मैं यहां रखता कैसे ? राजा और प्रजा, दोनों को ही मेरा यह कार्य अप्रिय लगता। नयी समस्या उठ खड़ी होती। अपने देश में, विदेशी सैनिक संस्थान की उपस्थिति को कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र स्वीकार नहीं करेगा।"

चन्द्रबाला चुपचाप सीढ़ियां चढ़ती रही। ऊपर चतुःशाल में भी सन्नाटा था। परिचारक-परिचारिकाओं की छाया तक नहीं थी। चन्द्रबाला दौड़कर अपने पिता के वास-गृह में जा पहुंची। भट्टिय चारों ओर देखता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। कारण, वहां की हवा उसे अत्यधिक विषाक्त लग रही थी। अचानक, वास-गृह से अपनी पत्नी का चात्कार

सुनकर वह, अपने पुत्र को गोद में उठा कर उसी ओर दौड़ा।

वास-गृह का दृश्य देखकर वह काठ हो गया। परम भट्टारक परमेश्वर परम वैष्णव महाराज दधिवाहन का सिर धड़ से अलग पड़ा हुआ था और चन्द्रबाला अपने पिता की देह पर गिरी हुई उन्मादिनी जैसी बिलख-बिलख कर रो रही थी। भट्टिय का पुत्र यह दृश्य देखते ही चीखने लगा।

भट्टिय की आंखें भी छलछला आयीं। उसने झुक कर श्वसुर के चरण छुए और चन्द्रबाला को बलपूर्वक उठाकर खड़ा किया। चन्द्रबाला भट्टिय के वक्षस्थल पर सिर पटक-पटक कर रोती रही। तभी भट्टिय गंभीर एवं संकल्पात्मक स्वर में बोला—

"चन्द्रा ! प्रत्येक जीवन का निश्चित अंत मृत्यु ही है। निस्संदेह, वह समय से ही आती है—इस तरह बलपूर्वक नहीं लायी जाती। मुझे लगता है कि यह कुकर्म उस पापी ब्रह्मदत्त का ही है। मैं तुम्हारे पिता के चरणों की शपथ खाकर संकल्प लेता हूं कि प्राण देकर भी महाराज की मृत्यु का प्रतिशोध लूगा ! अब शीघ्र ही यहां से चली चलो। यहां रुकना निरापद नहीं है। तुम राजकुमारी हो। राजवंशों का इतिहास रक्त से ही लिखा जाता है। अतएव, इस तरह धीरज गंवाना या क्रंदन करना तुम्हें शोभा नही देता। ये आंसू पोंछ लो और चलो।"

भट्टिय उन दोनों को साथ लेकर नीचे उतरा। चारों ओर पूर्ववत् सन्नाटा था। राजद्वार पर दोनो अश्व खड़े थे। कुछ ही काल पश्चात् दो अश्वारोही नगर की प्रतिकूल दिशा में द्रुत गति से उड़े चले जा रहे थे।



"ब्रह्मदत्त !" अज्ञात तरुण अश्वारोही के प्रस्थान करते ही वत्सराज सतानिक ने गर्जना की—"यह सब-कुछ तुम्हारे कारण हुआ। आज तक किसी के समक्ष मेरी पराजय नहीं हुई थी। किंतु, एक अनजान सेना-नायक ने मेरी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। निश्चय ही, तुमने विश्वासघात किया है।"

ब्रह्मदत्त भय से कांपने लगा। गिड़गिड़ाता हुआ बोला—

"महाराज ! यदि मैंने विश्वासघात किया हो तो मैं रौरव में पड़ूं, कीर्ति, धर्म, संतति—सब नष्ट हो जाय !"

"फिर तुम्हारे एक सहस्र योद्धा कहां गये जो गुप्त मार्ग से धवल-गृह में प्रविष्ट हुए थे ? क्या उन्हीं लोगों ने मेरे सैनिकों को सपत्र बाण से बेंध दिया? तुमने कहा था कि धवल-गृह में महाराज अकेले अपनी पुत्री के साथ हैं। तुमने यह भी कहा था कि महाराज के सभी कंटकी, परिचारक, दौवारिक आदि तुम्हारे आदमी हैं।"

"मैंने सत्य ही कहा था श्रीमन् ! निश्चय ही वे सब मार दिये गये हैं या बंदी बना लिये गये हैं। आज्ञा हो तो मै इसका पता…"

"अब कुछ नही होगा।" महाराज सतानिक गरज उठे—

"मैं वचनबद्ध हूं। तुम्हारा दंड यही है कि अंग में रहकर अंगराज दधिवाहन का कोपभाजन बनो।"

महाराज सतानिक ने बलाधिकृत को बुलाकर अंग से प्रयाण करने का

आदेश दे दिया। जो सैनिक जहां थे, जिस दिशा में थे उसी दशा में चम्पा के दक्षिण द्वार से बाहर की ओर चल पड़े।

ब्रह्मदत्त एक किनारे खड़ा होकर वत्सराज की अश्व-सेना, पदाति, रथ-सेना एवं हस्ति-सेना को जाते हुए देखता रहा। ब्राह्म मुहूर्त हो चुकने तक संपूर्ण चम्पा नगर वत्स-सेना से मुक्त हो गया। नागरिक जन अभी तक यत्र-तत्र छिपे हुए थे। ब्रह्मदत्त ने देखा कि वत्सराज के सैनिकों के प्रस्थान करते ही धवल-गृह से लगभग पांच सौ सैनिक बाहर निकले और पश्चिमी द्वार की ओर बढ़ गये। धवल-गृह में सन्नाटा छा गया।

ब्रह्मदत्त अपने अश्व पर बैठा क्षण-भर सोचता रहा। अचानक उसके मन में कौतूहल जगा कि गुप्त मार्ग से जाने वाले उसके एक सहस्र सैनिक कहां डूब मरे! और तब उसने अनायास ही अपना अश्व मोड़कर धवल-गृह के गुप्त मार्ग की ओर बढा दिया।

गुप्त मार्ग के बाहरी द्वार पर कोई नहीं था। वह अश्व से उतर पड़ा और गुप्त मार्ग में प्रविष्ट होकर आगे चल पड़ा। उसने एक उल्का जला ली थी। उसकी शंका सत्यसिद्ध हुई। गुप्त मार्ग शवों से पटा था। ब्रह्मदत्त के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने देखा कि मृत व्यक्तियों के शरीर पर शस्त्राघात का चिह्न तक नहीं था। वह शवों को रौंदता हुआ आगे बढ़ा। कुछ सैनिक अभी तक सांस ले रहे थे। कुछ सैनिक आंतरिक पीड़ा से कराह रहे थे। किंतु, ब्रह्मदत्त को उनकी पीड़ा देखने का या उन्हें मृत्यु से बचाने का अवकाश नहीं था। वह आगे बढ़ता गया।

सैनिकों के शव या मूर्च्छित शरीर मिलने बंद हो गये। उल्का के प्रकाश में ब्रह्मदत्त ने देखा कि पथ पर कुछ-कुछ दूर पर, जले हुए कपड़े या उसकी राख पड़ी है। अन्ततः वह धवल-गृह के चतुःशाल में पहुंच गया। वहां पूर्ण निस्तब्धता व्याप्त थी।

उसके मस्तिष्क में विभिन्न निष्कर्ष कौंध उठे। महाराज दधिवाहन के हाथों उसका बध अब निश्चित था—कम-से-कम अपमानित होकर देश-निष्कासन तो ध्रुव था।

वह वास-गृह में पहुंचा। महाराज पर्यंकिका पर आंखें बंद किये पड़े थे। पदचाप सुनकर उन्होंने आंखे खोल दीं, देखा, सामने ब्रह्मदत्त खड़ा था।

दुखी स्वर में महाराज बोल उठे—

"अंततः तुम अपने षड्यंत्र में विफल ही रहे।"

ब्रह्मदत्त ने अच्छा अवसर देखा। विनीत स्वर में बोला—

"महाराज ! मेरा कोई अपराध नही है। मुझे तो दुष्ट सतानिक ने बंदी बना कर अपने साथ कर लिया था। फिर भी मैंने उसकी कोई सहायता नही की। ईश्वर साक्षी है श्रीमान् !"

"कुल को तो कलंकित कर ही चुके। अब ईश्वर को क्यों कलंकित करना चाहते हो ?"

"मैं सत्य कहता हूं महाराज ! फिर भी मैं क्षमा-याचना के लिए आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूं। मात्र इस बात की क्षमा कि मैं समय पर महाराज के काम न आ सका।"

"क्षमा का निर्णय तो मंत्रि-परिषद् करेगी आयुष्मान् ! मैं क्या कर सकता हूं। मैं तो तत्काल स्वयं असमर्थ हूं। संपूर्ण धवल-गृह में मात्र मैं बच रहा हूं। सभी परिचारक एवं कंटकी भाग गये। मेरे लिए तो यह भी रहस्य ही है कि किधर से कुछेक सौ सैनिक आ गये—और किस स्थिति में शत्रु-पक्ष चम्पा से भाग खड़ा हुआ।"

"यह सब कृष्ण वासुदेव की कृपा है महाराज ! लगता है, उन्होंने ही हम लोगों की रक्षा की।"—ब्रह्मदत्त धूर्त्त की तरह वास्तविकता छिपा कर बोला। महाराज करुण हंसी हंसते हुए बोले—

"मुझे इतना अबोध मत समझो ब्रह्मदत्त ! चन्द्रा का पति मेरे समक्ष नहीं आया—किंतु, आज मुझे गर्व है अपनी पुत्री पर जिसने ऐसे परा-क्रमी का वरण किया। भले ही वह किसी राजकुल का नहीं हो। किंतु, वह साक्षात् इन्द्र है—वासुदेव कृष्ण का अंश है।" इतना कहकर महाराज पर्यंकिका से उठकर ब्रह्मदत्त के पास आये और बोले—

"मैं तुम्हारे सत्य की परीक्षा ले रहा था ब्रह्मदत्त ! तुम्हारे जैसे देशद्रोही को जन्म देकर हर्यंकुल कलंकित हो गया। तुम्हें मृत्यु-दंड देकर मैं अपना या दंड-विधान का अपमान करना नहीं चाहता। अतएव, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि अभी, सूर्योदय के पूर्व तुम चम्पा त्याग दो और अंग देश से बाहर चले जाओ। जाओ, मैं तुम्हारा मुख भी देखना नहीं चाहता।"

महाराज सचमुच ही ब्रह्मदत्त की ओर से मुंह फेर कर पलंग की ओर चल दिये। ब्रह्मदत्त के भीतर का पशु अचानक ही जागृत हो उठा। राज-सिंहासन प्राप्त करने का स्वर्णावसर उसकी आंखों के आगे कौंध गया। यदि वह यह अवसर चूक गया तो उसका भगवान ही रक्षक है। महाराज की पीठ और गरदन ने उसकी लोभ-जनित हिंसा को प्रज्वलित कर दिया। विद्युत गति से उछल कर उसने खड्ग के एक ही प्रहार से महाराज दधि-वाहन का सिर धड़ से अलग कर दिया।

हर्यकुल शिरोमणि परम भट्टारक परम वैष्णव परमेश्वर महाराज दधिवाहन के उष्ण रक्त से अंगराज के वासगृह का फर्श रंजित हो उठा।

ब्रह्मदत्त वहां से तुरंत नौ-दो-ग्यारह हो गया। चम्पा के नागरिक एवं राज्याधिकारी शत्रु-पक्ष के पलायन से संतोष एवं आनंद का स्वाद भी नहीं ले पाये थे कि महाराज के बध का समाचार चारों ओर फैल गया।

चम्पा ही नहीं, संपूर्ण अंग शोक-सागर में डूब गया। ब्रह्मदत्त अपने भाई के निधन पर दुःख से उन्मत्त हो उठा।



चम्पा राज्य के अगम्भ प्रदेश में भयंकर जीव-जंतुओं का निवास है। आखेट के लिए आनेवाले सामंत या राजा-महाराजा चम्पा राज्य के बाहर-बाहर आखेट का आनंद लेकर लौट जाते हैं—भीतर प्रविष्ट होने का साहस किसी में नहीं होता। कारण, वहां हिंसक वनचारी जीव-जंतुओं के अति-रिक्त आटविक दल, दस्युगण एवं अन्य आयुधजीवियों का साम्राज्य है।

नागरिकों एवं ग्रामीणों का विश्वास है कि वहां बसने वाले नर-बलि देते हैं, रक्त पीते है और भैरवी के प्रताप से अपना जीवन अक्षुण्ण रखते हैं।

इसी वन-प्रदेश के बिलकुल भीतर एक पर्णकुटी में चन्द्रबाला खट्वा पर बैठी थी। उसका पुत्र बिम्बिसार भी पास में ही बैठा था। चन्द्रबाला का मुखमंडल गहनतम विषाद से आच्छन्न था। बिम्बिसार अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से मां को देख रहा था। वह अभी बालक था, किंतु उसका तेज साधकों एव पराक्रमी योद्धाओं को भी विनत कर देने में सक्षम था।

माता-पुत्र चुपचाप बैठे थे। तभी शस्त्र-सज्जित भट्टिय हेमजित ने कुटी में प्रवेश किया। बालक बिम्बिसार दौड़कर अपने पिता से लिपट गया और बोला—

"पिताजी ! आज मां मुझसे रूठ गयी है। कुछ बोलती ही नही है। चुपचाप न जाने क्या देखती रहती है।"

भट्टिय ने प्यार से पुत्र की पीठ और गाल थपथपाकर चन्द्रबाला से कहा—

"सुनती हो, यह क्या कह रहा है ?"

चन्द्रबाला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने पति की ओर देखती रही। उसके होठों पर विषाद की गहरी रेखाएं मुस्कराहट बनकर कांपती रहीं। भट्टिय अपने पुत्र को छोड़कर चन्द्रबाला के पास आ पहुंचा और प्यार से बोला—

"क्या हो गया है तुम्हें ? इस प्रकार जीवन कैसे चलेगा ! संसार में आपा-धापी मची ही रहती है। कोई जीत जाता है और किसी को हार देखनी पड़ती है। फिर, सत्ता के लिए संहार तो सनातन काल से मचता आ रहा है। मैं क्या कर रहा हूं ?"

चन्द्रबाला ने कातर दृष्टि से पति की ओर देखकर कहा—

"क्या करूं ? मन को लाख समझाती हूं, किंतु उल्टे मन ही मुझे धिक्कारने लगता है। प्रतिपल पिताश्री का खंडित शरीर आंखों के समक्ष लटकता प्रतीत होता है। लगता है, मेरे कारण ही पिता की ऐसी दशा हुई। जिसने मुझे जन्म दिया, प्यार से पाल-पोस कर बड़ा किया, उसे मैं मृत्यु के अतिरिक्त कुछ न दे सकी। भाई ने भाई की हत्या कर दी।"

"यह तुम्हारा भ्रम है चन्द्रा ! महाराज दधिवाहन तुम्हारे ही पिता नहीं थे, उनकी और भी कई संतानें थीं। वे सम्राट् थे। प्रजा, सेना, कोष, सिंहासन, दुर्ग सभी उनकी संतान थे। और सबसे लाड़ली एवं मोहनी संतान थी—सत्ता ! ब्रह्मदत्त तुम्हें नहीं—सत्ता को हथियाना चाहता था। सत्ता का रूप इतना मादक होता है—इतना आकर्षक और उत्तेजक होता है कि उसे प्राप्त करने की धुन में मनुष्य अंधा हो जाता है—पागल हो जाता है—कुछ भी करने को उद्यत हो जाता है। वह भूल जाता है कि जो जीवन नहीं दे सकता, उसे जीवन लेने का अधिकार नहीं है। विध्वंस और हत्याओं की नीव पर ही सत्ता टिकी रहती है। ब्रह्मदत्त ने उसी सत्ता को प्राप्त करने के लिए वैसा निर्विघ्न कार्य किया। तुम अपने को दोषी मानकर व्यर्थ ही कष्ट पाती हो। भूल जाओ उन बातों को !"

कैसे भूल जाऊं ! जिस पिता ने मुझे मां का अभाव कभी खटकने नहीं दिया, मेरी सभी भूलों को क्षमा कर दिया—उसे कैसे भूल जाऊं ? अपनी आंखों से मैं उन्हें भूमि पर पड़ा देखकर भी परायी जैसी चली आयी ! न जाने उनकी अंतिम क्रिया भी किसी ने की होगी या नहीं।"

"चन्द्रा ! तुम सचमुच ही बड़ी भोली हो ! यह क्यों भूलती हो कि महाराज दधिवाहन राजा थे। जिसे उनके सिंहासन पर अधिकार करने की चिंता थी—जो उनका उत्तराधिकारी बनने के लिए लालायित था वह क्या क्रिया-कर्म संपन्न करने का अवसर खो देगा ? तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ब्रह्मदत्त ने महाराज की मृत्यु पर रोने का ऐसा अभिनय किया कि अंग-वासी उसे देवता मानने लगे हैं। इस कारण अंग का राज्य-सिंहासन प्राप्त करने में उसे कोई कठिनाई भी नहीं हुई।"

"तो उस दुष्ट नीच को अंगवासियों ने राजा मान लिया ?"

"और क्या करते ? दूसरा उत्तराधिकारी भी तो नहीं था।"

"और तुम मुझे यह सूचना दे रहे हो ?"

"मैं क्या करता ? मै तो अंगवासियों के लिए दस्यु हूं—परदेशी हूं। अतएव, तत्काल चुप रहना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।"

"क्यों ? तुम्हारे संकल्प का क्या हुआ ?"

"मुझे स्मरण है। अवसर की प्रतीक्षा में हूं।"

"पिताजी ! उछको मैं मालूंगा। उछछे मैं छिंगाछन छीन लूगा !" बालक बिम्बिसार क्रुद्ध होने का अभिनय करता हुआ बोल उठा ! भट्टिय ने बढकर प्यार से पुत्र को गोद में उठा लिया—

"हां पुत्र ! यदि मैं प्राण देकर भी अपना संकल्प पूरा नहीं कर सका तो तुम्हें ही मेरा संकल्प पूरा करना होगा। पिता के स्वप्न को पुत्र ही साकार करता है।"

"छाकाल कलूंगा !" बालक बिम्बिसार ने हवा में मुट्ठी भांजते हुए कहा। पुत्र की बात एवं भंगिमा से चन्द्रबाला का विषाद क्षण-भर के लिए छंट गया। वह विभोर होकर पुत्र को देखने लगी। भट्टिय बोला—

"तुम्हें स्मरण है चन्द्रा ! आचार्य ने कहा था कि तुम्हारा पुत्र सार्वभौम सम्राट् के पद पर अभिषिक्त होगा।"

"स्मरण है, किंतु, यह असंभव दीखता है।"

"नही चन्द्रा ! आचार्य औदुम्बरायण को सामान्य व्यक्ति मत समझो। उनके कथन में मैंने सदा ही विराट् भविष्य का चित्र देखा है।"

"तभी उन्होंने तुम्हें बनवास दे दिया है !"

"बनवास उन्होंने नहीं, महामात्य पुलिकसेन ने दिया है। वैसे, देश के लिए बनवास तो क्या मैं नरक-वास करने को भी प्रस्तुत हूं।"

"जाओ न नरक में। मैं भी पीछे-पीछे पहुंच जाऊंगी।"

"फिर तो नरक भी स्वर्ग हो जायेगा। मैं यही तो कहने आया था कि आज संध्याकाल यहां से जा रहा हूं।"

"कहां ?"

"नरक में !"

"मैं भी चलूंगी !"

"न-न-न ! फिर तो वह स्वर्ग हो जायेगा। तुम्हें अपने पुत्र के साथ यहीं रहना है।"

"मैं यहां अकेली नहीं रह सकती !"

"अकेली कौन कहता है रहने को ! यहां मेरे सहस्रों बंधु है। और वरुणदत्त से तो मैं तुम्हें मिला ही चूका हूं। वह मेरे लिए अनुज से भी बढ़कर है। समझो कि सीता को लक्ष्मण मिल गया।"

"और यदि रावण आ गया तो ?"

"लंका जलकर राख हो जायेगी !"

दोनों इस बात पर हंसने लगे। बालक बिम्बिसार ने सोचा कि निश्चय ही हंसने की कोई बात हुई है। इसलिए, वह भी हंसने लगा।

छोटी-सी कुटिया में आनंद की लहर दौड़ गयी।

ऋषिगिरि पर्वत पर, मंदिर के बाहर, आज कई रथ एवं अश्व खड़े थे। लगता था जैसे बहुत-से सामंत और नागरिक कृष्ण वासुदेव के दर्शन करने आये हों। किंतु, मंदिर में तो भगवान् की मूर्ति के अतिरिक्त कोई नहीं था। फिर, रथ एवं अश्व पर आनेवाले किधर गये ? कहीं गर्भ-गृह में तो नहीं हैं ? तब तो अवश्य ही चिंता की कोई गंभीर बात होगी। और यह स्वाभाविक भी था। राजा रिपुंजय की घोषणा से संपूर्ण गिरिव्रज नगर दहल उठा था। लोगों की याद में ऐसा कोई राजा नहीं हुआ, जिसने इस प्रकार की घोषणा की हो और सम्मानित सामंतों को इस तरह का दंड दिया हो।

वास्तव में, मंदिर के गर्भ-गृह में दस-बारह व्यक्ति आचार्यपाद नारायण स्वामी के समक्ष चिंता-ग्रस्त बैठे थे। उनके मुख-मंडल पर क्रोध, चिंता एवं भय का भाव गहनतम हो रहा था। गर्भ-गृह के सन्नाटे को भंग करता हुआ एक व्यक्ति बोल उठा—

"आप आदेश दें आचार्यपाद ! अब स्थिति असह्य हो रही है। परंपरा का उत्स ही सूख जाय तो हम उसमें प्रवाह कहां से ला सकते हैं ! परंपरा और देश के नाम पर यह राजा अनाचार, अन्याय और अधर्म का साम्राज्य स्थापित करना चाहता है।"

"तुम सत्य ही कहते हो आयुष्मान् ! धर्म एवं न्याय की स्थापना, परंपरा एवं मर्यादा की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। किंतु, मगध में ऐसे कितने व्यक्ति हैं जो तुम्हारे कार्यक्रम से सहमत होंगे ?" आचार्यपाद नारायण स्वामी ने प्रश्न किया। उक्त व्यक्ति क्रोधावेष्टित हो गर्जन कर उठा—

"कोई हो या न हो, हम प्रस्तुत हैं।"

आचार्य नारायण स्वामी ने विश्लेषणात्मक दृष्टि से उक्त व्यक्ति को क्षण-भर देखते रहने के बाद कहा—

"क्रोध-जनित निर्णय उद्देश्य को ही भ्रष्ट कर देता है वत्स ! तुम जिसकी मर्यादा एवं न्याय के लिए चिंतित हो उसी की उपेक्षा भी कर रहे हो। स्थिर-चित्त होकर, प्रवाह के प्रतिकूल संतरण करने की चिंता करो। वासुदेव कृष्ण तुम्हारे सहायक होंगे।"

"तो आप आदेश देते हैं ?"—दूसरे व्यक्ति ने पूछा।

"मैं कौन होता हूं आदेश देनेवाला ! कृष्ण वासुदेव की इच्छा सर्वोपरि है। उनकी इच्छा होने पर ही तुम लोगों में विवेक का दीप प्रज्वलित होगा।"

"तो क्या हम अपनी आंखों के समक्ष दो निरपराध जीवित सामंतों को शिकारी श्वानों से नुचते हुए देखते रहें ?"—तीसरे व्यक्ति ने प्रश्न किया।

"नहीं ! इसका प्रतिकार करना होगा।"—आचार्य ने कहा। तीसरे व्यक्ति ने पूछा—

"किस प्रकार ?"

"क्रोध का त्याग करके। यह काम परमार्थ का है। क्रोध मे स्वार्थ की गंध आती है।"—आचार्य ने उत्तर दिया। पहले व्यक्ति ने किंचित् उद्धत स्वर मे कहा—

"आपकी बात हमारी समझ में ही नहीं आती आचार्य !"

"तभी तो कहता हूं कि जब तक समझ नहीं आये, चुप बैठे रहो। क्रोध से तुम अंधे हो रहे हो। ऐसी दशा में, संभव है, तुम अपना ही अहित कर डालो।"

मेरा अहित हो जाय तो हो जाय। किंतु, उन सामंतों को अवश्य ही मुक्त कराना चाहिए। आप आदेश दें।"—उस व्यक्ति ने कहा।

आचार्य नारायण स्वामी ने पूछा—

"मान लो मैंने आदेश दे दिया। फिर क्या होगा ? राज-शक्ति के समक्ष तुम तिनके की तरह बह जाओगे।"

"कैसे बह जाऊंगा आचार्य ! प्रजा इस समाचार को सुनकर क्षुब्ध हो रही है। राज-शक्ति के सूत्रधार अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल आपके समक्ष बैठे हैं। फिर मैं कैसे बह जाऊंगा।"

"इसका अर्थ हुआ कि तुम जो कुछ कह रहे हो उसमे तुम्हारा कुछ नहीं है। प्रजा के क्षुब्ध होने से तुम क्षुब्ध हो, ज्योतिपाल के सेनाध्यक्ष होने से तुम पराक्रमी हो। आयुष्मान् ! जब तक प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति पर विश्वास न कर ले, राज्य-क्राति सफल नहीं हो सकती। यह मत भूलो कि ज्योतिपाल यहां व्यक्ति के रूप में विराजमान हैं—अश्व सेना-ध्यक्ष के रूप में नहीं। अन्यथा तुम भी इस क्षण बंदी-गृह मे होते। राजा के पक्ष में ज्योतिपाल सेनाध्यक्ष है, तुम्हारे या प्रजा के पक्ष में ज्योतिपाल मात्र एक व्यक्ति है। दूसरे को स्वत्व प्रदान करनेवाला पहले अपना स्वत्व त्याग देता है।"

"तो क्या आदेश है ?"

"जाकर विश्राम करो और स्थिर चित्त से समय की प्रतीक्षा करो। अपना संपूर्ण स्वत्व त्यागने का प्रयत्न करो।"

गर्भ-गृह में एकत्र सभी व्यक्ति आचार्य नारायण स्वामी की बात सुन कर निराश हो गये। एक-एक करके सभी व्यक्ति उठकर जाने लगे। उनके चले जाने के बाद भी ज्योतिपाल चुपचाप गर्भ-गृह में बैठे रहे। आचार्य-पाद ने ज्योतिपाल की ओर विश्वासपूर्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा—

"तुम्हारी क्या इच्छा है आयुष्मान् ?"

ज्योतिपाल ने विनीत स्वर में निवेदन किया—

"सब आपकी आज्ञा पर निर्भर करता है आचार्य ! आप तो जानते हैं कि वसुमित्रा मेरी वाग्दत्ता है। क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। एक ओर राज-भक्ति है तो दूसरी ओर मेरा प्रेम, क्षत्रिय कुल की मर्यादा।"

"कृष्ण वासुदेव तुम पर कहां तक विश्वास कर सकते हैं ?"

"मृत्यु-पर्यंत आचार्य !"

"सर्वोपरि कौन है ?—देश या राजा ?"

"निश्चय ही देश सर्वोपरि है।"

"साधु आयुष्मान् ! जितना शीघ्र हो सके, वैद्यप्रवर शैवलिक की सेवा में जाकर अपने-आपको मेरी ओर से निवेदित करो।"

"जैसी आज्ञा आचार्य ! अभी जाता हूं।"—ज्योतिपाल आचार्यपाद के समक्ष प्रणिपात करके गर्भ-गृह से बाहर हो गया।



गिरिव्रज नगर की अट्टालिकाओं के स्वर्ण-शिखरों पर सांध्यकाल की विषादपूर्ण कालिमा उतर आयी थी। संपूर्ण नगर आतंक से आक्रांत होकर कराहता-सा लग रहा था। श्रेष्ठि चत्वरों, राज-पथ, सुवीथियों, वीथी-पथों पर जनरव का गुंजन एवं उल्लासपूर्ण हास की जगह मृत्यु एवं निस्तब्धता का संगीत संतरित हो रहा था। राज-घोषणा के आघात से अकाल-पीड़ित नागरिक जन का रहा-सहा प्राण सूख चुका था।

चहल-पहल थी तो मात्र चन्दमित्र के एकशालिक में जहां देवतास्वरूप राजवैद्य शैवलिक व्याघ्रचर्म पर विराजमान थे। नागरिक जन आते, कुछ दर्शनार्थ—कुछ रोग के उपचार के लिए। आते, दर्शन करते या ओषधि ग्रहण करते और एक-एक कर चले जाते।

उसी समय ज्योतिपाल उद्यान में प्रविष्ट हुआ। उसे देखते ही सैनिकों ने सैनिक रीति से उसका अभिवादन किया। अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल सीधे एकशालिक के द्वार तक बेरोक-टोक जा पहुंचा।

एकशालिक में प्रविष्ट होते ही शैवलिक ने दृष्टि उठाकर उन्हें आपाद-मस्तक देखा—जैसे उन्हीं की प्रतीक्षा में हों या जैसे उनकी सामर्थ्य तोल रहे हों। शैवलिक की तीक्ष्ण दृष्टि एवं प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व देखते ही ज्योतिपाल अनायास झुक गया।

"कहो अश्वसेनाध्यक्ष, किसलिए कष्ट किया ?"

"आचार्यपाद नारायण स्वामी की आज्ञा से आपके दर्शनार्थ उपस्थित

हुआ हूं।"

"तुम्हारे संकेत पर कितने सैनिक अपने प्राण उत्सर्ग कर सकते हैं ?"

"चालीस सहस्र !"

"और यदि राजाज्ञा के विरुद्ध शस्त्र उठाना हो ?"

"पच्चीस सहस्र !"

"निश्चित ?"

"जी हां !"

"महामात्य पुलिकसेन के साथ तुम्हारे संबंध कैसे हैं ?"

"विश्वासपूर्ण।"

"तुम्हारा उन पर कितना विश्वास है ?"

"जितना मुझे अपने-आप पर।"

"उत्तम।"—कहकर शैवलिक विचार में डूब गये। ज्योतिपाल चुपचाप बैठे शैवलिक के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने का विफल प्रयत्न करते रहे। अचानक, शैवलिक रसायन की दो कुप्पियां तथा ओषधि की दो पुड़ियां ज्योतिपाल की ओर बढ़ाते हुए बोले—

"तुम्हारे लिए कारागार के द्वार तो खुले ही होंगे ?"

"जी हां आचार्य !" ज्योतिपाल ने दोनों ओषधि ग्रहण करते हुए उत्तर दिया।

"क्या तुम सशस्त्र योद्धाओं के साथ वहां जाकर उन दोनों बंदियों को बंधनमुक्त कर सकते हो ?"

"आपके आदेश की प्रतीक्षा है आचार्य !"

"सुंदर, बहुत सुंदर। किंतु, नहीं। अभी शक्ति का अपव्यय श्रेयस्कर नहीं होगा। दोनों बंदी एक-एक पुड़िया ओषधि खा लें और इस कुप्पी का रसायन अपने शरीर में सब जगह लगा लें। रसायन लगाने के पूर्व तुम्हें एक कठिन कार्य करना होगा। बंदियों के हाथ-पैर की बेड़ियां काट डालनी होंगी। इसके पश्चात् उन्हें कारागार से बाहर निकालकर किसी गुप्त स्थान में भेज देना होगा।

"जैसी आज्ञा आचार्य !"

"कारागार में किस समय जाओगे ?"

"रात्रि का तीसरा प्रहर उपयुक्त रहेगा आचार्य।"

"ठीक। किंतु, कुछ विश्वसनीय योद्धाओं के साथ जाना जो कारागार के प्रहरियों का स्थान ले सकें। वहां के प्रहरियों का स्थानांतरण करके ही बंदियों को मुक्त करना हितकर होगा। और कारागार तक पहुंचते ही तुम्हें पर्याप्त कारण मिल जायेगा, जिसके आधार पर उन प्रहरियों का स्थानांतरण करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अब तुम जा सकते हो। आंखें खोलकर जाना क्योंकि एकशालिक के चारों ओर राजा एवं महामात्य के गुप्तचर घूमते रहते है। कदाचित् उन्हें मुझ पर संदेह है।"

"आप निश्चिंत रहें।"

परम भट्टारक अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल अगदंकार शैवलिक की अभ्यर्थना करके एकशालिक से बाहर निकला। उद्यान के द्वार तक उसे कोई दृष्टिगोचर नही हुआ। आचार्य शैवलिक के संकेत पर वह सावधान हो गया था। किंतु, बाहर आशंका का कोई कारण न देख वह आश्वस्त होकर राज-पथ की ओर अग्रसर होना ही चाहता था कि पीछे से आकर महामात्य पुलिकसेन ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। अश्व सेनाध्यक्ष ज्योतिपाल चौंक उठा था। महामात्य के साथ महाराज रिपुंजय का एक विश्वासपात्र विदूषक भी था।

"क्यों सेनाध्यक्ष ज्योतिपाल! आप इस तरह चौंक कर क्यों देख रहे हैं?"

ज्योतिपाल क्षण-भर में संभल गया। बोला—

"आपको यहां देखकर। सोचा, कदाचित् आप भी अस्वस्थ हैं।"

"नहीं सेनापति! मैं तो राजकार्य से इस मार्ग से होकर जा रहा था कि आपको एकशालिक से निकलते देखकर आपके पास आ पहुंचा। सोचा, निश्चय ही आप या आपके घर में कोई अस्वस्थ है। अन्यथा, किसी वैद्य के चक्कर में पड़ने की आपको आवश्यकता ही क्या थी। वह भी इस रहस्यपूर्ण विचित्र वैद्य के चक्कर में जो ओषधि से अधिक राजनीति का ज्ञान रखता है। क्यों? ठीक कहता हूं कि नही?"

अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल क्षण-भर महामात्य को देखता रहा। ज्योतिपाल अभी युवक था। किंतु, उसकी बुद्धि अति प्रखर थी। कुछ

सोचकर उसने महामात्य की बातों का प्रतिवाद नहीं किया। मात्र हंसकर चुप रह गया। महामात्य ने सूचनात्मक ढंग से कहा—

"बड़ा ही प्रभावशाली व्यक्तित्व है इस वैद्य का! त्रिकालदर्शी जैसा बोलता है। मैं तो इससे मिलकर चकित रह गया।"

"जी हां! आप सत्य ही कहते हैं।"—ज्योतिपाल ने बात समाप्त करने के विचार से सहमति प्रकट की। महामात्य मन-ही-मन चौक उठे। उनके मन की आशंका विश्वास में बदलती जा रही थी। जिस सूचना के आधार पर वे वहां आये थे वह सूचना भी अपने-आप में अस्पष्ट एवं रहस्यमय थी। वे स्वयं नही जानते थे कि ज्योतिपाल के साथ उन्हें किस तरह का व्यवहार करना है। किसी निश्चय पर पहुंच पाने के लिए उन्होंने ज्योतिपाल के महल तक जाने का विचार किया। अतएव, उन्होने ज्योतिपाल से पूछा—

"क्या आप अपना अश्व नहीं लाये?"

"उस वृक्ष के नीचे खड़ा है।"

"किसके लिए ओषधि लिये जा रहे हैं?"

"मेरी पत्नी को अतिसार हो गया है।" ज्योतिपाल ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। महामात्य बोले—

"फिर आपने राजवैद्य को क्यों नहीं बुलवाया? मै अभी राजवैद्य को लेकर आपके यहां आता हूं।"

"नहीं-नहीं, कष्ट मत कीजिए! इन ओषधियों के सेवन से ही ठीक हो जाना चाहिए। आजकल संपूर्ण गिरिव्रज के रोग-शोक का निराकरण आचार्य शैवलिक की ओषधि से ही हो रहा है।"

महामात्य क्षण-भर चिंतित मुद्रा में खड़े रहे, फिर बोले—

"जैसी आपकी इच्छा! किंतु, कल ओषधि के परिणाम की सूचना अवश्य दीजिएगा। मैं चिंतित रहूंगा।"

"अवश्य!"

"अच्छी बात है। फिर मैं चलता हूं।"

महामात्य और विदूषक अपने रथ की ओर बढ़ गये। सेनाध्यक्ष ज्योतिपाल कुछ चिंतित हो उठा। अश्व पर आरूढ़ होकर जब वह राज-

मार्ग पर मुड़ने को हुआ, तभी उसने देखा कि महामात्य का रथ द्रुत गति से चला आ रहा था। किंतु, विदूषक अभी तक उद्यान-द्वार पर खड़ा प्रहरियों से बातें कर रहा था। यह देखकर उसका माथा ठनका। ज्योतिपाल कायर या डरपोक नहीं था। अपने योद्धाओं को लेकर वह बलपूर्वक बंदियों का उद्धार कर सकता था। किंतु, आचार्य का आदेश कुछ और था। वह चिंतित हुआ क्योंकि कुछ विघ्न उपस्थित होने पर दोनों सामंतों के प्राण संकट में पड़ जाते और विफलता का अपयश हाथ लगता सो अलग।

इन्हीं बातों को सोचता हुआ वह अपने भवन में पहुंचा। उसने अपने परम विश्वासी सहायक गौल्मिक भद्रसेन को बुलाकर कुछ अत्यावश्यक आदेश दिया।

भद्रसेन चौबीस वर्ष का बलिष्ठ, कुशल एवं शस्त्रास्त्र में निपुण तरुण था। कुछ आवश्यक कार्यों का दायित्व उस पर डालकर ज्योतिपाल आश्वस्त हो तीसरे प्रहर की प्रतीक्षा करने लगा।

रात्रि का दूसरा प्रहर आरंभ होते ही महामात्य पुलिकसेन के प्रासाद में एक व्यक्ति प्रविष्ट हुआ। उस व्यक्ति ने अपने शरीर को काले वस्त्रों से ढंक रखा था। यहां तक कि उसकी आंखें भी सिर की पगड़ी से आधी ढकी हुई थी। द्वार के प्रहरियों ने उसे रोका। उस व्यक्ति ने वस्त्र के भीतर से हाथ निकाल कर कोई वस्तु, जो कदाचित् मुद्रिका थी, प्रहरियों की आंखों के समक्ष रख दी। प्रहरी एक ओर हट गया। वह विचित्र व्यक्ति प्रासाद में प्रविष्ट हो गया और कुछ काल बाद ही प्रासाद से बाहर निकल कर चन्दमित्र के एकशालिक की ओर चला गया।

विचित्र व्यक्ति के प्रस्थान करते ही महामात्य के प्रासाद के अजिर पर परिचारिक ने अश्व लाकर प्रस्तुत कर दिया। महामात्य अपने प्रासाद से निकलकर अश्व पर आरूढ़ हो महाराज के धवल-गृह की ओर द्रुतगति से उड़ चले।

रात्रि का दूसरा प्रहर व्यतीत हो रहा था। कारागार के प्रहर बैठे-बैठे

ऊंघने लगे थे कि बाहर कुछ दूर से एक स्त्री के चीखने-चिल्लाने का स्वर सुनकर चौंक उठे। बाहर काला घुप्प अंधकार था। स्त्री का स्वर तीव्र होता गया—

"अरे कोई बचाओ ! हाय ! इन पिशाचों से रक्षा करो।"

"चार-पांच प्रहरी उल्काएं एवं शल्य लेकर घटना-स्थल की ओर दौड़े। तब तक लम्पट भाग चुके थे। एक स्त्री पृथ्वी पर अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थी। उसके वस्त्र कई जगह से फट गये थे। वह स्त्री प्रहरियों को देख कर आश्वस्त हुई और पृथ्वी का सहारा लेकर उठी। प्रहरीगण उसका रूप देखकर बेसुध हो गये। वह स्त्री हांफती हुई बोली—

"यदि आप लोग समय पर नहीं आते तो आज मैं जीवित नही बचती। क्या पीने के लिए थोड़ा जल मिलेगा ?"

"हां-हां, क्यों नहीं ?"—कई प्रहरी एकसाथ बोल उठे।

"किंचित्, मुझे सहारा दीजिए कि मैं चल सकूं। हाय ! चांडालों ने मुझे मार ही डाला था।"—स्त्री ने सहारे के लिए हाथ बढ़ाया तो सभी प्रहरी निकट आ गये। कारागार तक पहुंचते-पहुंचते जब उन्हें मालूम हुआ कि स्त्री नगर की एक रूपाजीवा है तब तो उनके मुंह में पानी भर आया। रूपाजीवा भी वहां जमकर बैठ गयी। जल के स्थान पर मैरेय सुरा आ गयी। नृत्य आरंभ हो गया। प्रहरीगण बेसुध होकर नाचने-गाने लगे।

ठीक उसी समय अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल वहां आ पहुंचा। वहां की स्थिति देखकर आचार्य शैवलिक की योजना के समक्ष वह मन-ही-मन नतमस्तक हो उठा। उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब उसने सुविख्यात गणिका कुवलया को वहां साधारण रूपाजीवा के रूप में अभिनय करते देखा। आचार्य शैवलिक की शक्ति का प्रभावशाली प्रमाण उसे मिल गया। किंतु, मन के भाव मन में ही दबा कर वह प्रहरियों पर बरस पड़ा—

"यही है तुम लोगों के कर्त्तव्य पालन का ढंग ? सैनिको ! इन प्रहरियों को बंदी बनाकर इसी कारागार मे डाल दो।"

तुरंत आदेश का पालन किया गया। तभी कुवलया बोली—

"क्या अब मैं जा सकती हूं ?"

"मैं आपको कैसे आदेश दूं देवी। किंतु, आप अकेली किस प्रकार···।"

"मैं अकेली नहीं हूं। कुछ दूर पर मेरा रथ प्रस्तुत है।"

"जैसी आपकी इच्छा !"

कुवलया चली गयी। और तब सहायकों के साथ ज्योतिपाल कारागृह में जा पहुंचा। दोनों बंदी सामंत सेनाध्यक्ष ज्योतिपाल को देख कर चौंक उठे। उन लोगों ने सोचा कि मृत्यु की घड़ी आ पहुंची। किंतु, ज्योतिपाल की सहानुभूतिपूर्ण आंखें देख कर उन्हें विस्मय हुआ। ज्योतिपाल ने अपने योद्धाओं को आज्ञा दी—

"बेड़ियां काट डालो।"

दोनों योद्धा बेड़ियां काटने में जुट गये। बंदी सामंत किंकर्त्तव्यविमूढ़ से देखते रहे और बेडियां कटकर अलग हो गयीं।

"यह ओषधि खा लो। शीघ्रता करो।"—ज्योतिपाल ने दोनों को एक-एक पुड़िया देते हुए कहा।

"यह क्या है ?"—एक सामंत ने जिज्ञासा प्रकट की।

"यह तो मैं स्वयं भी नही जानता। किंतु है तुम्हारे लिए कल्याणकारी।"—ज्योतिपाल ने कहा। दोनों सामंतों ने ओषधि खा ली। ज्योतिपाल ने दोनों को एक-एक कुप्पी देते हुए कहा—

"इस कुप्पी का रसायन समस्त शरीर—मुंह, नाक, सिर आदि में लगा लो।"

सामंतों ने शीघ्र ही ज्योतिपाल के स्नेहपूर्ण आदेश का पालन किया। ज्योतिपाल आश्वस्त होकर बोला—

"अब तुम्हें कोई नहीं मार सकता। तुम्हारी मुक्ति में अब···

"कोई बाधा नहीं है। क्यों ?" एक कर्कश स्वर कारागृह में गूंज उठा। अश्वसेनाध्यक्ष ज्योतिपाल परिचित स्वर सुनकर चौंक उठा। सिर घुमा कर देखा—सामने, अंगरक्षकों के साथ, स्वयं महाराज परम भट्टारक परमेश्वर बार्हद्रथ वंश कुलावतंस रिपुंजय देव खड़े थे। ज्योतिपाल कुछ भी नही बोल सका। वह सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। उसके मस्तिष्क में महामात्य और विदूषक चक्कर काट गये। महाराज ने गर्जना की—

"बंदियों को मुक्त करना चाहते थे ? उनकी बेड़ियां काट डालीं ?

वादन किया। अश्वारोही अश्व पर चढ़ा हुआ उद्यान के भीतर एकशालिक तक जा पहुंचा और अश्व से उतर कर बिना किसी शिष्टाचार के एक-शालिक के द्वार पर पहुंच गया। भीतर से आदेश आया—

"चले आओ महामात्य !"

महामात्य पुलिकसेन प्रकोष्ठ में पहुंचते ही शैवलिक का अभिवान करके उल्लासपूर्वक बोल उठे—

"आपके आदेश का पालन हो गया। ज्योतिपाल को स्वयं महाराज ने सेनापति के पद से च्युत कर दिया।"

"साधु महामात्य ! तुम्हारा साध्य तुम्हारे द्वार तक पहुंच गया।"

"वैद्यप्रवर ! एक बात मेरी समझ में नहीं आयी।"

"कौन-सी बात ?"

"ज्योतिपाल तो मेरे मित्र हैं। उन्हें आपने मुझसे भिन्न क्यों कर दिया ?"

"यह सीधी बात भी तुम्हारी बुद्धि में नहीं आती, तो तुम साम्राज्य की उलझनें किस प्रकार सुलझाओगे ? राजनीति में मित्रता नाम की कोई वस्तु नहीं होती। ज्योतिपाल योद्धा है, प्रेमी है, क्षत्रिय है। उसके पास शक्ति एवं सामर्थ्य है। आवश्यकता इस बात की है कि वह राजा के प्रति असह्य घृणा, प्रतिशोध एवं विद्रोह-भाव से उन्मत्त हो जाय। इसी में तुम्हारा कल्याण है महामात्य ! वह तुमसे भिन्न नहीं अभिन्न होता जा रहा है।"

"उसे तो महाराज ने देश-निष्कासन का दंड दिया है।"

"सुंदर ! ये क्षत्रिय नाग सदृश हैं। जब तक इन्हें खरोंचा नहीं जायेगा, इन्हें चोट नहीं पहुंचायी जायेगी, ये जागृत नहीं होंगे। चोट खाया हुआ सर्प साक्षात् काल होता है।"

"मैं अपनी भूल के लिए क्षमा चाहता हूं आचार्य ! अब क्या आज्ञा है ?"

"कल, बंदी सामंतों को मुक्त करने के लिए हलका-सा विद्रोह होगा। उस विद्रोह का दमन नहीं होना चाहिए। कल ही राजाज्ञा प्राप्त कर, अनार्य कुल के किसी अनजान योद्धा को अश्वसेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त

कर दो। क्षत्रिय कुल राजद्रोह की भावना से उद्वेलित हो उठेगा।"

"ऐसा ही होगा आचार्य।"

"अब तुम जा सकते हो।"

"किंतु, दोनों बंदी सामंत तो अब किसी भी प्रकार नहीं बच सकेंगे।"

"यह तुम्हारा भ्रम है महामात्य! मृत्यु उनका स्पर्श भी नही कर पायेगी।"

यह बात सुनकर महामात्य पुलिकसेन कौतूहल से भर उठे। उसी दशा में वे वहां से चले गये। महामात्य के चले जाने के पश्चात् आचार्य शैवलिक ने प्रकोष्ठ के द्वार बंद कर दिये और पक्षद्वार से दूसरे प्रकोष्ठ में पहुंचकर वहां रखी हुई भारी पर्यंकिका को खींचकर हटा दिया। तत्क्षण वहां एक सुरंग दीख पड़ी। आचार्य शैवलिक उसमें उतर गये। एकशालिक जनहीन हो गया, किंतु, यह बात कोई जान भी नहीं पाया।

विख्यात गणिका कुवलया को पाठक भूले नहीं होंगे। कुवलया की विशाल अट्टालिका चन्दमित्र के उद्यान से लगभग सात रज्जु दूर थी। ब्राह्म मुहूर्त में अभी विलंब था। कुवलया के भवन से एक विचित्र व्यक्ति निकला और द्रुत गति से राज-पथ पर अग्रसर हुआ। राज-पथ जन-शून्य हो रहा था। अतएव, उस विचित्र व्यक्ति को छिपकर चलने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

विचित्र व्यक्ति सीधे ज्योतिपाल के भवन में जाकर रुका। द्वार पर कोई नहीं था। वह व्यक्ति सीधे मुखशाला में जा पहुंचा। वहां कोने में पड़ी छोटी-सी काष्ठ-पर्यंकिका पर एक योद्धा बैठा था। आगंतुक को देखकर वह चौंक उठा। निस्संदेह, उस बेला में वह विचित्र व्यक्ति वहां अपेक्षित नहीं था। योद्धा कुछ पूछना ही चाहता था कि विचित्र व्यक्ति का प्रश्न आदेश जैसा गूंज उठा—

"ज्योतिपाल कहां है?"

"आपका परिचय?"—योद्धा ने प्रश्न किया।

तुरंत उत्तर मिला—"ज्योतिपाल का पथ-प्रदर्शक!"

योद्धा को यह उत्तर उत्तेजक लगा, किंतु, उस व्यक्ति का विचित्र

व्यक्तित्व देखकर उसने कहा—

"किंचित् प्रतीक्षा कीजिए। मै उन्हें सूचना दे आऊं।"

"शीघ्रता करो सैनिक ! मेरे पास समय नही है।"

योद्धा घबराकर भीतर भागा।

विचित्र व्यक्ति को अधिक देर तक विलंब नहीं करना पड़ा। परम वीर ज्योतिपाल ने योद्धा के मुंह से ज्यों ही संदेश सुना, वह भागा-भागा मुखशाला में आ पहुंचा। वहां आगंतुक को देखते ही वह उत्साह से चीख-सा पड़ा—

"आचार्य ! आप ?"

"हां आयुष्मान् ! मेरा आना आवश्यक हो गया।"

"मैं अपराधी हूं आचार्य ! अपने दायित्व का निर्वाह करने मे चूक गया। मेरी भूल के चलते ही सामंतों को भयावह मृत्यु का आलिंगन करना होगा।"

"तुम्हारा आचार्य इतनी मंद-बुद्धि का व्यक्ति नहीं है। दोनों सामंत जीवित रहेंगे। किंतु, तुम्हें किंचित् साहस करना होगा।"

"मैं अपने प्राण की बलि देने को भी प्रस्तुत हूं।"

"उसकी अभी आश्यकता नहीं है। कल, मृत्यु-स्थल पर छद्म-वेश में कुछ योद्धाओं के साथ उपस्थित रहो। वहां प्रचारित कर दो कि सामंतो को भगवान् कृष्ण का वरदान प्राप्त है। उसके पश्चात् कुछ चमत्कार होगा, जिससे स्वभावतः नागरिक उत्तेजित होंगे। बस, उत्तेजनापूर्ण वातावरण से लाभ उठाकर उन बंदियों को मुक्त कराकर ले भागो।"

"इसमें साहस की क्या आवश्यकता है आचार्य ? इसे तो मैं बहुत सुगमता से···

"नहीं ! सुगम नहीं है। राजा एवं महामात्य सावधान हैं। तुम मात्र शूर हो। किंतु जो शूर-वीर हैं वे समय पड़ने पर बुद्धि से ही कार्य संपन्न कर लेते हैं। इस समय तुम्हें इस प्रकार काम करना होगा कि तुम पर या तुम्हारे किसी योद्धा पर संदेह न हो। जहां तक संभव हो रक्तपात को भी रोकना होगा।"

"जैसी आज्ञा !"

"अब तुम्हारा विश्वास महामात्य पर कितना बच रहा है ?"

"मुझे अपनी अदूरदर्शिता एवं भ्रम के लिए पश्चात्ताप है आचार्य।"

"नहीं ! मुझे तुम्हारी उदारता पर प्रसन्नता है। अब मैं चलता हूं। कल संध्या-काल मुझसे मिलो।"

इसके पश्चात् आचार्य शैवलिक, जिस राह से आये थे, उसी तरफ से एकशालिक में पहुंच गये।

नगर की श्मशान भूमि में, प्रातःकाल होते ही सैकड़ों नागरिक एकत्र होने लगे। सबके-सब रोषावेष्टित थे। सबके मन में प्रतिहिंसा की आग धधक रही थी। परवशता ने सबमें कुंठा भर दी थी। राजा की शक्ति के समक्ष वे लाचार थे। अभी बंदी सामंत नहीं पहुंचे थे। लोगों ने देखा कि कुछ लोग एक वैष्णव ज्योतिषि को घेरकर खड़े हैं और अपना-अपना भविष्यफल पूछ रहे हैं। ज्योतिषी बड़े ही आत्मविश्वास से प्रश्नों का उत्तर देता जा रहा था।

धीरे-धीरे वहां काफी भीड़ एकत्र हो गयी। लोग जिनके दुर्भाग्य का समापन देखने आये थे, उन्हें ही भूल गये। सच ही कहा है कि भीड़ में मनोरंजन का भाव प्रमुख होता है, कर्त्तव्य का भाव जैसा।

एक व्यक्ति, जो भीड़ में इधर-उधर चक्कर काट रहा था, ज्योतिषी के पास पहुंचकर ऊंचे स्वर में बोला—

"ज्योतिषी जी ! क्या आप हस्त-रेखाएं ही देखते है या भविष्यवाणी भी कर सकते हैं ?"

"अवश्य कर सकता हूं। प्राच्य या उदीच्य प्रदेश में मुझसे बड़ा ज्योतिष विद्या का ज्ञाता कोई नहीं है। समझ क्या लिया है तुमने ? मैं प्राग ज्योतिष का सुविख्यात ज्योतिषी हूं। किरातराज का राजपुरोहित।"

"अच्छा तो बताइए कि आज यहां क्या होनेवाला है ?"

"रिपुंजय की सामर्थ्य का पतन।" ज्योतिषी ने गंभीर वाणी में आंखें लाल-लाल करके कहा—

"आज भगवान् कृष्ण स्वयं इस क्षेत्र में पधारेंगे और मगधराज रिपुजय के अहंकार का दमन करेंगे।"

"अच्छा तो बंदी सामंतों का क्या होगा ?" उस व्यक्ति ने पूछा।

ज्योतिषी ने तुरंत डपट कर उत्तर दिया—

"तू महामूर्ख है। इतना स्पष्ट कथन भी नहीं समझ पाया ? अरे मागध ! उन सामंतों का कुछ नहीं बिगड़ेगा। शिकारी श्वान उन सामंतों को देखते ही भाग खड़े होंगे।"

नागरिक जन ज्योतिषी की बात सुनकर एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। ज्योतिषी वहां एकत्र लोगों पर तीक्ष्ण दृष्टि फेंकता हुआ पुनः बोला—

"किंतु, आज कृष्ण अपने भक्तों की भी परीक्षा लेंगे। राजा अपनी शक्ति के मद में अंधा हो रहा है। प्रजा का धर्म है। राजा को सन्मार्ग पर लाये।" ज्योतिषी ने बात पूरी ही की थी कि एक नागरिक चिल्ला उठा—

"वह देखो—सैनिकों से घिरे हुए बंदी सामंत चले आ रहे हैं।"

नागरिकों की भीड़ सैनिकों की ओर बढ़ चली। अश्वारोहियों ने बड़ी कठिनाई से उन्हें नियंत्रित किया।

दो गड्ढे खोदकर तैयार किये गये थे। सामंतों को उन गड्ढों में जीवित उतार दिया गया और वक्षस्थल तक मिट्टी डाल दी गयी। चार पालतू शिकारी कुत्तों को चार दास बलपूर्वक पकड़े हुए थे। उन कुत्तों के जबड़े और आंखें इतनी भयावह थीं कि देखकर ही प्राण सूख जाते थे।

नायक ने श्वान-पालकों को आदेश दिया। ज्योतिषी की भविष्यवाणी तब तक वहां फैल चुकी थी। लोग भगवान् कृष्ण का चमत्कार देखने को सांस रोके खड़े थे। कुत्ते छलांग मारते हुए सामंतों की ओर झपटे। तभी चमत्कार हुआ। सामंतों से चौबीस-पच्चीस अंगुल इधर ही कुत्ते अचानक रुक गये, जैसे किसी ने बलपूर्वक उन्हें पीछे खीच लिया हो। एक कुत्ता अपने को नहीं रोक सका और एक सामंत के कंधे तक पहुंच गया। उस सामंत के कंधे से कुत्ते का जबड़ा छू गया और वह कायं-कायं करता उलटता-पलटता पीछे भागा और एक रज्जु दूर जाकर तड़प-तड़पकर मर गया। शेष तीनों कुत्ते वहां से भाग खड़े हुए।

क्षण-भर के लिए लोग सन्नाटे में आ गये। ज्योतिषी की बात सच निकली। एकत्र जन-समूह भगवान् कृष्ण का जय-जयकार कर उठा। राज-

सैनिक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। भगवान् कृष्ण का जय-जयकार करते हुए बहुत-से लोग सामंतों को मुक्त कराने के लिए दौड़े। सैनिक खड़े देखते रहे और दोनों सामंत गड्ढे से निकलकर भीड़ में खो गये।



गिरिव्रज नगर में प्रत्येक स्थान पर भगवान् कृष्ण के चमत्कार की कथा चल रही थी। नागरिकों की दशा विचित्र हो रही थी। सामंतों के पलायन से महाराज रिपुंजय अत्यंत क्रुद्ध हो उठे थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि क्षत्रियों ने ही षड्यंत रचकर सामंत मणिभद्र एवं सामंत विशाख को मुक्त कराया है। निदान, उन्होंने घोषणा करके समस्त उच्च पदों से क्षत्रियों को च्युत कर दिया और उनके स्थान पर अनार्यकुल के व्यक्तियों को प्रतिष्ठित किया। प्रत्येक गृह में, प्रत्येक भवन में यहां तक कि प्रत्येक सुरागृह में इसी बात की चर्चा थी। महाराज की निरंकुशता से नागरिकों का हृदय क्रंदन कर रहा था। वसुमित्रा के बलात् हरण की घोषणा नागरिकों को सर्पदंश की तरह बेसुध किये जा रही थी। क्षत्रिय कुलावतंस चन्दमित्र समस्त नागरिकों के श्रद्धेय थे। वृद्धावस्था में उनकी प्रतिष्ठा को धूल में मिलते देखकर, गिरिव्रज शोकातुर हो उठा था। अबोध वसुमित्रा के दुर्भाग्य की कल्पनामात्र से नागरिक जन सिहर उठते थे। गिरिव्रज में भीतर-भीतर राज्य-क्रांति का ज्वालामुखी सुलग रहा था। ऊपर-ऊपर से विषाद, क्षोभ, सहानुभूति एवं करुणा का धूमिल आच्छादनक गिरिव्रज के वातावरण को दबोचे हुए था।

रात्रि का पहला प्रहर व्यतीत हो रहा था। सामंत चन्द्रमित्र की विशाल अट्टालिका गहनतम विषाद के अंधकार में सिसकियां भर रही थी। जहां कभी रात्रि-भर हंसी गूजती रहती थी, नृत्य-गीत-वादित्र से वातावरण मुखरित रहता था, राज-कथा, चोर-कथा, युद्ध-कथा आदि का आनंद लेते हुए अनेक सामंत एवं नागरिक 'वाह ! वाह !!' के स्वर उच्चरित कर जीवन-रस प्रवाहित करते रहते थे, जहां रास-लीला होती रहती या जल-पान का उत्सव चलता रहता था—आज वहां शून्यता, निस्तब्धता एवं करुणा का अमुखर संगीत संतरण कर रहा था।

आज चन्द्रमित्र का भवन साक्षात् शव का साकार रूप धारण किये था। रात्रि का प्रथम प्रहर महारात्रि का तीसरा प्रहर जैसा लग रहा था। चन्द्रमित्र अपने शयनकक्ष में अर्धमूर्छित से पड़े थे।

परम रूपवती षोडशी वसुमित्रा अपने प्रकोष्ठ में गवाक्ष के पास खड़ी, नगर में उठनेवाले कोलाहल से परे कहीं दूर, शून्य में देख रही थी। यह शून्यता उसके समक्ष दृश्य में ही नहीं थी—दृष्टि में भी व्याप्त थी—जीवन में भी समाहित थी। न जाने कितनी देर से वह इसी प्रकार वहां खड़ी थी कि नीचे अचानक कुछ खटका हुआ। भीत हरिणी-सी अभागी चौंक उठी। उसने झांक कर नीचे देखा तो उसके प्राण सूख गये। एक व्यक्ति, अट्टालिका के प्राचीर के सहारे चढ़ता हुआ, गवाक्ष के पास पहुंच चुका था। वसुमित्रा की कल्पना का राक्षस-रिपुंजय उसके समक्ष साकार हो उठा। वह वहीं मूर्च्छित होकर लुढ़क गयी।

चेतना लौटने पर उसने अपने-आपको, अपने ही प्रकोष्ठ में, पर्यंक पर पाया। वहीं पास में एक तरुण बैठा था। वसुमित्रा ने उसे पहचानने का प्रयत्न किया—

"कौन···कौन हो तु···म ?"

"मैं हूं वासवी ! मैं···ज्योतिपाल !" ज्योतिपाल ने वसुमित्रा के कौशेय में उंगलियां फेरते हुए कहा। वसुमित्रा की काल्पनिक आशंका जैसे फिर भी दूर नहीं हुई। बोली—

"वह कहां गया ?"

"कौन ?"

"वही···राक्षस रिपुंजय ! जो गवाक्ष के पास प्राचीर से चढ़कर ऊपर···

"अरी पगली ! वह तो मैं ही था।" ज्योतिपाल ने हंसते हुए कहा। वसुमित्रा उठकर बैठ गयी और ज्योतिपाल को ,एकटक निहारने लगी। उसकी बड़ी-बड़ी भोली आंखों में अश्रु छलछला आये। बोली—

"जानते हो मैं क्यों जीवित थी ? एक बार तुम्हें देख लेने की आशा से। अब मैं शांतिपूर्वक मर सकूंगी।"

ज्योतिपाल ने वसुमित्रा के अश्रु पोंछते हुए कहा—

"तुम नहीं मरोगी वासवी ! तुम्हें जीवित रहना है।"

"जीवित रहूं ? क्यों ?···अपना जीवन शव की भांति ढोने के लिए ? अपने पिता को चिंता की चिता पर चढ़ते देखने के लिए ?···कुल परपरा को स्वाहा कर उसकी राख से शृंगार करने के लिए ?"

"नहीं वासवी ! तुम्हें जीवित रहना है मुझे जीवन देने के लिए··· पिता के गौरव को उज्ज्वल करने के लिए···मगध के कलंक-भार को हल्का करने के लिए।"

"ऐसा नहीं हो सकेगा मेरे प्राण ! रिपुंजय के क्रूर पंजों में पड़कर अपना स्वत्व खोने की अपेक्षा प्राण का मोह त्याग देना अधिक सुगम है। इसलिए, ऐसा नहीं हो सकेगा। तुम्हारी वासवी अभागी है।"

"ऐसा मत कहो ! तुम्हारे सौभाग्य से मगध का भाग्य खुलने वाला है। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं। अभी तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

"कहां ?"

"आचार्य शैवलिक की सेवा में।"

"वे क्या कर लेंगे ?"

"यह वहीं चलने पर मालूम होगा। बस, इतना विश्वास करो कि आचार्य शैवलिक साधारण वैद्य नहीं, विराट् पुरुष हैं। चलो, शीघ्र प्रस्तुत हो जाओ।"

कुछ काल बाद ही गवाक्षसे एक रज्जु लटकी जिसके सहारे दो छाया-मूर्तियां नीचे उद्यान में उतर गयीं और इधर-उधर देखकर राज-पथ की

ओर चल पड़ीं।

कुछ दूर चलकर दोनों, राज-पथ से वीथी में चले आये। एक छाया-मूर्ति ने दूसरी से कहा—

"हम लोग विख्यात गणिका परम सुंदरी देवी कुवलया के भवन के पास पहुंच गये। इधर इस वीथी-पथ से चली आओ।"

"कुवलया गणिका? यहां क्यों ले आये?"—दूसरी छायामूर्ति ने घृणा के स्वर में कहा। पहली छायामूर्ति ने दूसरी के मुंह पर हाथ धर दिया—

"छिः-छिः, ऐसा भाव कभी मत लाना। कुवलया गणिका नहीं देवी है—परम विदुषी। शेष बातें बाद में स्वतः मालूम हो जायेंगी।"

दोनों के सोपान चढ़कर ऊपर के प्रकोष्ठ में पहुंचते ही कुवलया ने स्वागत किया—

"आओ बहन! अपने कुख्यात गृह में विख्यात कुलीन वसुमित्ना का मैं स्वागत करती हूं। आचार्यपाद ऊपर के प्रकोष्ठ में प्रतीक्षा कर रहे हैं!"

वसुमित्ना संकोच से सिकुड़ गयी! कुवलया का रूप, उसका व्यवहार एवं उसके मुखमंडल की आभा देखकर वसुमित्ना को लगा जैसे सचमुच ही वह किसी देवी की शरण में पहुंच गयी है।

"बैठ जाओ!" प्रकोष्ठ में पहुंचते ही आदेश हुआ। मंत्र-प्रेरित-सी वसुमित्ना बैठ गयी। सामने उच्चासन पर विराजमान आचार्य शैवलिक के व्यक्तित्व को देखते ही वसुमित्ना को अखंड संरक्षण का विश्वास हो गया। आचार्य शैवलिक के मुखमंडल पर अथ-इति, सृजन-विश्वास एवं विद्या-व्यवहार का समन्वित प्रकाश-पुंज स्थिर था। वसुमित्ना का मस्तक अनायास ही नत हो गया। पुनः गंभीर स्वर में सुनायी पड़ा—

"तुम अपने पिता से दिन में कितनी बार मिलती हो?"

"आजकल तो उनके दर्शन तक नहीं होते। पिताश्री दुःखातिरेक से बहुधा अपने प्रकोष्ठ में ही बंद रहते हैं।"

"बहुत सुंदर! और तुम्हारी मां तो हैं ही नहीं! अच्छा परिचारिकाओं की क्या व्यवस्था है?"

"राजा रिपुंजय सैनिकों के साथ मेरा बलात् हरण करने आयेगा, मार-काट मचेगी, ऐसा सोचकर परिचारिकाएं भाग गयीं। दो-तीन दासियां हैं!"

"दासियां नागरिक जीवन से संबद्ध नहीं हैं। अतएव उनकी हमें चिंता नहीं। अब तुम अभय होकर विश्राम करो। आर्या कुवलया तुम्हारी व्यवस्था कर देगी!"

आचार्य का आदेश मिलने पर वहां से तीनों जन उठकर चले आये।

रात्रि के चौथे प्रहर के आरंभ में क्षत्रिय कुलावतंस चन्द्रमित्र के भवन में रज्जु के सहारे मात्र एक क्षीण छायामूर्ति ऊपर गवाक्ष की ओर द्रुत गति से चढ़ी जा रही थी। रज्जु पकड़कर वह मूर्ति, इस प्रकार चढ़ी चली जा रही थी जैसे इस कार्य में पूर्णतया अभ्यस्त हो, कुशल हो! गवाक्ष के पास पहुंचकर वह एक ही छलांग में प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हो गयी। उसने अपनी देह पर पड़ा आच्छादनक उतार दिया। वह सुंदर भुवनमोहिनी थी। पलंग पर इस प्रकार सोने का उपक्रम करने लगी, जैसे वह उसी का घर हो।



चम्पारण्य से एक सार्थवाह निकला जो मगध महाजनपद की दक्षिणी सीमा की ओर पश्चिम को चला। सार्थवाह के दायें-बायें, आगे-पीछे, कुछ सशस्त्र अश्वारोही चल रहे थे। रात्रि का अंधकार गहन होता जा

रहा था किंतु सार्थवाह के स्वामी ने कहीं पड़ाव डालना उचित नहीं समझा। सार्थवाह के साथ चलनेवाले अश्वारोही सतर्क होकर चारों ओर देखते हुए चल रहे थे।

चम्पारण्य लगभग बीस योजन पीछे छूट गया। सार्थवाह को लगातार चलते-चलते दो दिन दो रातें बीत चुकी थीं। अंग-मगध की सीमा से दो योजन पश्चिम दक्षिण आकर सार्थवाह रुक गया। शकटों से बैल खोल दिये गये। भोज-भात की व्यवस्था होने लगी।

सार्थवाह की राह से बायें हटकर, कुछ दूर पर, दो अश्वारोही छिप कर चल रहे थे। स्पष्ट ही, वे अश्वारोही किसी घात में थे। कारण, सार्थवाह से वे अपनी दूरी चौथाई योजन से कुछ ही कम रखते थे, किंतु उनकी गति सार्थवाह की गति के साथ घटती-बढ़ती रहती थी। दोनों अश्वारोही भय, उत्साह, आशंका एवं सफलता के मिश्रित भाव से उद्वेलित हो रहे थे। सार्थवाह ने जब अपना पड़ाव डाल दिया तब उन अश्वारोहियों ने आपस में कुछ विचार-विमर्श किया और अपने अश्वों को मोड़कर चम्पारण्य की ओर छोड़ दिया। अश्व तीव्रतम गति से उड़ चले।

दोनों अश्वारोही लगातार आठ योजन तक अपने अश्व दौड़ाते रहे। अश्व पसीने से लथपथ हो गये, थककर चूर हो गये। सूर्योदय हो चुका था। सामने एक छोटी-सी नदी देखकर दोनों अश्वारोही रुक गये। सर्वप्रथम उन्होंने अश्वों की सेवा-सुश्रूषा की, उन्हें दाना-पानी दिया।

उन लोगों के पास पाथेय था। क्षुधा तृप्त कर दोनों एक विशाल जामुन के वृक्ष के नीचे लेटकर विश्राम करने लगे। दोनों ही सैनिक दीखते थे। वे लोग दिन-भर विश्राम करते रहे। संध्याकाल होने पर एक ने पूछा—"अब ?"

दूसरे ने उत्तर दिया—

"अब क्या ? पांच सौ ग्राम की सामंती क्या हंसी-खेल है ?"

पहले ने कहा—

"किंतु, प्राण देकर भी क्या हम इस बीहड़ वन-प्रदेश में सफल हो सकते हैं ? कृण दस्यु चला गया तो क्या हुआ ? उसका मुसचंद चेला तो यहां है।"

दूसरे ने प्रत्युत्तर दिया—

"उसके रहने-न रहने से कोई अंतर नहीं पड़ता। वह स्त्री तो अपने पुत्र के साथ अकेली ही उस कुटीर में रहती है। हमें अब पीछे नहीं लौटना है। कृष्ण दस्यु इतनी दूर पहुंच गया है कि अब उसके लौटने की कोई आशंका नहीं है।"

पहले ने जिज्ञासा प्रकट की—

"किंतु, यह कृष्णदस्यु सार्थवाह का स्वामी बनकर पश्चिम की ओर किधर जा रहा है?"

दूसरे ने उत्तर दिया—

"तुम भी मूर्ख ही रह गये। अरे वह महाराज ब्रह्मदत्त से डरता है। हम लोग महाराज को यह सूचना देकर भी कुछ न कुछ प्राप्त कर ही लेंगे। चलो, अब अंधकार उतरने लगा। लंबी राह तय करनी है।"

दोनों अश्व पर आरूढ़ होकर वन-प्रदेश की ओर चल पड़े। प्रायः डेढ़ प्रहर तक दुरूह वन-प्रांत में चलते रहने के पश्चात् वे रुक गये। अश्वों को उन्होंने एक विशाल घने लता-मंडप सरीखे झयी की ओट में छिपा दिया।

कुछ दूर पर एक कुटिया दृष्टिगोचर हो रही थी। कुटिया से दीप का मद्धिम प्रकाश भयावह वन-प्रांत में फैल रहा था। कुटिया के बाहर एक अश्व मचल रहा था। दोनों अश्वारोही कुछ देर तक इधर-उधर की आहट लेने के बाद कुटिया की ओर सतर्कतापूर्वक बढ़े। कुटिया के बिल्कुल पास पहुंचकर उन्होंने सुना, कोई कह रहा था—

"देवी विश्राम करें। मैं जाकर शीघ्र ही प्रहरियों की व्यवस्था करता हूं।" दोनों अश्वारोहियों ने देखा—शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित एक बलिष्ठ तरुण कुटिया से निकलकर अश्व पर चढ़ा और तीव्र गति से उत्तर की ओर चला गया।

एक ने कहा—

"यही अवसर है। विलंब होने से प्रहरी आ जायेंगे। फिर तो हमारा सारा श्रम व्यर्थ चला जायेगा। अतएव, सावधान।"

दोनों बिल्ली की तरह उछलकर कुटिया के द्वार पर जा पहुंचे। द्वार खुला हुआ था। भीतर चन्द्रबाला दीप के प्रकाश में कोई ग्रंथ पढ़ रही

थी। संपुटिका पर खुला हुआ ग्रंथ रखा हुआ था और चन्द्रबाला पढ़ने में तल्लीन थी। अचानक दोनों अश्वारोहियों ने उसे दबोच लिया। चन्द्रबाला वीरांगना थी। क्षण-भर में ही वह अपनी स्थिति समझ गयी। अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर उसने दोनों आक्रमणकारियों को झटका देना चाहा कि तभी उसके सिर पर किसी ठोस वस्तु से प्रहार हुआ और वह मूर्च्छित हो गयी। उसके हाथ-मुंह बांध दिये गये। बालक बिम्बिसार भी जग पड़ा था। वह खट्वा पर खड़ा होकर, गंभीर कौतूहल से दोनों दुष्टों का कार्य-कलाप और अपनी मां की वीरता देख रहा था कि तभी एक अश्वारोही ने झपटकर उसका मुंह भी बांध दिया।

सारी घटना पल-भर में घटित हो गयी। दोनों अश्वारोही बंदियों को लेकर पूर्व दिशा की ओर भागे। बुढ़िया निस्पंद-सी चुपचाप खड़ी देखती रही—वन-प्रदेश के बड़े-बड़े वृक्ष, लता-गुल्म, अपनी लाचारीवश अंधकार में मुंह छिपाये मौन बने रहे।

उधर हेमजित अपने सार्थवाह के साथ दूसरे पड़ाव पर विश्राम कर रहा था।



अवन्ति महाजनपद मे कोहराम मच गया। दस्युओं के उत्पात से नागरिक जीवन अस्त-व्यस्त हो उठा। श्रेष्ठियों की दशा तो अत्यधिक शोचनीय हो गयी। कुछ ही दिनों में सैकड़ों कर्मचारी, सैनिक एवं प्रहरी मार डाले गये, कई बार राजकोष लूट लिया गया, श्रेष्ठियों को वैभव-

मुक्त कर दिया गया और पण्य-पथों पर, असुरक्षा के कारण, व्यापार का प्रवाह अवरुद्ध हो गया।

लोग त्राहि-त्राहि कर उठे। युवराज कुमारसेन राज्याधिकारियों की अकर्मण्यता पर खीझ उठे। उन्होंने सेना-नायक रोहिण को बुलाकर कहा—

"धिक्कार है तुम्हारे नायकत्व को कि मुट्ठी-भर दस्यु संपूर्ण सत्ता को चेतावनी देते फिर रहे हैं।"

सेनानायक रोहिण ने विनीत स्वर में कहा—

"युवराजपाद। मेरी धृष्टता क्षमा करें? हमारा सैन्यबल तो मगध की सीमा पर बैठा हुआ है। मैं करूं तो क्या करूं?"

युवराज ने क्रुद्ध होकर पूछा—

"हमारे पास अभी यहां कितने सैनिक हैं?"

"मात्र दस हजार पदाति, तीन हजार अश्वारोही, एक हजार रथ-सेना तथा पांच सौ हस्ति-सेना।"

"तो क्या दस्युयों का प्रतिरोध करने के लिए इतने सैनिक पर्याप्त नहीं हैं?"

"जी नहीं। इनमें से एक चौथाई सैनिक अवकाश पर हैं और गुप्त-चर से विदित हुआ है कि दस्युयों की संख्या अपार है।"

"दस्युयों की संख्या अपार है?" युवराज ने चौंककर प्रश्न किया। पुनः अपने-आप ही उत्तर भी दे डाला—"तो क्या हुआ? हम उन्हें पीस डालेंगे। आप गिरिव्रज में पिताश्री के पास सूचना भेजिए। बलाधिकृत स्वस्तिसेन समस्त सैन्यबल के साथ शीघ्र अवन्ति आ जायें। तब तक मैं भवानी की साधना करूंगा—शिव की उपासना करूंगा। फिर देखूंगा कि ये दस्यु नर्मदा की घाटी में कहां जाकर छिपते हैं। आज ही संदेश भेज दीजिए।"

"जो आज्ञा।" कहकर सेनानायक रोहिण युवराज की अभिवंदना करके चला गया। युवराज आकुल-व्याकुल होकर मुखशाला में चक्कर काटने लगे।



नर्मदा की घाटी का विंध्य-क्षेत्र, अपनी अगम्यता, भयंकरता एवं अजेयता के लिए प्रसिद्ध था। किंतु, उस क्षेत्र में किसी की पैठ होना असंभव था। किंतु, उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति से जो परिचित हो जाय उसकी सुरक्षा के लिए वह क्षेत्र वरदान था।

अभी रात्रि का प्रथम प्रहर आरंभ ही हुआ था। भट्टिय हेमजित पर्वत कंदरा में एक शिलाखंड पर विश्राम कर रहा था और सामने जलती हुई उल्का का निष्कंप प्रकाश निर्निमेष दृष्टि से देख रहा था। उसके मानस-पटल पर एक-एक कर कई चित्र बन-विगड़ रहे थे। प्रत्येक चित्र पर चन्द्रबाला की छाया पड़ती और वह उस छाया को मिटाना चाहता कि तभी बालक बिम्बिसार की तोतली वाणी सुनायी पड़ने लगती। भट्टिय उस छाया को मिटाने की चिंता त्याग देता। कभी-कभी सामने जलती हुई उल्का में से श्रवण का हंसता-मुस्कराता हुआ मुखमंडल उदित हो उठता। भट्टिय वेदना की तीव्रता से आंखें बंद कर लेता। फिर आंखें अपने-आप खुल जातीं। यही क्रम चल रहा था कि कंदरा के बाहर पदचाप सुनायी पड़ी। उसने सिर घुमाकर देखा—उसका सहायक पुनर्वसु भागता हुआ चला आ रहा था। भट्टिय ने उठकर बैठते हुए प्रश्न किया—

"क्या है मित्र ?"

"चम्पारण्य से वरुणदत्त का संदेशवाहक आया है।"

"उसे यहां ले आओ।"

कुछ क्षण पश्चात् ही वरुणदत्त के संदेशवाहक ने आकर भट्टिय की अभ्यर्थना की और कहा—

"अनर्थ हो गया आर्य !"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

"देवी चन्द्रबाला और बिम्बिसार अपनी कुटिया में नहीं हैं।"

"अपनी कुटिया में नहीं हैं ? कहते क्या हो संदेशवाहक ?"

भट्टिय चिंतातुर होकर उठ खड़ा हुआ। संदेशवाहक ने निवेदन किया—

"सत्य ही कहता हूं श्रीमान्। आर्य वरुणदत्त ने संपूर्ण वन-प्रदेश छान मारा। किंतु, उन दोनों का कहीं चिह्न तक नहीं मिला।"

"पुनर्वसु।" भट्टिय चीख उठा—"अभी प्रस्थान की योजना बनायी जाय। हम लोग चम्पारण्य चलेंगे। शीघ्रता करो।"

"किंतु, आचार्य की आज्ञा का क्या होगा ?" पुनर्वसु ने विनीत होकर पूछा।

भट्टिय आवेश से उबल पड़ा—

"कुछ सीमा तक मुझे भी निर्णय करने का अधिकार है पुनर्वसु ! मेरी आज्ञा का पालन किया जाय।"

सिर झुकाकर पुनर्वसु कंदरा के बाहर चला गया। भट्टिय आकुल-व्याकुल होकर कंदरा में चक्कर काटता जाता और संदेशवाहक से विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछता जाता।

भट्टिय के दस्यु सैनिक प्रस्थान की तैयारी में जुट गये। अस्त्र-शस्त्र, भोजन-सामग्री, आदि समेटी जाने लगी। सभी सैनिक आकस्मिक निर्णय से चकित थे। किंतु, किसी ने भट्टिय से कोई प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं समझी। कारण, सबके-सब भट्टिय के अंधभक्त थे।

भट्टिय ने पुनर्वसु को आदेश देकर संतोष नहीं किया। वह स्वयं कंदरा से बाहर आकर प्रयाण के प्रबंध का निरीक्षण करने लगा। आध प्रहर में ही तैयारी पूरी हो गयी। भट्टिय अश्व पर आरूढ़ होकर चलने ही वाला था कि दूर से कोई व्यक्ति अश्व पर चढ़ा आता दीख पड़ा। भट्टिय उस अश्वारोही की प्रतीक्षा में वहीं ठहर गया। अश्वारोही के पास आ

पहुंचने पर हेमजित ने पूछा—"क्या बात है ? कौन हो तुम ?"

"आचार्य औदुम्बरायण का संदेशवाहक हूं आर्य।"

"आचार्य की क्या आज्ञा है ?"

"उनका आदेश है कि नर्मदा की घाटी ही आपका कार्य क्षेत्र बनी रहेगी।"

"···किंतु मेरे लिए तुरंत चम्पारण्य पहुंचना बहुत आवश्यक है।"

"आचार्य का कथन है कि आपके अवन्ति छोड़ने का परिणाम होगा मगध का विनाश और उसके साथ ही आपके संकल्पों की अंतिम क्रिया।"

"कुछ भी हो संदेशवाहक ! मुझे चम्पारण्य जाना ही पड़ेगा। आचार्य से कह देना कि चन्द्रबाला और कुमार बिम्बिसार···"

"चम्पारण्य की कुटिया में नहीं हैं।"—संदेशवाहक ने वाक्य पूरा कर दिया।

भट्टिय अवाक् होकर संदेशवाहक का मुंह देखने लगा। संदेशवाहक अपनी बात जारी रखी—आचार्य को इसकी सूचना मिल चुकी है। उन्होंने कहा कि सुमंगली चन्द्रबाला एवं चिरंजीव बिम्बिसार की चिंता भट्टिय न करें। उनका पता लगाने का दायित्व भट्टिय का नहीं है। भट्टिय अपने दायित्व का निर्वाह करते रहें, इसी में चिरंजीव बिम्बिसार सुमंगली चन्द्रबाला एवं संपूर्ण मगध का कल्याण है।"

भट्टिय हेमजित चकित, विस्मित, व्यथित रह गया। आचार्य औदुम्बरायण के अद्भुत संपर्क-सूत्र को अनुभर कर वह आश्वस्त तो हो गया, किंतु, चन्द्रबाला और बिम्बिसार को सुरक्षित देखने की इच्छा बेचैनी में बदल गयी। पुनर्वसु को प्रस्थान यात्रा स्थगित करने का आदेश देकर वह पुनः कंदरा मे चला गया। आचार्य औदुम्बरायण का सदेश-वाहक भी उसके पीछे-पीछे कंदरा में जा पहुंचा। भट्टिय के शिलाखंड पर बैठ जाने के पश्चात् सदेशवाहक ने कहा—"एक महत्वपूर्ण संदेश शेष रह गया है।"

"वह भी सुना दो।"—भट्टिय ने किंचित् क्षुब्ध स्वर में कहा।

संदेशवाहक क्षण-भर चुप रहकर बोला—

"आपका पहला संकल्प अब शीघ्र संपन्न होनेवाला है।"

"तात्पर्य ?"

"शीघ्र ही मगध का सिंहासन महामात्य पुलिकसेन के आधिपत्य में आ जायेगा।"

"यह तुम क्या ज्योतिषियों-जैसी बातें कर रहे हो ? रिपंजय का क्या होगा ?"

रिपुंजय आचार्य औदुम्बरायण की शिष्या घोषा का प्रेमपात्र बनकर बिखर जायेंगे। इसमें आचार्य और घोषा का सीधा हाथ तो होगा, लेकिन नाम कलंकित होगा महामात्य पुलिकसेन का ! आचार्य औदुम्बरायण, आजकल गिरिव्रज में—अगदंकार शैवलिक के नाम से प्रख्यात हैं। महामात्य पुलिकसेन ने इनका शिष्यत्व स्वीकार किया है। दूसरा संदेश यह है कि मगध की सीमा पर पहाड़ियों में एकत्र अवन्ति सेना माहिष्मती के लिए कूच कर चुकी है, जिससे कि यहां दस्युयों के उत्पात को रोका जा सके। आचार्य के आदेशानुसार मैं उसी राह से आ रहा हूं जिस राह से अवन्ति की सेना चली आ रही है। आचार्य की दी हुई ओषधि मैंने राह में पड़ने वाले कूपों, पुष्करिणियों आदि में डाल दी है। विंध्य पर्वत माला की उपत्यका में पहुंचते-पहुंचते, ओषधि के प्रभाव से, अवन्ति की आधी से भी अधिक सेना समाप्त हो जायेगी। शेष में से जितना हो सके विंध्य पर्वत-श्रेणी में विश्राम करे—"ऐसी व्यवस्था आपको करनी है।"

"यह तो हो जायेगा। किंतु, महामात्य पुलिकसेन को इतना अधिक प्रश्रय देने की क्या आवश्यकता है ?"

"इसका रहस्य तो आचार्य ही जानते हैं।"

"अच्छी बात है संदेशवाहक ! तुम जाकर विश्राम करो !"

"मुझे तो अनुमति मिले। समय पर आचार्य को यह सूचना मिलनी ही चाहिए कि आप यथास्थान सन्नद्ध हैं।"

संदेशवाहक अभिवादन करके चला गया। भट्टिय हेमजित कंदरा में अकेला रह गया। भाग्यचक्र की कुटिल चाल पर वह विक्षुब्ध हो उठा था। तक्षशिला से स्नातक होकर मनोवांछित पत्नी श्रवणा के साथ न जाने कितनी सुगढ़ कल्पननाएं लेकर गिरिव्रज लौटा था। श्रवणा के साथ ही वे सब आकांक्षाएं एवं कल्पनाएं स्वाहा हो गयीं।···चम्पारण्य के बीहड़

वन-प्रदेश में भाग्यचक्र ने फिर अपना खेल दिखाया। चन्द्रबाला अकस्मात् ही उसके जीवन में प्रवेश कर गयी। पुत्र की साध भी पूरी हो गयी। और आज कहीं कुछ नहीं शेष बचा। अब जीवन राजनीति-चक्र का स्पंदन रहित यंत्र बनकर रह गया है। कोई नहीं, कोई स्वप्न नहीं, कोई अनुराग नही।…हेमजित सोचता रहा :

'यह सब क्यों हुआ ?…किसके लिए हुआ ? लाचारीवश मैं जो कुछ बन गया हूं वही मेरा धर्म है। मेरा मन भी वैसा ही हो जाय।…आदेश ही का पालन करना है तो अपनी समग्रता के साथ क्यों न करूं?…"

हेमजित सोचता-सोचता विक्षिप्त-सा हो उठा। प्रतिशोध की ज्वाला रक्त में घुल-मिल कर प्रवाहित हो उठी। पौरुष की भट्ठी में विवेक जल गया। भाग्यचक्र के आघात से उसकी भावनाएं विघटित हो गयीं। अकस्मात् ही वह चीख उठा—पुनर्वसु !"



अवन्ति का चतुरंजिनी सेना काशी एवं कौशाम्बी के दक्षिण होकर शुक्तिमती नदी की ओर चलीं। चेदी महाजनपद की सीमा से दूर-दूर अपना अभियान-पथ रखने में ही बलाधिकृत स्वस्तिसेन ने कल्याण देखा।

पहले दिन की अभियान यात्रा तो बहुत ही उत्तम रही। घर लौटने के उत्साह में सैनिक प्रसन्नता से उन्मत्त हो उठे। राह में ग्रामीणों को लूटते-पाटते, छोटी-छोटी बस्तियों को उजाड़ते-जलाते, हरे-भरे खेतों को रौंदते-मसलते एक दिन में प्राय: नौ योजना दूर जा पहुंचे। पर्वतीय क्षेत्र

में सरिता के तट पर पड़ाव डाल दिया गया। रथों से अश्व खोल दिये गये तथा शकटों से बैल। हथनियों, ऊंटों, गदहों एवं अश्वों को दाना-पानी का प्रबंध करने वालों दासों के कोलाहल से वातावरण फटने लगा।

मैरेय पी-पी कर सैनिक बेसुरे स्वर में आलाप करने लगे। नायकों, गौल्मिकों आदि उच्चाधिकारियों के पट-मंडपों एवं पट-कुटियों से द्यूत-क्रीड़ा एवं जयगान का उल्लास उठने लगा। प्रातःकाल होते ही पटक, नांदीक, गुंजा आदि वाद्यों का घोष गूंज उठा। चहल-पहल आरंभ हो गयी। निषादियों ने हाथी कसना आरंभ किया। भाग-दौड़ मच गयी। किंतु, स निकों का उत्साह मंद पड़ गया था। सैन्यदल आगे बढ़ा। सूर्य का प्रकाश सिर पर पड़ते न पड़ते सैन्यदल में खलबली मच गयी। बहुत से सैनिक पेट में भयंकर पीड़ा का अनुभव करने लगे। मध्याह्न होते-होते पड़ाव डाल दिया गया। तब तक सैकड़ों सैनिक चल-फिर सकने में असमर्थ हो चुके थे। वैद्य लोग उपचार में जुट गये। यह क्रम कुछ दिनों तक बना रहा। अधिकतर सैनिक विभिन्न रोगों से ग्रसित होते गये ? वैद्यों को समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

सातवें दिन अवन्ति-सेना शुक्तिमती नदी के किनारे जा पहुंची। बलाधिकृत स्वस्तिसेन अत्यधिक चिंतित हो उठे थे। सात दिन के भीतर महामारी के प्रकोप से सहस्रों सैनिक काल-कलवित हो चुके। वैद्यगण विस्मित थे। उनकी बुद्धि में रोग का निदान तो दूर रोग की पहचान तक नहीं हो पा रही थी। सैनिक पटापट मर रहे थे। रास्ते से, पांच अश्वारोही महामात्य पुलिकसेन को सेना की दैन्य स्थिति की सूचना देने गिरिव्रज लौट गये थे। किंतु, किसी को मालूम नहीं हो सका कि वे गिरिव्रज पहुंचे भी या नहीं।

विंध्य पर्वत श्रेणी की अगम्य उपत्यका आरंभ हो गयी थी। दुर्बल सैनिकों को लेकर अग्रसर होना दुःसाध्य कार्य था। किंतु, दूसरा मार्ग भी नहीं था। रुग्ण सैनिकों को जलमार्ग से आगे भेज दिया गया। शेष सैनिक स्थलमार्ग से अग्रसर हुए। नर्मदा की घाटी आरंभ हो गयी थी। बलाधिकृत स्वस्तिसेन जानते थे कि दस्युयों का प्रमुख केंद्र नर्मदा की घाटी ही हैं। अतएव, रात-भर स्कंधावार की रक्षा में सहस्रों सैनिक सन्नद्ध रहे। कोई

दुखद घटना नहीं घटी। मार्ग इतना दुर्गम था कि सेना बहुत कठिनाई से दिन-भर में एक योजन चल पाती।

विंध्य की उपत्यका एवं नर्मदा की घाटी में चलते-चलते कई दिन व्यतीत हो गये। इस बीच दस्युओं का कहीं चिह्न तक नहीं दिखाई दिया। स्वस्तिसेन ने सोचा कि सेना के आगमन की सूचना पाते ही दस्यु भाग खड़े हुए होंगे और इस अनुमान के आधार पर वे निश्चित हो गये। नदी के जल का प्रयोग करते रहने के कारण मरने वालों की संख्या घटने लगी। सैनिक पुनः आश्वस्त एवं उत्साहित हो उठे।

रात ढलने लगी थी। स्कंधावार के सभी सैनिक निद्रा देवी की गोद में लेटे अपने-अपने परिवारों के स्वप्न देख रहे थे। स्कंधावार के पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर में पर्वत-मालाएं खड़ी थीं और दक्षिण में नर्मदा का भीषण जल-प्रवाह !

अचानक बड़े-बड़े शिलाखंड अग्नि-कंदुक पहाड़ियों पर से लुढ़क-लुढ़क कर स्कंधावार को क्षत-विक्षत करने लगे। सैनिकों की नींद टूट गयी। किंतु, तब तक काल ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था। प्रलय-काल का दृश्य उपस्थित हो गया। परिवस्त्राओं, वितानकों, कांडपट-मंडपों एवं पट-कुटियों से आग की लपटें उठने लगीं। शिलाखंडो की मार से सैनिक त्राहि-त्राहि करने लगे। भाग-दौड़ में बहुत से लोगों ने एक दूसरे को कुचल कर मार डाला। जिसका जिधर सींग समाया, वह उधर ही भाग निकला। तभी अचानक बाणों की वर्षा ने भागनेवालों एवं अर्द्धमृत सैनिकों की कपाल-क्रिया कर दी।

अनुपात से एक दस्यु ने पचास सैनिकों को मारा। संपूर्ण स्कंधावार नर्मदा की घाटी में जलकर खप गया। कुछ ही लोग प्राण बचा कर भाग सके। सैकड़ों सैनिक बंदी बना लिये गये।

सूर्योदय होने पर सभी बंदियों को एक पंक्ति में खड़ा किया गया। स्वयं भट्टिय हेमजित उनके भाग्य का निर्णय करने के लिए उपस्थित हुआ। पुनर्वसु उसके पीछे खड़ा था। हेमजित ने बंदी सैनिकों की लंबी पंक्ति देखकर कहा—

"पुनर्वसु ! सुना, अवन्ति के महाबलाधिकृत स्वस्तिसेन भी इन

निरीह बंदियों के बीच उपस्थित हैं।"

"ठीक ही सुना है श्रीमान् !"

"तो पहले उन्हें ही उपस्थित करो !"

आदेश का पालन किया गया। स्वस्तिसेन को दो दस्युओं ने पकड़ कर हेमजित के समक्ष ला खड़ा किया। हेमजित उन्हें निरीक्षणात्मक ढंग से देखता हुआ बोला—

"मुझे दुख है सेनापति स्वस्तिसेन, कि स्वामी के पाप का फल सेवक को भोगना पड़ रहा है।"

स्वस्तिसेन कौतूहल से दस्युराज हेमजित को देखते रहे। उनकी समझ में हेमजित की बात मात्र रहस्य उत्पन्न करके रह गयी। हेमजित उनके मन के भाव को पढ़ता हुआ-सा बोला—

"आप सोच रहे हैं कि मैं दस्यु होकर यह कैसी बात कर रहा हूं ! और इधर मैं सोच रहा हूं कि आप एक सभ्य देश के बलाधिकृत होकर यह कैसा आचरण प्रदर्शित कर रहे हैं। भाग्य और इतिहास की गति देखिए सेनापति कि हम दोनों के कर्म एक ही जैसे हैं। किंतु, आप योद्धा, पराक्रमी, देशप्रेमी, नेता आदि के नाम से सुविख्यात हैं और मैं दस्यु के कुनाम से।"

स्वस्तिसेन की समझ में बात कुछ-कुछ आने लगी। बोले—

"आप असहाय प्रजा को लूटने और उनकी सुख-शांति छीनने का निंदनीय कार्य अपनाकर दस्यु ही कहलायेंगे, देश-प्रेमी नहीं।"

"और आप अवन्ति के सेनाध्यक्ष होकर गिरिव्रज के बाहर क्या किसी यज्ञ के आयोजन के उद्देश्य से पड़ाव डाले पड़े थे ?—या आखेट के लिए या समज्या के आयोजन के उद्देश्य से ?"

"यह तो राजनीति की बातें हैं !"

"नगर को लूटना, स्वाधीन देश को अपने अधीन कर लेना, देश को अधीन करने के लिए प्रजा को विनाश के कगार तक पहुंचा देना, शांत-सुखी देश की शस्यश्यामला भूमि को रक्त-रंजित कर देना, स्त्री पर बलात्कार करना और जिस देश में आप महामात्य पद पर आसीन हों उसी देश की आर्थिक, सामाजिक दशा को रसातल में ले जाकर वहां की

संस्कृति को फूंकताप लेना यदि राजनीति की बातें हैं, तो ऐसी बातें बनाने वालों को जीवित जला देना मनुष्य मात्र का प्रथम कर्त्तव्य है। और मैं उसी कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूं।"

बलाधिकृत स्वस्तिसेन किकर्त्तव्य विमूढ़ होर हेमजित की बातें सुनते रहे। हेमजित का मुखमंडल सात्विक क्रोध से प्रदीप्त हो उठा था। क्षण-भर चुप रह कर वह फिर बोला—

"राजा जब अपने निजी स्वार्थ की सिद्धि में ही प्रजा का हित देखने लगता है, सत्यवादियों की उपेक्षा करके चापलूसों को प्रश्रय देता है, नागरिकों की प्रतिष्ठा एवं प्रगति की चिंता न करके अधिकारियों के अहं को तुष्ट करने लगता है और निष्ठावान सेवकों को त्यागकर धूर्तो का आधिपत्य स्वीकार कर लेता है—तभी राजा अपने पद से च्युत हो जाता है, तभी राज्य में क्रांति का बीज अंकुरित होने लगता है। और क्रांति का अर्थ है—आमूल परिवर्तन।क्राति का अर्थ रंग परिवर्तन, जाति परिवर्तन या आकार परिवर्तन नही होता। इसका अर्थ होता है आधार परिवर्तन, भाव परिवर्तन ! समझे सेनापति स्वस्तिसेन ! मगध का राजा अपने पद से च्युत हो गया है किंतु, महामात्य पुलिकसेन तो रिपुंजय से भी कही अधिक पातकी है। वह राजनीतिज्ञ नहीं, स्वार्थी, पद-लोलुप और देशद्रोही है। और मैं दस्यु नहीं—क्रांतिद्रष्टा का अनुचर हूं।"

स्वस्तिसेन को अचानक कुछ स्मरण हो आया। उन्होंने शंकालु होकर पूछा—

"आप तक्षशिला के पराक्रमी स्नातक भट्टिय हेमजित..."

"जी हां ! मैं ही भट्टिय हेमजित हूं—जो तक्षशिला महाजनपद की मंत्रि-परिषद् द्वारा प्रदत्त सेनानायक का पद त्यागकर, अपने देश की सेवा करने के निमित्त गिरिव्रज आया था। किंतु, देश के स्वार्थ-लोलुप उच्चाधिकार प्राप्त मूर्धन्य व्यक्ति की दृष्टि में मेरा देश-प्रेम, मेरी न्यायप्रियता और मेरा पराक्रम शूल बनकर खटकने लगा।"

"मैं ऐसे व्यक्ति का सेनापति होकर बहुत ही लज्जित हूं पुरुषसिंह ! इस अपराध के लिए आप मुझे जो भी दंड देंगे उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा।"

"भूल के लिए पश्चाताप करने मात्र से ही सन्मार्ग का द्वार खुल जाता है सेनापति। आप अपने सैनिकों सहित मुक्त किये जाते हैं। अवन्ति की राजधानी माहिष्मती जाने के लिए आपका मार्ग प्रशस्त है।"

स्वस्तिसेन को आशा नहीं थी कि वे इतनी सुगमता से अपने अमूल्य प्राण की रक्षा कर सकेंगे। अवसर मिलते ही अपने शेष सैनिकों सहित काल के गाल से निकल भागे।



रात के समय गिरिव्रज नगर-द्वार का महाकपट बंद ही हुआ था कि पश्चिमी द्वार पर एक अश्वारोही आकर रुक गया। अश्वारोही के साथ-साथ उसका अश्व भी पसीने से लथपथ हो रहा था। अश्व के मुंह से झाग निकल रहे थे।

अश्वारोही ने प्रहरी को पुकार कर कहा—

"द्वार खोल दो ?"

प्रहरी ने प्रश्न किया—

"तुम कौन हो ?"

उत्तर में अश्वारोही ने उगली में पड़ी मुद्रिका दी। प्रहरी ने निकट आकर उल्का के प्रकाश में मुद्रिका परखी और अभिवादन करके द्वार खोल दिया। नगर में प्रविष्ट होते ही अश्वारोही द्रुत गति से राजपथ पर आगे बढ़ा। कुछ दूर बाद ही वह, राजपथ को छोड़ बायीं ओर के आर्यपथ पर मुड़ गया। स्पष्ट ही उसका लक्ष्य महामात्य पुलिकसेन का

प्रासाद था।

महामात्य पुलिकसेन मुखशाला में अपने विश्वासपात्र नायक व्याघ्रजिन के साथ विचार-विमर्श कर रहे थे। तभी परिचारक ने आकर सूचना दी—"माहिष्मती से एक संदेशवाहक आया है। वह शीघ्र ही स्वामी के दर्शन करना चाहता है।"

महामात्य चौक उठे। स्वस्तिसेन के नेतृत्व में सैनिकों के प्रस्थान करने के पश्चात् उन्हें कोई सूचना नहीं मिली थी। संदेशवाहक को बुला लाने का आदेश देकर वे उत्सुकता एवं चिंता से प्रतीक्षा करने लगे। कुछ क्षण में ही संदेशवाहक ने मुखशाला में आकर उनका अभिवादन किया। महामात्य ने पूछा—

"क्यों संदेशवाहक ! सेनापति स्वस्तिसेन सकुशल तो हैं ?"

"सेनापति स्वस्तिसेन भगवान शिव की कृपा से ही माहिष्मती पहुंच पाये ! उन्होंने बहुत दुख के साथ आपकी सेवा में निवेदन किया है कि गिरिव्रज से माहिष्मती पहुंचते-पहुंचते बीस सहस्र सैनिक रोग-व्याधि एवं दस्युराज भट्टिय के ग्रास बन गये।"

"कहते क्या हो संदेशवाहक !"—पुलिकसेन व्याकुल होकर चीख उठे।

संदेशवाहक ने विनीत स्वर में निवेदन किया—

"ठीक सत्य ही कहता हूं स्वामी ! दस्युराज अन्य कोई नहीं, स्वयं भट्टिय हेमजित है।"

"किंतु, इस हेमजित के संबंध में तो मैंने वत्सराज से सुना था कि इसने चम्पारण्य को अपना कार्य-क्षेत्र बना रखा है।"

"इन दिनों नर्मदा की घाटी में है स्वामी।"

पुलिकसेन क्रोध एवं चिंता से पागल हो उठे और मुखशाला में चक्कर काटने लगे। संदेशवाहक ने कहा—

"सेनापति जी ने अनुरोध किया है कि गिरिव्रज में कार्य संपादित करने के लिए अवन्ति-सेना को फिर से संगठित करना होगा, और इस कार्य को पूरा करने में निश्चय ही समय लगेगा। जो सैनिक बच रहे हैं वे संत्रस्त, अस्वस्थ एवं असमर्थ होकर रह गये हैं। भय से उनका उत्साह

बुझ चुका है।"

"ठीक है, तुम जाकर विश्राम करो।"

संदेशवाहक सिर झुकाकर बाहर चला गया। महामात्य पुलिकसेन चक्कर काटते-काटते अचानक रुक गये और बोले—

"व्याघ्रक, द्वार पर अश्व प्रस्तुत करो !"

व्याघ्रक बाहर जाकर शीघ्र ही लौट आया और निवेदन के स्वर में बोला—

"अश्व प्रस्तुत है श्रीमान् !"

महामात्य पुलिकसेन बाहर आये और अश्व पर आरूढ़ होकर बोले—

"सेनापति करिषेण यहां मेरी प्रतीक्षा करें।"

"जो आज्ञा श्रीमान् !" व्याघ्रजिन ने मस्तक झुकाकर कहा। पुलिकसेन का अश्व पलभर में अंधकार में विलीन होकर चन्दमित्र के एकशालिक की ओर उड़ चला। एकशालिक के उद्यान-द्वार पर पहुंचने से पूर्व ही महामात्य ने पीठ पर से आच्छादनक खींचकर अपना मुंह छिपा लिया था। द्वार के प्रहरी को मुद्रिका दिखाकर वे, उद्यान के भीतर, एकशालिक के द्वार पर जा पहुंचे।

आचार्य शैवलिक को महामात्य के आगमन की पूर्व सूचना मिल चुकी थी। द्वार पर ध्वनि होते ही आचार्य ने गंभीर स्वर में कहा—"भीतर आ जाओ महामात्य !"

पुलिकसेन आचार्य शैवलिक के पास पहुंचते ही निष्प्रभ हो जाते थे। उस दिन तो वे अत्यधिक निरुपाय हो रहे। आचार्य का अभिवादन करके उन्होंने कुछ कहना ही चाहा कि आचार्य शैवलिक अति गंभीर स्वर में बोले—

"बहुत चिंतित दीखते हो महामात्य ! अवन्ति का समाचार क्या बहुत दुखद है ?"

महामात्य पुलिकसेन का मुख खुला का खुला रह गया। वे कुछ भी नहीं बोल सके ! आचार्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से महामात्य को देखकर कहा—

"इतने बड़े षड्यंत्र का सूत्रपात करके यदि तुम छोटी-छोटी घटनाओं से विचलित होने लगोगे तब तो बैठ चुका तुम्हारा पुत्र मगध के आर्यपट्ट पर।"

"बीस सहस्र सैनिकों की अकाल मृत्यु छोटी-सी घटना है आचार्य ?"

"निस्संदेह ! मगध राज्य की प्राप्ति और अपने आचार्य की उपेक्षा की पृष्ठभूमि में इस घटना को देखो तो निश्चय ही बीस सहस्र सैनिकों की अकाल मृत्यु, तुम्हारी महत्वाकांक्षा के विराट दुर्ग के द्वार पर प्रियंगुलतिका के सुशोभित एक पत्र के पतन के सदृश है !"

"आचार्य की उपेक्षा···"

"हां। जिसे संकल्प करके आचार्य मान लिया उसकी अनुमति या परामर्श की उपेक्षा न करके तुमने स्वयं अवन्ति की सेना को प्रत्यावर्तन की आज्ञा दे दी। मेरी गणना सत्य ही निकली।"

"क्या आप पूर्व से ही जानते थे आचार्य ?"

"हां।"

"कैसे ?"

"रणनीति में जिज्ञासा सेवक तथा सहयोगी से की जाती है—स्वामी अथवा आचार्य से नहीं।"

"किंतु आपने मुझसे कहा क्यों नहीं आचार्य ?"

"शिक्षा देने के लिए !"

"अब क्या होगा ?"

"तुम्हारी महत्वाकांक्षा के दुर्ग का शिलान्यास।"

"इतने कठोर मत बनिए आचार्य ! मैं संकल्प करता हूं कि आज से बिना आपकी अनुमति के एक पग भी नहीं उठाऊंगा !"

"सत्य ही कह रहा हूं पुलिकसेन ! तुम्हारी महत्वाकांक्षा के दुर्ग का शिलान्यास हो गया—समझो।"

"अपना समस्त सैन्यबल गंवाकर मैं तो निर्वीर हो गया।"

"वह सैन्यबल अवन्ति का था। आज तक तुम उसी के भ्रम में पड़े हुए पतन की राह पर चले जा रहे थे। आज स्वयं तुममें शक्ति तिरोहित हो गयी है। पुलिकसेन ! विदेशी सैन्यबल के सहारे देश का प्रभुत्व क्षीण हो जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि प्रभुत्व ही नहीं, प्रभु एवं देश, दोनों ही रसातल को चले जाते हैं। ऐसा वरदान मत लो जो तुम्हें भस्मा-सुर की दशा को पहुंचा दे। मागध जन अवन्ति के सैन्यबल को देखकर

भयभीत अवश्य हो जाते, तुम्हें सफलता भी मिल जाती, किंतु मागध वीर, एक न एक दिन इस जुए को निश्चित ही उतार फेंकते। बहुत उत्तम हुआ कि ऐसी घटना घटी।"

"किंतु, आचार्य ! मार्ग तो सुझाइए। मुझे तो चारों ओर अंधकार ही अंधकार दृष्टिगोचर हो रहा है।"

"अत्यधिक प्रकाश से भी आंखों में चकाचौंध उत्पन्न हो जाती है। जिसे तुम अंधकार समझ रहे हो वह तुम्हारे विस्तार की असीमता है। उसे भेदने का प्रयत्न करो। तुम्हारा मार्ग प्रकाशित हो उठेगा।"

महामात्य दीन भाव से बोले—

"निश्चित मार्ग का निर्देशन कीजिए आचार्य ! अन्यथा मैं पागल हो जाऊंगा !"

"निश्चित मार्ग ही बताता हूं। कल प्रातःकाल राजाज्ञा के नाम पर मगध महाजनपद में घोषणा करवा दो कि पच्चीस सहस्र सैनिकों की आवश्यकता है !"

"किंतु, इसके लिए तो राजा के समक्ष कोई कारण प्रस्तुत करना होगा।"

"कारण स्पष्ट ही नहीं, प्रबल है। मगध-अंग की सीमा पर अराजकता फैली हुई है। अंग के नये राजा ब्रह्मदत्त की लोलुप दृष्टि मगध पर लगी हुई है। इसी बहाने, राजा की परंपरागत सेना—मौल सेना को, मगध-अंग सीमा की रक्षा के लिए तत्काल भेज दो। गिरिव्रज में मौल सेना की उपस्थिति तुम्हारे मार्ग में भयावह कठिनाई उपस्थित कर देगी। मौल सेना का प्रत्येक सैनिक राज-भक्त है।"

"ऐसा ही होगा आचार्य !"

"इतना ही नहीं, आटविक सेना एवं श्रेणिय बल को प्रोत्साहन दो।"

"श्रेणिय बल ? उसकी निष्ठा तो हेमजित में है।"

"चौंको नहीं महामात्य। हेमजित गिरिव्रज से दूर विन्ध्य की उपत्यका में हैं और हेमजित के पिता बंदीगृह में। नेताविहीन श्रेणिय बल तुम्हारा दास बन जायेगा ! हेमजित गिरिव्रज में पंगु बनकर रह जायेगा !"

"धन्य हैं आचार्य ! मागध जन आपको सत्य ही इन्द्रपुत्र कहते हैं।"

"अब तुम जा सकते हो। मैं इस तरह की चाटुकारिता का अभ्यस्त नहीं हूं। श्रद्धा का प्रदर्शन दुर्बलता एवं मिथ्याचरण का परिचायक होता है।"

महामात्य पुलिकसेन किंचित् लज्जित होकर आचार्य का अभिवादन करके चले गये। इधर आचार्य शैवलिक एकशालिक का द्वार बंद करके सुरंग में उतर पड़े।



रात्रि का तीसरा प्रहर समाप्त हो रहा था। संपूर्ण गिरिव्रज नगर निस्तब्ध हो रहा था। मात्र धवलगृह में राग-रंग एवं जलपान चल रहा था।

मगध महाजनपद के प्रभु, परम शाक्त परमेश्वर बार्हद्रथवंश कुलावतंस महाराज रिपुंजय वारविलासिनियों एवं गणिकाओं से घिरे हुए कापिशायनी एवं सौंदर्य सुरा में ऊब-चूभ कर रहे थे। महाराज के थकित, क्लांत, निर्वीर्य एवं मृत पौरुष को प्रदीप्त करने के सभी साधन वहां उपस्थित थे। सुरा, संगीत एवं सौंदर्य का अपार सागर अपनी संपूर्णता से संपृक्त हो उद्दाम हो रहा था। गणिकाएं एवं वारविलासिनियां अपने प्रज्वलित यौवन की दुर्धर्ष लपटों से महाराज रिपुंजय की प्रस्तर सदृश निष्प्राण काममूर्ति को सुलगाने का विफल प्रयास कर रही थी। उनके सुचिक्कन गात, अर्द्धनग्न उन्नत स्तन-कलश, सुगढ़ देहयष्टि, संगमरमर सदृश धवल-कोमल-सुचिक्कन जंघाएं, शव में भी प्राण फूंकने में समर्थ थीं। उनकी देहों पर मात्र कटि प्रदेश में केंचुल की तरह महीन कौशेयी अधोवस्त्र लिपटे हुए थे अर्थात्

उतना ही वस्त्र था जितने से नग्नता चित्रित हो सके।

महाराज रिपुंजय कभी किसी गणिका की ग्रीवा में मांसल बांहें डाल देते तो कभी किसी वारविलासिनी की अर्द्धनग्न सुचिक्कन जंघाओं पर औंधे पड़ जाते। वय की मार से टूटे हुए महाराज सौंदर्य एवं सुरा की बाढ़ में तिनके की तरह बहे जा रहे थे, कि परिचारिका ने महामात्य पुलिकसेन के आगमन की सूचना दी। महाराज बुदबुदा उठे—

"अ···आ···ने···दो!"

महामात्य अनुमति की प्रतीक्षा करने के आदी नहीं थे। परिचारिका की पीठ पर ही वे भी आ पहुंचे थे। वहां का दृश्य देखकर वे अधरों में मुस्करा उठे। बोले—

"महाराज की जय हो! एक अत्यावश्यक कार्य से सेवा में उपस्थित हुआ हूं।"

"बोलो। क्या···सु···सु···सु···सूर्योदय हो गया?"

"होने ही वाला है महाराज! इधर प्रतिदिन अंग की सीमा से भयानक समाचार आ रहे हैं। पच्चीस योजन तक अंग की औत्साहिक सेना मगध में घुस आयी है। उनकी बर्बरता से मागध प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है!"

"तो से···से···सेना भेज दीजिए!"

"मौल सेना भेजनी होगी महाराज। अश्व सेना तो ज्योतिपाल के नेतृत्व में विद्रोही बनकर छिन्न-भिन्न हो गयी है।"

"म···म···मौल सेना? किंतु मे···मे···मेरी रक्षा क···क···कौन करेगा?"

"उसका प्रबंध हो जायेगा महाराज! आप निश्चिंत रहें।"

"जाओ जा···इ···इ···इए···आज्ञा है!"

"इस आदेश पर हस्ताक्षर कर दीजिए।"—महामात्य ने दो आदेश-पत्रों पर चतुराई से हस्ताक्षर करवा लिये।

महामात्य ने मुस्कराकर कहा—

"आप आश्वस्त होकर सुरापान करें। मैं सब प्रबंध कर देता हूं।"

"अ···अरे···तलछट तक पी···गया—फिर भी म···म···मन नहीं भरा!"

...महाराज ने उन्मीलित आंखों से महामात्य को देखते हुए कहा और पार्श्व में बैठी गणिका की कलाई पकड़ कर उसके हाथ में रखे पात्र को रिक्त कर दिया।

महामात्य का अश्व धवलगृह के अजिर पर खड़ा था। द्रुतगति से उनका अश्व स्कन्धावार की ओर उड़ चला।

महामात्य का आदेश सुनते ही मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र चौंक उठे। उनका मन शंकालु हो उठा। किंतु, राजाज्ञा देखकर उन्हें सैनिकों को उसी समय कूच करने की आज्ञा देनी पड़ी।

सूर्योदय होते ही मागध जन ने देखा कि मौल सेना दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ी चली जा रही थी। दूसरी ओर, गिरिव्रज नगर में एवं नगर के आस-पास, राज-घोषणा सुनायी दे रही थी—

"मगध पर पूर्व दिशा से विपत्ति के बादल मंडराते चले आ रहे हैं। जनपद के सभी तरुण, श्रेणिय बल, आटविक सेना एवं आयुधजीवी राज्य-ध्वज के नीचे प्राणोत्सर्ग के लिए आमंत्रित किये जाते हैं। योग्यता अनुसार वेतन एवं पारिश्रमिक दिया जायेगा!"

घोषणा सुनते ही गिरिव्रज नगर के वासी भौचक रह गये। कभी महामारी तो कभी अग्निकांड, कभी बलात् हरण की घोषणा तो कभी आक्रमण का भय! यह सब क्या है? क्या हो रहा है?—नागरिक जन एक-दूसरे से पूछते किंतु उत्तर किसी के पास नहीं था। जिनके पास उत्तर था वे चन्दमित्र के एकशालिक में बैठे एक तरुण को आदेश दे रहे थे—

"आयुष्मान जयसेन! तुम अपने कर्त्तव्य से परिचित हो?"

"जी हां आचार्य!"—सामने खड़े पराक्रम से प्रदीप्त मुखमंडल पर विनय का भाव लिये बलिष्ठ, गौरवर्ण तरुण जयसेन ने निवेदन किया। आचार्य शैवलिक ने तत्क्षण प्रश्न किया—

"तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है?"

"आचार्य के आदेश का उत्साहपूर्वक पालन!"

"तुम्हारे धनुष में कितनी शक्ति है?"

"आपके आशीर्वाद से पांच सौ योद्धाओं का अकेला शिरोच्छेद कर

सकता हूं !"

"साधु आयुष्मान ! गिरिव्रज का उत्थान तुम्हारे ही पराक्रम पर आश्रित है। यह संकेत-चिह्न लो और महामात्य पुलिकसेन की सेवा में जाकर उपस्थित हो।"

आचार्य ने एक छोटी-सी हेति जयसेन के हाथ पर रख दी। हेति की मूठ पर बहुमूल्य रत्न जड़े थे। जयसेन ने हेति को मस्तक से लगाकर पटका में खोंस लिया। आचार्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से जयसेन को देखते हुए कहा—

"कल तुम मगध के अश्वसेनाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित किये जाओगे। तुम्हारी शक्ति अजेय हो जायेगी। जानते हो तुम्हारी निष्ठा किसमें होगी ?"

"आदेश कीजिए आचार्य !"

"सर्वप्रथम मगध में—उसके पश्चात भट्टिय हेमजित में ! और मैं इन दोनों का निमित्त हूं !"

"आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य है।"

"एक बात और। ऋषिगिर पर्वत पर नारायण स्वामी को तत्काल भूल जाओ ! अपना समस्त भूत-वर्तमान भूल जाओ ! नीतिपूर्ण आचरण के निमित्त आज से महामात्य पुलिकसेन तुम्हारा स्वामी हुआ और भट्टिय एवं उसके सहयोगी तुम्हारे शत्रु !"

"मैं समझ गया आचार्य !"

"अच्छा तो तुम जा सकते हो ! तुम्हारे साथ चम्पारण्य से जो दस सहस्र श्रेणिय एवं आटविक योद्धा आये हैं, उन्हें कह दो कि सेना में नियुक्त होते समय या उसके पश्चात्, अपने व्यवहार में सावधान रहें। एक-दूसरे से परिचित होने का सत्य प्रकट न होने दें। जाओ कृष्ण-वासुदेव तुम्हारी रक्षा करें !"

जयसेन आचार्य का अभिवादन करके चला गया। इसके पश्चात् शैवलिक अन्य रोगियों को बुलाकर ओषधि देने लगे। विभिन्न प्रकार के रोगी, एक-एक कर प्रकोष्ठ में प्रविष्ट होते, अपना लक्षण बताते और ओषधि एवं उपचार-विधि प्राप्त कर एकशालिक से बाहर चले आते। संध्याकाल तक यह क्रम चलता रहा !



चम्पारण्य का भयावह वन्य प्रांत अपनी निस्तब्धता के संगीत से बेसुध होकर स्पंदनहीन हो रहा था। चारों पवन भी दिग्भ्रमित हो रहे थे। अंधकार भी हरेक लता-द्रुम के पास सिमटकर संगीत का संपूर्ण आनंद उठा लेने को कृत-निश्चय था। वन के जीव-जंतु किसी आशंका से प्रेरित होकर सुगबुगा उठते और तब वहां का शांत-नीरव-निस्तब्ध वातावरण किंचित् चरमरा कर मुखरित हो उठता था।

ड़-पौधे इतने गहन थे, एक-दूसरे में इस प्रकार गुंथे थे, उलझे थे कि सींग समा सकना असंभव था। फिर भी दो अश्वारोही किसी प्रकार बचते-टकराते चले जा रहे थे। इतनी भयंकर रात में, ऐसे भयावह वन में, प्रवेश करने वाला निश्चय ही महान् साहसी होगा। लगता था जैसे वे दोनों अश्वारोही अपनी राह भूल गये हों। बीच-बीच में वे दोनों रुक जाते, चारों ओर देखने का प्रयत्न करते, दिशा-भ्रम के निवारण के लिए आकाश की ओर देखते और फिर चल पड़ते। प्रत्येक अश्व पर, अश्वारोहियों के अतिरिक्त एक-एक मानवाकार मूर्ति जैसी वस्तु निर्जीव पड़ी थी।

पाठक चन्द्रबाला एवं बालक बिम्बिसार को भूले नहीं होंगे। अंधकार में उन्हें पहचान पाना कठिन था।

वन-प्रदेश का अंधकार क्षीण होने लगा। अश्वारोही अनंत वन में बढ़ते रहे। राह की दुरूहता ने उन्हें और उनके अश्वों को शिथिल बना दिया था।

सामने एक पतला-सा जल-स्रोत देखकर दोनों अश्वारोही अश्व से उतर पड़े। मानवाकार मूर्तियों को भी उतार कर उन्होंने भूमि पर रख दिया।

महान् पराक्रमी भट्टिय हेमजित की रूपवती पत्नी चन्द्रबाला एवं बालक बिम्बिसार निरीह, अनाथ, असहाय अवस्था में पेड़ के नीचे मूर्तिवत् बैठे रहे। दोनों के हाथ-मुंह बंधे हुए थे। आततायियों ने उन्हें पृथ्वी पर उतारकर रखने के पश्चात् उनके पैर भी बांध दिये और स्वयं जल-स्रोत के पास जल पीने चले गये। माता-पुत्र एक-दूसरे को करुण दृष्टि से टुकुर-टुकुर देखते रहे।

सूर्योदय हो रहा था। दोनों आततायी चन्द्रबाला के पास आये। एक ने पूछा—

"राजकुमारी जी कुछ जलपान करेंगी ?"

चन्द्रबाला ने सिर हिलाकर नाही कर दी। दूसरा आततायी हंस कर बोल उठा—

"यावक और गुड़ राजकुमारी क्या खायेंगी ? कि धवल-गृह में पहुंच कर अपूप ही खायेंगी।"

पहला आततायी खिलखिलाकर हंसता हुआ बिम्बिसार की ओर मुड़कर बोला—

"क्या आप भी अपूप ही चाबेंगे राजकुमार ?"

बिम्बिसार चुपचाप देखता रहा। पहला आततायी बोला—

"खा लीजिए राजकुमार ! राजा ब्रह्मदत्त आपको देखते ही……" अंतिम शब्द बोलने के स्थान पर आततायी ने अपनी गरदन पर हाथ का खड्ग बनाकर हत्या कर डालने का संकेत किया। हाथ से गरदन रेतते समय उसके मुंह से 'खिरिक्' की ध्वनि निकली। दोनों आततायी अट्टहास कर उठे। बिम्बिसार ने क्रुद्ध दृष्टि से उन दोनों को देखा। दोनों हंसते हुए सरिता के पास पहुंच कर आमने-सामने बैठकर जलपान करने लगे।

उसी समय अप्रत्याशित घटना घटित हो गयी। दोनों आततायी जल-पान करने में निमग्न थे कि उनकी पीठों को बेंधते हुए दो बाण, दोनों के

वक्षस्थल पर निकल आये। कोई आवाज तक नहीं हुई और दोनों ही लुढ़क कर शांत हो गये। माता-पुत्र पेड़ के नीचे बैठे-बैठे इस दृश्य को देखते रह गये।

चन्द्रबाला आशा एवं आशंका से उत्तेजित होकर इधर-उधर देखने लगी। चारों ओर घने पेड़-पौधों के अतिरिक्त कुछ भी नही दिखायी पड़ा। वह खिसक कर अपने पुत्र के पास पहुंच गयी। बिम्बिसार बहुत प्रसन्न था—क्योंकि दोनों आततायियों का अट्टहास बुझ चुका था। चन्द्रबाला ने अपने पुत्र को बंधे हाथ के सहारे गोद में लिटा लिया।

पल-भर बाद ही चन्द्रबाला ने देखा कि नाटे-काले असुर, चारों ओर से वृत्ताकार घेरा बनाये, उसकी ओर बढ़े चले आ रहे थे। असुरों के सिर पर काले-काले घुंघराले बाल थे, जो लाल-लाल पट्टियों से बंधे थे। पट्टियों में पक्षियों के पंख घुसे थे, उनकी नाक चपटी, होंठ मोटे और अधर लटके हुए थे। आंखें छोटी-छोटी और लाल थीं। कान के छिद्रों में हरे-लाल पंख घुसे थे। गले में रंग-बिरंगे गोल-गोल पत्थरों की माला और कटि-प्रदेश के नीचे घुटनों तक वृक्ष की खाल एवं पत्तियां बंधी हुई झूल रही थीं। कच्ची खाल के कटिबंध में बायीं ओर कृपाण लटक रही थी और उनके कंधे पर धनुष था एवं हाथ में बाण। सबके-सब भगवान् शंकर के गण, कालरात्रि के पुत्र एवं सजीव अंधकार-खंड से लग रहे थे।

असुरों का वृत्त छोटा होते-होते चन्द्रबाला एवं बिम्बिसार के पास सिमट आया। माता-पुत्र को शांत देखकर वे सबके-सब प्रसन्नता से नाचने-कूदने लगे—किलकारियां मारने लगे। विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया। कुछ काल तक यह क्रम चलता रहा। अचानक उनमें से एक व्यक्ति, जो नायक दीखता था, आगे बढ़ा। सब लोग शांत हो गये। नायक ने बढ़कर चन्द्रबाला से कुछ कहा। चन्द्रबाला समझ नहीं सकी। नायक ने संकेत से चन्द्रबाला को चलने के लिए कहा। चन्द्रबाला तब तक पूर्णतया चेतन हो चुकी थी। उसने धीरज एवं विवेक से काम लेने का निश्चय कर लिया। नायक का संकेत समझ कर चन्द्रबाला ने अपने तथा बिम्बिसार के हाथ-पांव के बंधन दिखाये।

नायक को चन्द्रबाला का संकेत समझते देर नहीं लगी। उसने दोनों

के बंधन खोल दिये। इसके पश्चात् माता-पुत्र को अश्वों पर बिठा दिया गया। दो-दो असुर दोनों अश्वों की रास पकड़कर आगे बढ़े। शेष असुर अश्वों को घेरकर बढ़ चले।

आध प्रहर तक चलते रहने के बाद भूमि ऊबड़-खाबड़ मिलने लगी और कुछ ही दूर पर छोटी-छोटी पहाड़ियां दीख पड़ीं। सब लोग उसी ओर बढ़ते रहे।

पहाड़ी पर पहुंचते ही बहुत-से असुर, बच्चे-बूढ़े, स्त्रियां वहां आ जुटी और चन्द्रबाला एवं बिम्बिसार को देखकर प्रसन्नता से उछलने-कूदने लगी। कोलाहल से समस्त पहाड़ी प्रदेश प्रतिध्वनित हो उठा।

चन्द्रबाला एवं बिम्बिसार को एक कन्दरा में डालकर सब लोग चले गये। कंदरा में ही भूना हुआ मांस, सुरा तथा जल रख दिया गया।

चन्द्रबाला ने बिम्बिसार को अपने हाथों से भूना हुआ मांस खिलाया और जल पिलाया। बिम्बिसार के सो जाने के बाद चन्द्रबाला विचारों में डूब गयी। भोजन के नाम पर उसने थोड़ा-सा जल पी लिया था। दिन-भर उन्हें देखने कोई नही आया।

संध्या होते ही कोलाहल बढ़ने लगा। तरह-तरह के कर्णकटु वाद्य बजने लगे। बिम्बिसार नींद पूरी करके उठ चुका था। उसने निश्छल स्वर में पूछा—

"ये लोग तौन हैं मां ?"

"असुर हैं पुत्र !" चन्द्रबाला ने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। बिम्बिसार की जिज्ञासा द्विगुणित हो उठी। बोला—

"ये हमें घल नहीं जाने देंगे त्या ?"

"नहीं पुत्र।"

"तब त्या होगा ?"—बिम्बिसार ने गंभीर होकर निश्चिंत भाव से पूछा। चन्द्रबाला अपने पुत्र के भोलेपन पर भीतर ही भीतर रो उठी। किंतु, ऊपर से संयत होकर बोली—

"ईश्वर जो चाहेगा, वही होगा पुत्र !"

बिम्बिसार बड़े-बूढ़ों की तरह सिर हिलाकर बोला—

"हूं ! अब ईछ्वल आयेगा।…अच्छा मां ! त्या पिताछ्ली नहीं आ

छकते ?"

"नहीं पुत्र ! वे बहुत दूर हैं !"

"ईछ्वल भी तो बहुत दूल हैं।"

"ईश्वर दूर नहीं है। ढूंढ़ने पर मन में ही मिल जाते हैं।"

"तो मन छे पूछो ! मैं भी धूलता हूं।"

चन्द्रबाला अपने अश्रु नहीं रोक सकी। पुत्र को खींचकर वक्ष से लगा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी। बालक बिम्बिसार कुछ देर मां की गोद से मुंह सटाये रहा। फिर अचानक अपने को छुड़ा कर मां को देखता हुआ बोला—

"तुम लोती हो मां ? मुझे देखो। मैं तहां लोता हूं ? चुप हो जाओ औल ईछ्वल को मन में देखो। मैं भी देखता हूं।"

मां-बेटे कुछ क्षण चुप बैठे रहे। अचानक बालक बिम्बिसार बोल उठा—

"मां ! तुम कहती थी कि पिताछ्ली के गुरुदेव ईछ्वल जैसे हैं। फिल वे आते त्यों नहीं ?"

पुत्र की बात सुनते ही चन्द्रबाला की आंखें चमक उठीं। उसके अंग-प्रत्यंग में स्फूर्ति की लहर दौड़ गयी। उसने पुत्र को पुनः हृदय से लगा लिया और कहा—

"एक काम करेगा पुत्र ?"

"छौ काम कलूंगा।"

"शतायु हो पुत्र ! देखो, असुर लोग कुछ देर में हम लोगों को यहां से बलि-स्थल पर ले जायेंगे। वहां पर ये लोग बहुत देर तक खाते-पीते और नाचते हैं। मैं तुम्हें जो कुछ दूंगी उसे तुम सुरा से भरे महाकुम्भ में चुप-चाप जाकर डाल देना। बालक समझ कर असुर लोग तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे।"

"इछछे हम लोग घल पहुंच जायेंगे ?"

"हां पुत्र !"

"तो ठीक है। लाओ वह वछ्तु !"

"अभी ठहरो ! मैं भोजन कर लूं।"

कर अग्नि में डाल दी और दूसरा पात्र भरकर वह स्वयं गटागट पी गया। उसकी देखा-देखी सब असुर महाकुम्भ से सुरा निकाल-निकाल कर पीने लगे। नाच-गान गति पकड़ने लगा। समय बीतने लगा और समय के साथ-साथ सभी असुर उन्माद के समुद्र में गोते खाने लगे।

आचार्य औदुम्बरायण की ओषधि अचूक थी। देखते-देखते सभी असुर लड़खड़ाकर गिरने लगे। उनकी चेतना जाती रही।

चन्द्रबाला ने पहाड़ी पर से नीचे की ओर घने अंधकार को देखा। पास में मृत पड़े हुए असुर का खड्ग लेकर बालक बिम्बिसार को दे दिया और स्वयं धनुष-बाण लेकर बिम्बिसार के साथ अंधकार में दौड़ चली।

संयोग अच्छा था। पहाड़ी के नीचे ही दोनों अश्व बंधे हुए थे। चन्द्रबाला ने एक अश्व खोल लिया और पुत्र को अपने साथ अश्व पर बिठाकर उसे अंधकार में छोड़ दिया।

पूर्व में सूर्य की लाली भासित हो उठी। भूमि पर प्रकाश फैल गया। किंतु, चन्द्रबाला को कुछ भी भान नहीं हुआ कि वह किधर जा रही है। वह तो अपने पुत्र को बचाने की असीम चिंता से बेसुध हो रही थी।

सूर्य मस्तक पर चमकने लगा। चन्द्रबाला बीहड़-वीरान प्रदेश में पश्चिम की ओर बढ़ती रही। अचानक कुछ दूर पर धुआं उठते देखकर उसने अपना अश्व उसी ओर मोड़ दिया। पास पहुंचकर उसने देखा कि कोई सार्थवाह है। वह अश्व से उतर गयी कि तभी कई सशस्त्र व्यक्तियों ने उसे घेर लिया। चन्द्रबाला ने कुछ सोचकर प्रतिरोध करना व्यर्थ समझा और भाग्य-चक्र के नीचे मस्तक टेक दिया।

माता-पुत्र पुनः बंदी बना लिये गये। इस बार चन्द्रबाला अपने पुत्र के साथ दास-विक्रेता की शक्तिशाली मुट्ठी में जकड़कर रह गयी। दास-विक्रेता अपूर्व सुंदरी को देखकर अपने भाग्य को सराहने लगा। उसी दिन दास-विक्रेता का सार्थवाह गिरिव्रज नगर की ओर चल पड़ा। चन्द्रबाला ने देखा कि उसकी तरह बहुत-सी स्त्रियां, बच्चे, पुरुष विपन्नावस्था में लाचारी के आंसू बहाते दासता के बंधन में जकड़े हुए हैं। चन्द्रबाला कांप उठी। उसने अनुभव किया कि वन-प्रदेश के असुरों की अपेक्षा यह नागरिक

असुर दास-विक्रेता अधिक भयावह है, अधिक क्रूर, अधिक घातक।

किंतु, मुक्ति के सभी मार्ग अवरुद्ध थे। गिरिव्रज पहुचने की आशा से वह किंचित् संतुष्ट हुई। उसने निश्चय कर लिया था कि अंत में यदि मुक्ति के सभीमार्ग अवरुद्ध मिलेंगे तोभट्टिय का स्मरण कर आचार्य औदुम्बरायण की ओषधि खाकर प्राण त्याग देगी।



कुवलया को आचार्य शैवलिक का आदेश प्राप्त हुआ कि धवल-गृह जाने के बहाने दासों के हट्ट में पहुंचो और जिसे असाधारण दासी समझो, सम्मानपूर्वक उसे पुत्र सहित क्रय कर लो। क्षण-भर बाद ही गिरिव्रज नगर की सुंदरी गणिका कुवलया, अपने उत्तम सहस्रसमित वैयाघ्र रथ पर चढ़ कर धवल-गृह को जा रही थी। नागरिक जन दूर से ही रथ का स्वर्ण शिखर एवं चार आरट्टी अम्ब जुते देख कर समझ जाते कि कुवलया आ रही है। अतएव, पथ से दूर होकर, कुवलया की एक झलक मात्र देख लेने के निमित्त टकटती बांधे खड़े हो जाते।

कुवलया का वैयाघ्र रथ श्रेष्ठि चत्वर से होकर धड़धड़ाता हुआ, दासों के हट्ट में एक स्थान पर अचानक रुक गया। यह असाधारण घटना थी। कुवलया का रथ सदा अपने निर्दिष्ट स्थान पर जाकर ही रुकता था। पथ में कितनी भी भीड़ क्यों न हो,कुवलया के रथ को देखते ही छंट जाती।

लेकिन, दासों के हट्ट में आज उसका रथ रुक गया। सामने उन्मत्त भीड़ लहरा रही थी। सब लोगों की दृष्टि दासों के बाड़े में खड़ी अपूर्व

सुंदरी की ओर गड़ी थी। कुछ लोगों ने कुवलया को देखकर भी नही देखा। कुवलया चकित होकर बाड़े की ओर देखने लगी। बाड़े में खड़ी स्त्री का अद्भूत रूप देखकर वह चकित रह गयी। स्त्री अपने बायें हाथ से छह वर्ष के बालक को अपने से चिपकाये, दाहिने हाथ में कटार लिये साक्षात् भवानी-सी खड़ी थी। कुवलया ने अपने परिचारक को रहस्य जानने का आदेश दिया।

क्षण-भर बाद ही परिचारक ने आकर बताया कि दास-विक्रेता इस स्त्री को बेचना चाहता है। किंतु, यह स्त्री अपने पुत्र से विलग होने के लिए प्रस्तुत नहीं है और न अपने शरीर को स्पर्श करने की किसी को अनुमति दे रही है। दास-विक्रेता ने बलपूर्वक इसके अंग को निरवसन करना चाहा तो इस स्त्री ने उछल कर कटार निकाल ली। कहती है, इस कटार के स्पर्श मात्र में ही मृत्यु निश्चित है।

कुवलया को निश्चय करने में क्षण-भर भी विलंब नहीं लगा। उसने परिचारक को आदेश दिया—

"किसी भी मूल्य पर उस स्त्री को उसके पुत्र सहित सम्मानपूर्वक ले आओ। और देखो! उसे परखने का प्रयत्न मत करना। मैं प्रतीक्षा करती हूं।"

परिचारक ने शीघ्र जाकर दास-विक्रेता से पूछा—

"इस स्त्री को बालक सहित कितने में बेचेगा?"

दास-विक्रेता ने उस परिचारक को रथारूढ़ सुंदरी से बातें करते देख लिया था। उसने मन-ही-मन अपने भाग्य को सराहा और ऊपर से उपेक्षा के स्वर में बोला—

"अरे! इस गिरिव्रज नगर में अब पारखी रहा कहां? कौन देगा इतना मूल्य? सबकी आंखें फूट गयी हैं। परख कर लेना चाहते हैं। किंतु, जेब से एक ताम्रभाष भी व्यय करना नहीं चाहते।"

परिचारक ऊब कर बोला—

"क्या व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करता है! शुल्क क्यों नहीं बताता?"

दास-विक्रेता ने उत्तेजना दिलाने के स्वर में कहा—

"पांच सौ सुवर्ण-निष्क लूगा। दे सकोगे ?"

परिचारिक ने पांच सौ सुवर्ण-निष्क गिन दिये। दास-विक्रेता चकित रह गया। कारण, इतने शुल्क में पचास तरुण दासियां मिल सकती थी। उसे पश्चात्ताप भी होने लगा कि क्यों न उसने और अधिक शुल्क मांग दिया। बेचारा दास-विक्रेता शिथिल-मन से उस स्त्री के पास पहुंचा और बोला—

"आपके भाग्य अच्छे हैं। रथ पर बैठी उस देवी ने आपको स्वीकार कर लिया है।"

स्त्री ने दृष्टि उठाकर रथ की ओर देखा। कुवलया उसी की ओर स्निग्ध आंखों से देख रही थी। तभी परिचारक ने स्त्री से कहा—

"विलंब न कीजिए आर्ये ! स्वामिनी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

स्त्री का रोष जाता रहा। कटार अपी बेणी में खोंस कर वह अपने पुत्र के साथ परिचारक के पीछे हो ली।

कुवलया ने आदेश दिया—

"रथ को अपने भवन की ओर मोड़ दो।"

"क्या धवल-गृह नहीं चलना होगा ?"—सारथी ने जिज्ञासा की।

कुवलया ने तत्क्षण उत्तर दिया—

"नहीं !" कुवलया दासी स्त्री के पुत्र को अपलक निहारती हुई बोली। किंतु, बालक गंभीर रूप धारण किये रथ पर बैठा रहा।

उस स्त्री एवं बालक को साथ लेकर कुवलया अपने भवन में लौट आयी। भवन के दास-दासियों को आश्चर्य नहीं हुआ। वे लोग उस भवन में इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें देख चुके थे।

कुवलया उस स्त्री एवं बालक को लेकर सीधे ऊपर के चतुःशाल में पहुंची। वहां उपस्थित दासियों को भोज्य-पान लाने का आदेश देकर आगंतुकी के साथ वह अपने निजी प्रकोष्ठ में पहुंची।

"यहां बैठ जाओ !"—कुवलया ने बालक से कहा। बालक अपनी मां का मुंह देखने लगा। कुवलया बालक के संस्कार से अभिभूत हो उठी। बोली—

"तुम भी बैठ जाओ बहन !"

"दासी को स्वामी के समक्ष बैठना नही चाहिए।"—स्त्री ने अनुग्रह के स्वर में कहा। कुवलया उसकी बांह पकड़ कर उसे पर्यंकिका पर बिठाती हुई बोली—

"जिस दिन तुम्हारी जैसी तेजस्विनी स्त्री दासी होने लगेगी, उस दिन समस्त नारी-जाति का स्वत्व विनष्ट हो जायेगा।"

"यह आपकी महानता है देवी। किंतु, मुझे भी अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार रखना चाहिए। दास-विक्रेता को आपने मुंह मांगा शुल्क देकर मुझे मोल लिया है। अतएव…"

"तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। और, मैं आज्ञा देती हूं कि बैठ जाओ…अपने को दासी मत समझो। भोजन, विश्राम के पश्चात् तुम जहां चाहो जा सकती हो।"

"आप सचमुच देवी हैं आर्ये।"—स्त्री ने आंखों में आंसू भर कर कहा। कुवलया ने झट उसके आंसू पोंछ दिये और मुस्करा कर कहा—

"तुम्हें यह जानकर दुख होगा बहन कि मैं देवी नहीं, गणिका हूं।"

इस बार बालक अचानक ही बोल उठा—

"गणिका क्या होती है मां ?"

कुवलया आश्चर्यचकित दृष्टि से भोले-भाले बालक के मुंह को देखने लगी। बालक का मुख-मंडल उसे पहचाना हुआ-सा लगा। उसकी इच्छा हुई कि बालक को खींचकर अपने हृदय से लगा ले। स्त्री ने बालक को स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए उत्तर दिया—

"गणिका नारी जाति की आशंकाओं का वरण कर समाज के जीवन-सुख की बलि-वेदी पर उत्सर्ग हो जाने वाली साम्राज्य दीक्षित भैरवी है पुत्र।"

"मैं छमझा नहीं।"

"समय आने पर समझ जायेगा पुत्र।"

बालक चुप हो गया। कुवलया मुग्ध होकर माता-पुत्र की बातें सुन रही थी। अंततः उसने जिज्ञासा प्रकट कर दी—

"क्यों बहन ! दास-विक्रेता के चंगुल मे तुम कैसे फंस गयी ?"

"बहुत लंबी कहानी है देवी। भाग्यचक्र सदा अज्ञात दिशा की ओर

ही चलता है। कहां थी ? कहां चली आयी ? कहां जाऊंगी ?—क्या पता ? क्या जानती थी कि साक्षात् मृत्यु के मुंह से निकल कर आपकी जीवनदायिनी छत्रछाया के नीचे विश्राम पाऊंगी ?"

"हां ! पिताछ्ली तो गिलिव्लज नगर के ही लहने वाले हैं ?"

"हां पुत्र !"

"तो इनछे कहो पिताछ्ली को बुला देंगी।"—बालक ने कुवलया की ओर उंगली का संकेत करके कहा। कुवलया को बालक का सान्निध्य प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिला। उसने बालक से कहा—

"मेरे पास आओ तो मैं तुम्हारे पिताश्री को अवश्य बुला दूंगी।"

"झूठ !"—बालक ने हंसकर कहा। कुवलया विभोर होकर बोली—

"सच ! वचन देती हूं।"

"पिताछ्ली को अवश्य बुला दीजिएगा ?"

"हां ! किंतु, मेरे पास आकर मुझे बताओ। तुम्हारे पिताश्री क्या करते हैं ?"

"मेरे पिताछ्ली बहुत बड़े वीर हैं। इतना बड़ा धनुष, इतना बड़ा खड्ग और इतना बड़ा•••।"

अभी बालक अपने दोनों छोटे-छोटे हाथों को फैलाकर धनुष, खड्ग आदि का वर्णन कर ही रहा था कि भोज्य-पान सामग्री लेकर दासियां आ पहुंचीं। बालक चुप हो गया।

दासियों ने वहीं भोज्य-पान सामग्री सजा कर रख दी।

कुवलया ने बड़े स्नेह से अपने अतिथियों को भोजन कराया। भोजन करा चुकने पर कुवलया ने उन्हें कष्ट देना उचित नहीं समझा। उसने दासियों को आदेश देकर अपने शयन-कक्ष के बगल वाले प्रकोष्ठ में उन दोनों के विश्राम की व्यवस्था करवा दी।

दोनों के चले जाने के बाद कुवलया अकेली बैठी-बैठी विस्मृति के मनोरम प्रदेश में भटकने लगी। बालक का मुख-मंडल रह-रह कर उसके मानस-पटल पर चित्रित हो उठता। आह्लाद की वेदना से तड़प कर वह अपनी आंखें मीच लेती। अश्रु-बिंदुओं के प्रहार से उसका दग्ध वक्षस्थल कुछ शांत होता और तब वह पुनः विभिन्न कल्पनाओं में खो जाती।

आचार्यपाद के आदेश का रहस्य अछोर बनकर उसकी चेतना से लिपट गया।



संपूर्ण चम्पा में रत्न-विक्रेता मणिभद्र के रत्नों की धूम मच गयी। विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य रत्नों का ऐसा चमत्कारिक भंडार, चम्पा के धन-कुबेर श्रेष्ठियों ने भी कभी नहीं देखा था। सबसे विचित्र बात थी उसकी चुनौती। उसके पास भी जितने रत्न थे— अद्वितीय थे। उसका कथन था कि यदि उसके रत्न का जोड़ा कोई प्रस्तुत कर दे तो वह अपना बहुमूल्य रत्न निःशुल्क दे देगा। दो-तीन श्रेष्ठियों ने इस चुनौती का लाभ भी उठा लिया।

महाराज ब्रह्मदत्त तक यह बात पहुंची। पूर्वजों के समय से उनके रत्न-भंडार में अपूर्व रत्न पड़े थे। उन्होंने सोचा कि क्यों न रत्न-विक्रेता के रत्नों का जोड़ा प्रस्तुत करके कुछ लाभ उठा लिया जाय।

रत्न-विक्रेता मणिभद्र बड़े ठाठ-बाट से महल में पहुंचा। कई सौ दास-दासियां रत्न-मंजूषाएं लेकर उसके साथ ही पहुंचीं। महाराज ब्रह्मदत्त उसके रत्नों का अवलोकन करते ही चकित रह गये। एक से एक अद्वितीय रत्न देखकर उनकी आंखों में चकाचौंध उत्पन्न हो गयी। किंतु, चम्पा राजभंडार में भी अनमोल-अद्वितीय रत्न पड़े थे। कुछ रत्नों का जोड़ा भी बैठ गया। मणिभद्र वचन का पक्का था। सहस्रों सुवर्ण-निष्क के रत्न उसने महाराज को निःशुल्क दे दिये।

महाराज की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उन्होंने मणिभद्र की प्रशंसा करते हुए कहा—

"रत्न का ऐसा भंडार तो कुबेर के पास भी नहीं होगा भणे श्रेष्ठि-प्रवर !"

मणिभद्र ने कहा—

"यह तो आप उच्छिष्ट माल देख रहे है महाराज ! आधा से अधिक माल तो दस्युराज ने मुंह-मांगा शुल्क देकर ले लिया।"

"दस्युराज भट्टिय ? वह कहां मिला आपको ?"

"मैं काशी से दक्षिण होकर चम्पा आया हूं। आप जानते ही होंगे कि मगध इन दिनों व्यापारियों के लिए निरापद नहीं रहा। इसीलिए इतना चक्कर लगाकर यहां आ रहा था कि पथ में भट्टिय के सैनिकों ने मुझे लूट लेने के विचार से घेर लिया। मेरे सार्थवाह के रक्षक सैनिक भी मरने-मारने को सन्नद्ध हो गये। किंतु, वाह रे भट्टिय ! सचमुच सिंह पुरुष है। उसने अपने योद्धाओं की बड़ी भर्त्सना की। कहने लगा—"व्यर्थ के संघर्षों में तुम्हें अपनी शक्ति नष्ट नहीं करनी है। तुम्हारा उद्देश्य महान् है। दस्युवृत्ति बहुत हो चुकी—अब हमें उस पापी राजा के आर्यपट्ट पर आधिपत्य स्थापित करना है जिसने अपनी भतीजी तथा नाती तक का हरण करने का कुकर्म किया है।"

"किंतु, दस्युराज भट्टिय तो अवन्ति की ओर गया हुआ है।"

"उधर से ही तो आ रहा था महाराज। पता नहीं, अब कौन उसकी क्रोधाग्नि में जलकर भस्म होने वाला है। बहुत ही पराक्रमी है। उदारता और दानवीरता में भी एक ही है। मुझसे रत्न क्रय करके उसने उन रत्नों को हवा में उछाल दिया। उसके सभी सैनिक रत्न बटोरने लगे और उसका जय-जयकार करने लगे।"

"अरे वह पराक्रमी क्या रहेगा ! भाग्यशाली है ! उसकी पत्नी और उसका बेटा मृत्यु के मुंह से निकल भागे या पता नहीं कहां चले गये।"

"अच्छा ? उसकी पत्नी और पुत्र कहीं चले गये ?"

"हां ! महाराज दधिवाहन के राज्यकाल में, उसने चम्पा की प्रजा को संत्रस्त कर दिया था। ज्यों ही मैं आर्यपट्ट पर बैठा, वह अपनी पत्नी

एवं पुत्र को चम्पारण्य में ही छोड़, प्राण लेकर अवन्ति की ओर भाग गया। मेरे सैनिक उसकी पत्नी तथा पुत्र को बंदी बनाकर ला रहे थे कि रास्ते में किसी ने उन सैनिकों को बाण से बेध डाला।"

"ओहो ! तभी वह बहुत क्रुद्ध था।"

"उसके योद्धाओं की संख्या कितनी है ?"

"बहुत है महाराज ! और सब एक से एक शूरवीर ! उसके दल में लगभग दस सहस्र योद्धा होंगे। और, वह अपने योद्धाओं के साथ सुहमा की ओर बढ़ रहा था !"

महाराज ब्रह्मदत्त गंभीर विचार में डूब गये। उनका चंचल मन भूल गया कि सामने रत्न-विक्रेता मणिभद्र बैठा है। मणिभद्र ने स्थिति से लाभ उठाकर विनीत स्वर में पूछा—

"क्या दस्युराज आप पर ही क्रुद्ध है महाराज ?"

महाराज ब्रह्मदत्त गरज उठे—

"मुझ पर क्रुद्ध होकर वह मेरा क्या बिगाड़ लेगा ? उसे चुटकियों में मसलकर रख दूंगा।"

"यदि ऐसा है महाराज, तो समय रहते चेत जाइए। मैं तो व्यापारी ठहरा—युद्ध-नीति क्या जानू ? किंतु, देश-देश घूमता रहता हूं। तक्षशिलीय युद्ध-नीति तो यही है कि शत्रु को आक्रमण करने का अवसर ही मत दो !"

"तुम ठीक कहते हो श्रेष्ठिप्रवर ! हम उसे अंग की सीमा में घुसने के पहले ही समाप्त कर देंगे।"

"तो मुझे आज्ञा है महाराज ?"

"एं, हां ! तुम जा सकते हो। किंतु, ठहरो ! तुमसे मैंने रत्न तो लिये ही नहीं।"

महाराज ब्रह्मदत्त रत्न-विक्रेता से बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने बहुत से रत्न बिना देखे-परखे ही ले लिये। सहस्रों सुवर्ण-निष्क लेकर मणिभद्र धवलगृह से बाहर निकल आया।

निषद्या में पहुंचकर मणिभद्र ने अपने साथी से कहा—

"सामंत विशाख ! नायक वरुणदत्त के पास यह सूचना लेकर तुम्हें

स्वयं जाना होगा।"

"जाऊंगा मित्र! अवश्य जाऊंगा।"

"उन्हें सूचना देकर शीघ्र वापस आ जाओ। कारण, अंग सेना के नगर से प्रयाण करते ही नायक वरुणदत्त को पुनः सूचना भेजनी होगी।"

"ऐसा ही होगा सामंत मणिभद्र।"

संध्या-काल के समय चम्पा के पूर्वी भाग में स्थित विशाल अश्वारोही तीर की गति से निकला और नगर-द्वार की ओर बढ़ चला।



मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र राजभक्त, कर्त्तव्यपरायण, न्यायप्रिय एवं पराक्रमी पुरुष थे। वंश-परंपरा से वे मौल सेना के सेनाध्यक्ष नियुक्त हुए थे। उनके अतिरिक्त, मौल सेना के नब्बे प्रतिशत नायक, गौल्मिक एवं सैनिक वंश-परंपरा से ही अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित थे और राज-भक्ति का संस्कार उनके रक्त में प्रवाहित हो रहा था।

गिरिव्रज की शोचनीय दशा देखकर देवमित्र अत्यधिक चिंतित थे। महाराज रिपुंजय की रंग-रेलियां उन्हें असह्य थीं। किंतु, महामात्य की आर्यपट्ट पर लगी लोलुप दृष्टि को भी वे सतर्कता से देख रहे थे। "मेरे जीते जी महामात्य पुलिकसेन अपने कलुषित स्वप्न को साकार नहीं कर सकेंगे"—ऐसा देवमित्र का संकल्प था। महामात्य पुलिकसेन भी देवमित्र के इस भाव से परिचित थे।

मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र राजाज्ञा पाकर अंग की ओर चल पड़े। उनके

साथ बीस सहस्र कुशल अश्वारोही योद्धा थे—एक-एक योद्धा दस-दस शत्रु-सैनिकों का सफल प्रतिरोध करने में समर्थ।

देवमित्र के आश्चर्य की सीमा नही रही, जब उन्होंने देखा कि मगध की सीमा पर सर्वत्र शांति है। उन्हें अंगराज ब्रह्मदत्त के सैनिकों का कहीं चिन्ह तक दिखाई पड़ा। वे दुविधा में पड़ गये। अंतिम निश्चय करने तक उन्होंने चम्पा नदी के तट पर पड़ाव डाल दिया।

रात्रि का दूसरा प्रहर समाप्त हो रहा था। देवमित्र के स्कंधावार में सर्वत्र शांति व्याप रही थी। केवल प्रहरीगण सतर्कतापूर्वक चक्कर काट रहे थे या अपने-अपने स्थान पर सन्नद्ध खड़े थे। स्कंधावार के बाहर अंधकार घना हो रहा था। चम्पा नदी के तट पर देवमित्र के प्रहरी, अधिक सावधान होकर, नदी के जल में एवं उस पार दृष्टि जमाये खड़े थे।

तभी अचानक, स्कंधावार के दक्षिण से बहुत-से अश्वारोही, अंधकार में काले बादलों की तरह चले आते दिखाई पड़े। प्रहरियों ने नगाड़े पर तड़ातड़ चोट मारना शुरू कर दिया। तूर्य, पटह, नान्दीक, गुंजा, शंख एवं शारंग के विकट घोष से आकाश फटने लगा। योद्धा-गण गहरी नींद से जाग उठे।

किंतु, तब तक पर्याप्त विलंब हो चुका था। अचेत मौल सेना शत्रु-पक्ष के बाणों से सत्रस्त हो उठी। देवमित्र व्यूह-रचना में जुट गये। निस्तब्ध वातावरण ज्वालामुखी-सा अचानक फूट पड़ा। पटह, नांदीक, गुंजा, नक्कारा, शंख आदि की गूंज योद्धाओं के चीत्कार और अश्वों की हिनहिनाहट में मिलकर भयावह स्वर उत्पन्न करने लगी।

देवमित्र ने बहुत प्रयत्न किया, किंतु उनके योद्धा कीट-पतंग की तरह पटापट मरने लगे। प्राण बचाना कठिन हो गया। मौल सेना में हाहाकार मच गया। देवमित्र किसी विध अपने योद्धाओं को उत्साह दिलाते रहे। बाणों के प्रहार से उनके अंग-प्रत्यंग से रक्त की धार झर रही थी। फिर भी वे धीरज के साथ व्यूह-रचना में लगे रहे।

नायकों एवं गौल्मिकों ने सेना का व्यर्थ विध्वंस देखकर सेनाध्यक्ष देवमित्र को भाग चलने का परामर्श दिया। देवमित्र क्रोध से जल उठे—

"कायरो! ऐसी बात कहते हुए तुम्हारी जिह्वा नहीं गल गयी? सहस्रों वर्ष से अक्षुण्ण मौल-सेना की कीर्ति को मिट्टी में मिला देना चाहते हो?"

"किंतु बीस सहस्र योद्धा निरर्थक ही मिट्टी में मिल जायेंगे सेनापति।" नायकों ने साहस बटोरकर कहा। देवमित्र गरज उठे।

"बीस सहस्र नहीं, बीस लाख कट मरें। प्रश्न मौल सेना की कीर्ति और परंपरा को अक्षुण्ण रखने का है। नायक, तुम्हारी माताओं ने तुम्हें वीर-पुत्र समझ कर दूध पिलाया है, कलंक समझ कर नहीं। तुम्हें अपनी मां के दूध की मर्यादा रखनी है।"

"जैसी आज्ञा सेनापति !"

सेनाध्यक्ष का आदेश लेकर नायक एवं गौल्मिक मुड़े ही थे कि दूसरा चमत्कार हुआ। शत्रु-पक्ष का प्रहार अचानक शिथिल पड़ गया। बाण-वर्षा थम गयी। देवमित्र ने आश्चर्यचकित होकर सुना कि शत्रु-पक्ष की सेना चीत्कार करती हुई भाग रही है। अंधकार में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। देवमित्र के साथ-साथ उनके योद्धागण भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में खड़े थे कि उत्तर दिशा से एक अश्वारोही द्रुत गति से देवमित्र के पास आकर ऊंचे स्वर में बोल उठा—

"मगध महाजनपद की जय हो !"

"आप कौन हैं भ्राता ?"

"कार्य संपन्न होने पर मालूम हो जायेगा मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र जी। शत्रु के पृष्ठ भाग पर, दक्षिण से मागध वीरों ने आक्रमण कर दिया है। यही अवसर है। अपने सैनिकों को आदेश दीजिए कि वे पिल पड़ें—शत्रु को छिन्न-भिन्न करके धूल में मिला दें।"

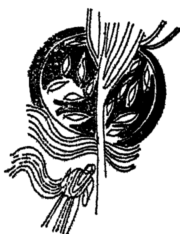
"साधु मागध देवता ! ऐसा ही होगा।" सेनाध्यक्ष देवमित्र ने नवागंतुक से कहा और वे अपने नायकों को समुचित आदेश देने लगे।

मौल सेना में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। धोखा देकर, युद्ध-नीति के विरुद्ध आचरण करनेवाले शत्रुओं के प्रति प्रतिशोध की भावना से वे उन्मत्त हो उठे। मागध देश के जय-जयकार से अंधकार का वक्षस्थल विदीर्ण हो गया। खड्ग से खड्ग और शल्य से शल्य भिड़ गये। अंग देश की सेना चारों ओर से घिर गयी। मगध की मौल सेना का पराक्रम पराकाष्ठा को पहुंच गया। देवमित्र की देह से झर-झर रक्त बहता रहा और वे अश्व नचा-नचा कर, अंग के चुने हुए वीरों का शिरोच्छेदन करते रहे।

दक्षिण से शत्रु-पक्ष पर आक्रमण करनेवाले अज्ञात योद्धा साक्षात् रुद्र के गणों की तरह ब्रह्मदत्त की सेना का विनाश करने लगे। उनका एक-एक योद्धा इन्द्र की तरह पराक्रमी एवं दुर्धर्ष था, कार्तिकेय की भांति अजेय था, शिव की तरह प्रलयकर था।

ब्रह्मदत्त की सेना के सैनिक खड्ग एवं शल्य फेंक-फेंक कर चम्पा में छलांग लगाने लगे। जिसका जिधर सींग समाया, उधर ही भाग निकला। शेष वहीं खेत रहे।

प्रातःकाल होते-होते युद्ध थम गया। चारों ओर सहस्रों योद्धाओं के छिन्न-भिन्न अंग पड़े दीखने लगे। रक्त से भूमि गीली हो गयी। आकाश में सैकड़ों गिद्ध एवं कौवे मंडराने लगे। योद्धाओं के सहस्रों शवों से शांति का करुण संगीत फूट कर हवा में, भूमि पर एवं चम्पा नदी के जल पर तिरने लगा। विराट् प्रकृति अपने कुपुत्रों की लीला देखकर लाज से झुक गयी।



मध्याह्न समाप्ति पर था। चम्पारण्य के भीतर मगध के मौल सेनाध्यक्ष परमवीर देवमित्र, अपने कांडपटमंडप में नायकों सहित सामने बैठे हुए, तरुण की बातें सुन रहे थे। तरुण कह रहा था—

"हम मगध की जय कहते हैं, क्योंकि मगध राजा से ऊंचा है। मगध नहीं रहा तो मगधपति कहां रहेगा ?"

मैं आपकी बात समझ गया पुरुष सिंह ! मेरा इतना ही अनुरोध है कि आप राजा को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करें। राजा के अभाव में मगध

अनाथ हो जायेगा। हैहयवंशी विदेशी महामात्य पुलिकसेन मगध के सहस्र वर्ष प्राचीन बार्हद्रथ राजवंश को समूल नष्ट करने पर तुला हुआ है।"

"इसके लिए हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी सेनाध्यक्ष देवमित्र जी! आपको कदाचित् मालूम नहीं है कि पुलिकसेन ने अपनी शक्ति असीमित कर ली है। समस्त क्षत्रिय वर्ग को उसने राजा के विरुद्ध कर दिया है। एक आप बाधक थे सो यहां चम्पारण्य में पड़ाव डाले पड़े हैं।"

"हम कल ही यहां से प्रयाण कर देंगे। आपको भी हमारे साथ चलना होगा!"

"यह असंभव है!"

"क्यों?"

"अभी आपसे मैंने निवेदन किया कि हम लोग अपने आचार्य के अनुशासनबद्ध शिष्य हैं। हम तो निमित्त मात्र हैं। जब तक आचार्य की या सेनापति भट्टिय की आज्ञा नहीं होगी, हम लोग मर कर भी इस स्थान को नहीं छोड़ सकते।"

"क्या मुझे उन महापुरुषों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा?"

तरुण ने तत्क्षण उत्तर दिया—

"क्यों नहीं! समय आने पर सब-कुछ अपने-आप हो जायेगा। भट्टिय हेमजित को तो आप देख ही चुके हैं?"

"जी हां! क्षण-भर के लिए मगध के बाह्यास्थान मंडप में उनके प्रदीप्त पराक्रम की झलक मात्र देखी थी और आज उनकी अजेय शक्ति का आभास मिल गया। उस घटना के आज प्रायः आठ वर्ष···"

अभी मौल-सेनाध्यक्ष देवमित्र ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि एक सैनिक वेशधारी तरुण कांडपटमंडप में घबराया हुआ आ पहुंचा। तरुण पसीने से लथपथ हो रहा था और उसकी सांस फूल रही थी। उसने कांडपट-मंडप के भीतर प्रविष्ट होते ही वहां बैठे तरुण का अभिवादन किया। तरुण ने किंचित् कौतूहल से आगंतुक को देखा। आगन्तुक बोल उठा—

"भंते! नायक वरुणदत्त जी! गिरिव्रज में अनर्थ हो गया।"

वहां बैठा हुआ तरुण वरुणदत्त, काल्पनिक आशंका से विचलित होकर उठ खड़ा हुआ। क्षण-भर में उसके मस्तिष्क में उसकी बहन वसुमित्रा की

असहाय मूर्ति कांप उठी। वरुणदत्त ने चौंक कर उठते हुए पूछा—

"क्या हुआ मित्र ? वसुमित्रा तो सकुशल है ?"

"हां नायक ! बहन वसुमित्रा आचार्यप्रवर के संरक्षण में सकुशल हैं। किंतु…"

आगंतुक युवक ने किंतु कहकर मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र की ओर देखा। वरुणदत्त आश्वस्त होकर आसन ग्रहण करता हुआ बोला—

"किंतु क्या ?"

"बार्हद्रथवंशी महाराज रिपुंजय अब इस संसार में नहीं रहे।"

यह बात सुनते ही देवमित्र चौंक कर उठ खड़े हुए—

"कहते क्या हो युवक ?"

"सत्य ही कहता हूं सेनाध्यक्ष देवमित्र जी ! महाराज रिपुंजय की हत्या कर दी गयी।"

"किसने हत्या की ? मैं उस व्यक्ति का…"

वाक्य के बीच में ही नवागंतुक बोल उठा—

"स्वयं महामात्य पुलिकसेन ने अपने खड्ग से महाराज रिपुंजय का सिर से धड़ अलग कर दिया और वहां खड़े सभी क्षत्रिय वीर देखते ही रह गये।"

"इतनी बात सुनते ही सेनाध्यक्ष देवमित्र क्रोध से कांपने लगे। उनकी आंखों से चिनगारियां फूटने लगीं। आवेश में आकर उन्होंने म्यान से खड्ग निकाल कर कहा—

"महावीर वरुणदत्त ! मैं आपका आभारी हूं कि घोर विपत्ति के समय आपने सहायता देकर हम लोगों के प्राण बचाये। इस अनुग्रह को हम मौल वीर कभी नहीं भूलेंगे। हम आज ही गिरिव्रज के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। यदि मैं जीवित रहा तो आपके सेनापति और आपके आचार्य के दर्शन करूंगा।" तभी कांडपटमंडप में गंभीर घोष गूंज उठा—

"आचार्य के दर्शन तो अभी कर लो सेनाध्यक्ष देवमित्र ! किंतु, फिर भी तुम गिरिव्रज नहीं जा सकोगे !"

"आप आचार्य शैवलिक !"—सेनापति देवमित्र विस्फारित दृष्टि से आचार्य को देखते हुए बोले। वरुणदत्त ने तत्क्षण आसन से उठकर आचार्य

की अभिवंदना की। आचार्य आसन ग्रहण करते हुए बोले—

"हां मौल सेनापति ! मैं हूं तुम्हारे लिए आचार्य शैवलिक और इन मागध वीरों के लिए आचार्य औदुम्बरायण।"

महान् साधक, प्रख्यात रसायन-शास्त्री, जगत्-विख्यात ज्योतिषी, प्रसिद्ध नीति-शास्त्रवेत्ता, सिद्ध पुरुष, तपस्वी आचार्य औदुम्बरायण के नाम से मगध ही नहीं, काशी, कोशल, अंग, वज्जि, मल्ल आदि सोलहों महा-जनपद सुपरिचित थे।

मौल सेनापति देवमित्र आचारवान् पुरुष थे। साक्षात् आचार्य औदुम्बरायण को सामने बैठे देख कर उन्होंने अपने भाग्य को सराहा और उठ कर प्रणिपात किया। क्षण-भर शांति छायी रही। करबद्ध होकर विनीत स्वर में देवमित्र ने पूछा—

"आचार्यों के आदेश के प्रति शंकालु होना अवांछनीय आचरण है। फिर भी, राजसेवक होने के नाते आचार्य के समक्ष जिज्ञासा प्रकट करने की धृष्टता करता हूं कि हम गिरिव्रज क्यों नहीं जा सकते ?"

आचार्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से मौल सेनापति को देखते हुए उद्घोषणा की—

"राज-सेवक होने के नाते ही तुम्हारा गिरिव्रज जाना वर्जित है। कारण, हैहयवंशी महामात्य पुलिकसेन ने अपने पुत्र कुमारसेन को मगध के आर्यपट्ट पर प्रतिष्ठित करने के पश्चात् तुम्हें अंग की सीमा पर रहने का आदेश दिया है। संदेशवाहक आता ही होगा। और मागध होने के नाते, तुम्हें, बहुत पूर्व ही गिरिव्रज का परित्याग कर देना चाहिए था।"

"किंतु, हम मौल सैनिक तो राजा के परंपरागत अंधा अनुचर हैं। राजा के विद्रोही को किस प्रकार..."

"राजा मर गया सेनापति ! अब तुम्हारे समक्ष है मगध और उसका आर्यपट्ट। परंपरा व्यक्ति की नहीं होती—संस्थान की होती है, समाज की होती है और देश की होती है। इसी परंपरा का सूक्ष्म सत्य कालांतर से आचार्यों का अवलंब पाकर संस्कृति और धर्म का रूप ग्रहण कर लेता है। तुम जिसके पीछे चल रहे हो वह भ्रम ही नहीं, भ्रम की छाया है। आस्था का त्याग करने को मैं नहीं कहता किंतु अभीष्ट का सत्य जान लेना

आवश्यक है। विचार कर लो सेनापति ! मैं आयुष्मान् वरुणदत्त को लेकर इसकी कुटिया में जाता हूं।"

आचार्य औदुम्बरायण सेनापति देवमित्र के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कांडपटमंडप से बाहर चले गये। वरुणदत्त अनुचर की भांति उनके पीछे हो लिया।



गिरिव्रज नगर में भयावह शांति व्याप्त थी—ऐसी शांति जो ज्वालामुखी के फटने से पूर्व परिलक्षित होती है। जो प्रलयंकारी झंझावात् के आगमन का संकेत करती है। जो श्मशान में प्रतिपल गूंजती रहती है। जो गृहपतियो द्वारा त्यक्त जन-शून्य अट्टालिकाओं के गवाक्षों में प्रचंड वेग से टकरानेवाली वायु में ध्वनित होती है।

आज परम भट्टारक, परम शैव, परम माहेश्वर बार्हद्रथ वंश कुलावतंस जरासंध ध्वजधारी महाराज रिपुंजय अपनी घोषणा को कार्यरूप देनेवाले थे। आज ही वे, मध्याह्न काल में सैनिकों सहित, क्षत्रिय कुलावतंस चन्द्रमित्र के भवन जाकर उनकी अक्षत यौवना कुमारी कन्या परम रूपवती वसुमित्रा का बलपूर्वक हरण करनेवाले थे।

संपूर्ण गिरिव्रज मौन था। क्षत्रिय समाज भीतर-ही-भीतर उबल रहा था। आकस्मिक उत्पात की आशंका से पीड़ित श्रेष्ठियों ने अपना क्रय-विक्रय बंद कर दिया था। राज-पथ, पण्य-पथ. वीथी-पथ, हट्ट आदि प्रातःकाल से ही जनशून्य हो गये थे। अट्टालिकाओं एवं भवनों के

गवाक्षों से भयातुर दृष्टियां सामने के पथों पर झांकती दीख रही थी।

मध्याह्न से कुछ ही घड़ी पूर्व अश्वारोही सैनिकों ने नगर मे घूम-घूम कर घोषणा की—

"आज सायंकाल धवल-गृह के दक्षिणी उद्यान में समाजोत्सव होगा। परम भट्टारक परम शैव, परम माहेश्वर, बार्हद्रथवंश कुलावतंस जरासंध ध्वजधारी महाराज रिपुंजयदेव प्रजा-रंजन के निमित्त नवीन पट्टमहिषी के साथ समज्या में पधारने की कृपा करेंगे। गिरिव्रज के विशिष्ट नागरिक राज-निमंत्रण के अधीन समज्या में सम्मिलित होंगे। नागरिकों को राज्या-देश दिया जाता है कि वे सायंकाल होते ही अपने-अपने कुटीरों, भवनों एवं अट्टालिकाओं पर दीपोत्सव का आयोजन करेंगे।"

सैनिकों का उद्घोषणा-स्वर निस्तब्ध नगर की वीथियों में श्वान-रोदन की चीख की तरह दीवारों से टकरा-टकरा कर प्रतिध्वनित होता रहा। अपने घरों में दुबके बैठे नागरिक जन भय से सिहर उठे।

मध्याह्न हो आया। सहस्रों भयभीत आंखे गवाक्षों से झांकने लगीं। तभी धवलगृह की ओर से रथों की घरघराहट एवं अश्वों की टापकी खट-खटाहट सुनायी पड़ी। तूर्य-निनाद से गिरिव्रज नगर दहल उठा।

महाराज रिपुंजय सैनिकों के संरक्षण में चन्दमित्र के भवन से वसुमित्रा का हरण कर, उसे रथ पर चढ़ा, धवल-गृह ले गये। तब तक नगर की निस्तब्धता में दरार पड़ चुकी थी।

लोगों ने देखा—कुमारी वसुमित्रा महाराज के पार्श्व में रथ पर खड़ी थी—निर्विशंक, निर्विकल्प, निरनुरोध!

गिरिव्रज की अट्टालिकाओं के गवाक्ष पसीज गये। राजपथों पर कोला-हल उभरने लगा। चन्दमित्र के एकशालिक में भीड़ जुटने लगी। मागध नागरिक मदिरालय में जाकर रक्त का घूंट पीने लगे।

सांध्यकाल होते ही संपूर्ण गिरिव्रज के विशिष्ट नागरिक धवल-गृह के दक्षिणी उद्यान की ओर उमड़ पड़े—राज-निमंत्रण से उत्साहित होकर नहीं, आचार्य शैवलिक की भविष्यवाणी की चर्चा से अनुप्रेरित होकर कि "राजा के साथ समज्या में सम्मिलित होकर भी वसुमित्रा कन्या ही रहेगी।"

धवल-गृह का उद्यान ऐश्वर्य के अहंकार में इठला रहा था। उसकी सजावट नंदनवन की कल्पना को भी म्लान कर रही थी। कहीं नृत्य हो रहा था, तो कहीं गान। कहीं वीणा का स्वर संतरित हो रहा था, तो कहीं मृदंग का घोष गूंज भर रहा था।

सुरा, मधु, मैरेय, मद्य, सीधु, प्रसन्ना, जाति, कापिशायनी आदि विभिन्न प्रकार की मदिरा पानी की तरह बह रही थी।

दाधिक, अपूप, सूप, पलल, मांसोदन, यवागू, भुना हुआ मांस, मधु-गोलक, संयाव, वत्सतरी का भुना मांस आदि तरह-तरह के पकवान से ऐसी सुगंध उठ रही थी कि म्लान क्षुधा भी अट्टहास करने लगे।

नागरिक जन खिन्न एवं परितप्त मन से उत्सव को देख रहे थे। निमंत्रण अस्वीकार करने से धार्मिक दोष लगता, अतएव, प्रत्येक आमंत्रित घर से किसी-न-किसी को आना ही पड़ा। इसके अतिरिक्त आचार्य शैवलिक का कथन कथा की तरह फैल चुका था।

क्षत्रिय कुल के योद्धा, रोषावेष्टित होकर समज्या में मंचातिमंच बैठे थे। कोई भी एक-दूसरे से खुल कर नहीं बोल रहा था। हवा में कौतूहल था, क्रोध था, प्रतिशोध की भावना थी, घृणा की दुर्गंध थी।

महाराज रिपुंजय पट्टमहिषी वसुमित्ना के साथ पधारे। वातावरण में सन्नाटा छा गया। बहुत-से लोग वसुमित्ना को देखकर अवाक् रह गये। अधिकतर लोग वसुमित्ना को भली भांति पहचानते थे। किंतु, महाराज रिपुंजय के पार्श्व में पट्टमहिषी के पद पर बैठी हुई वसुमित्ना बिलकुल भिन्न थी। कुछ लोग आश्वस्त हुए, कुछ लोग अपनी आंखों पर से विश्वास खो बैठे, कुछ लोग घृणा के अतिरेक से घुटने लगे। महाराज मदिरा के अतिरेक से मतछिन्न होकर टुकुर-टुकुर ताक रहे थे।

तभी तथाकथित पट्टमहिषी वसुमित्ना ने उठ कर घोषणा की—

"नागरिक जन सुनें। आज की असाधारण संध्या का असाधारण रीति से आवाहन किया जायेगा। पट्टमहिषी के गौरवपूर्ण अधिकार के अधीन मैं आप लोगों से अनुरोध करती हूं कि आप मेरी व्यथा से व्यर्थ ही व्यथित न हों। आज प्रसन्नता का पर्व है। इसे आप सब प्रसन्ना पीकर मनायें। मैं स्वयं भी पिऊंगी—महाराज को पिलाऊंगी और आप सबके समक्ष सांध्य-

नृत्य प्रस्तुत करूंगी।"

तथाकथित पट्टमहिषी की घोषणा सुन कर नागरिक जन स्तब्ध रह गये। पट्टमहिषी मदमाती चाल से आसन से उतर कर परिचारिका के पास पहुंचीं और उसके हाथ से मद्य कर्करी एवं चषक लेकर नागिन की भांति नृत्य करने लगीं।

महाराज उन्माद के रोगी की भांति शून्य दृष्टि से पट्टमहिषी को देखते रहे। पट्टमहिषी ने नाच-नाच कर महाराज को मद्य पिलाना आरंभ किया। महाराज गटागट पीते रहे।

उपस्थित जन-समुदाय राजकुल की मर्यादा को खंडित होते देखती रहा। तब तक समज्या में सम्मिलित नागरिकों, क्षत्रियों, श्रेष्ठियों एवं अधिकारियों में यह बात धीरे-धीरे फैलने लगी कि पट्टमहिषी के रूप में चन्दमित्र की कन्या वसुमित्रा नहीं है—कोई और है।

महामात्य पुलिकसेन गुरु गंभीर मुद्रा में एक ओर खड़े चषक से मदिरा पी रहे थे। उनकी दृष्टि महाराज रिपुंजय पर गड़ी हुई थी। इस दृष्टि में प्रतिहिंसा की अग्नि प्रज्वलित थी। उस दृष्टि में वह सम्मोहन था जो आखेट को देखकर अजगर की आंखों में उत्पन्न हो जाता है। महाराज शनैः-शनैः बेसुध होते जा रहे थे। नागरिकजन भोजन-पान भूल कर असाधारण पट्टमहिषी का असाधारण नृत्य व्यवहार देख रहे थे।

अचानक महाराज रिपुंजय पट्टमहिषी के सम्मोहन के वशीभूत होकर आसन से उठ खड़े हुए और लड़खड़ाते-डगमगाते हुए पट्टमहिषी की ओर बढ़े। पट्टमहिषी उन्हें छलती हुई, उत्तेजित करती हुई, कामांध बनाती हुई स्थान बदल-बदल कर नृत्य करती रही। महामात्य की आंखों की अग्नि लपटें मारने लगी। महाराज के हाव-भाव से काम-चेष्टा प्रकट होने लगी। पट्टमहिषी के कटि-प्रदेश की द्रुतगति ने महाराज के हृदय में हलचल उत्पन्न कर दी। पट्टमहिषी विद्युत की नाई महाराज के पास आतीं—महाराज के मुंह में मधुपात्र लगा देतीं और तत्क्षण अपने क्षणिक स्पर्श के स्पंदन से महाराज को बेसुध व कामांध बना कर दूर चली जातीं।

महाराज व्याकुल होकर पट्टमहिषी के पीछे भागने लगे। वे समज्या को भूल चुके थे—समज्या में आमंत्रित नागरिकों को भूल चुके थे—

अपने को भूल चुके थे—अपनी मर्यादा को भूल चुके थे। अंत में पट्ट-महिषी ने चमक कर मधु-पात्र महाराज के होठों से लगाया ही था कि महाराज ने निर्लज्ज की तरह पट्टमहिषी को आलिंगनबद्ध कर लिया। सहस्रों आमंत्रित नागरिकों के समक्ष पट्टमहिषी महाराज के आलिंगन पाश में जकड़ गयीं, उनके मादक अधर महाराज के अधरों से गुथ गये। पलक झपकने जितना भी विलंब नहीं हुआ और महाराज निष्प्राण होकर भूमि पर लुढ़क पड़े।

समज्या में हाहाकार मच गया। उपस्थित लोगों में से कई के मुंह से अनायास निकल पड़ा—

"विषकन्या !"

कुछ लोग चीख पड़े—

"भयंकर षड्यंत्र !"

महाराज कर्तव्यच्युत होते हुए भी, प्रजा के रक्त मे संस्कार की तरह संपृक्त थे। बहुत से लोग षड्यंत्रकारियों के विरुद्ध उबल पड़े—

"महाराज की हत्या करवाने वाला राजद्रोही है—देशद्रोही है।"

कुछ लोगों ने पुकार मचायी—

"विषकन्या को पकड़ो। भागने न पाये।"

उसी समय महामात्य पुलिकसेन हाथ में नग्न खड्ग लिये उछल कर विषकन्या के पार्श्व में आ पहुंचे और गरज कर बोले—

"हां-हां ! यह षड्यंत्र है। कर्तव्य-च्युत राजा दंड से परे नहीं होता। इस नराधम मृत राजा का मैं स्वयं शिरोच्छेदन करके विषकन्या का पुण्य अपराध अपने सिर लिये लेता हूं।"

इतना कहकर महामात्य पुलिकसेन ने घुटनों के बल बैठकर मृत महाराज रिपुंजय का खड्ग के एक ही प्रहार से शिरोच्छेदन कर दिया। यह जघन्य कृत्य देखकर उपस्थित लोग सिहर उठे। किंतु, जनसमुदाय में सम्मिलित क्षत्रिय वर्ग निर्लिप्त भाव से यह कांड देखता रहा। नागरिकों ने किंचित् कोलाहल मचाया कि तभी पुलिकसेन की वज्र-प्रहार जैसी घोषणा सुनायी पड़ी—

"नागरिक जन सुनें ! बार्हद्रथवंश का अंतिम राजा रिपुंजय अपने

कुकर्मों के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ। आर्यपट्ट कभी रिक्त नहीं रह सकता। इसलिए, मगध के महामात्य पद में निहित अधिकार के अधीन मैं पुलिकसेन, हैहयवंशी बालक कुमारसेन को मगध का राजा घोषित करता हूं। कल प्रातःकाल राज-पुरोहित द्वारा नये महाराज आर्य-पट्ट पर अभिषिक्त किये जायेंगे। जो कोई मेरी घोषणा का विरोध करेगा या जनपद में आतंक फैलाने का किसी विध प्रयत्न करेगा, उसे जीवित जला दिया जायेगा। मेरा आदेश है कि आप लोग अभी नये राजा की अभिषेक-घोषणा के शुभ अवसर पर आनंद मनायें, मदिरा पीयें और उद्यान में प्रस्तुत भोजन ग्रहण करें। आप लोगों को मेरा प्रसाद प्राप्त है।"

महामात्य पुलिकसेन की घोषणा सुनकर सभी मन ही मन कांप उठे। सभी ने छिपी दृष्टि से चारों ओर देखा—क्षत्रिय अपने अपमान का प्रति-कार होते देखकर निश्चित हो मदिरा पान कर रहे थे। दूर पर उद्यान के चारों ओर सशस्त्र सैनिक सन्नद्ध खड़े थे।

राजा के अनाचार से सब लोग क्षुब्ध हो उठे थे। किंतु, राजा की निर्मम हत्या अपनी आंखों के सामने होते देखकर सबके-सब आतंकित हो उठे थे—दुख से टूट चुके थे। लेकिन, प्रतिरोध करने की या बोलने की शक्ति किसी में नहीं थी। सब लोग चुपचाप मदिरा पी-पीकर अपने मन के दुखद भावों को उसी में डुबोने लगे।

उद्यान में महाराज रिपुंजय के शव के पास ही नये राजा की अभि-षेक-घोषणा का उत्सव मनाया जा रहा था। उधर इस नाटक की नायिका विषकन्या घोषा चन्दमित्र के एकशालिक की ओर अश्व पर चढ़ी उड़ी जा रही थी।



रात्रि के दूसरे प्रहर का मध्य बीत रहा था। चन्दमित्र के एकशालिक में एक अश्वारोही बेरोक-टोक चला जा रहा था। अश्वारोही के वस्त्र एवं शिरोभूषण अंधकार में भी जगमगा रहे थे। एकशालिक के द्वार तक पहुंच कर अश्वारोही अश्व से उतर पड़ा। द्वार खुला हुआ था। यथापूर्व भीतर से ध्वनि आयी—

"चले आओ महाराज पुलिकसेन !"

पुलिकसेन ने भीतर जाकर आचार्य शैवालक को नतमस्तक होकर प्रणिपात किया। आचार्य की आंखों में विचित्र प्रकार का भाव था—ऐसा भाव जो यजमान की आंखों में बलि-पशु को देखकर प्रकट होता है। आचार्य ने पूर्ववत् रूखे, गंभीर, प्रभावोत्पादक स्वर में कहा—"तुम अपने कार्य में सफल हुए पुलिकसेन ! अतएव, मेरा कार्य भी संपन्न हुआ। कल प्रातः-काल से पूर्व ही मैं यह स्थान त्याग दूंगा !"

"नहीं आचार्य ! अभी आपको कुछ दिन रुकना होगा।"

"पुलिकसेन ! आकस्मिक सफलता ने तुम्हारी विनयमें अवज्ञा उत्पन्न कर दी है। तुम कदाचित् भूल गये कि आचार्य शैवलिक राज-बंधन के रचयिता हैं। वे उससे बद्ध नहीं हो सकते !"

"उत्साहजनित भूल के लिए क्षमा चाहता हूं आचार्य !"

"जाओ ! राज-काज चलाओ! स्मरण रखो कि तुम अवन्ति के हैहय-वंशी होने के कारण मगध में विदेशी हो। और विदेशियों की सत्ता भेद,

दमन एवं सामाजिक-आर्थिक वैषम्य पर ही सुदृढ़ रह सकती है।"

"आपका संकेत मैं समझ गया आचार्य ! किंतु, यह तो बताने की कृपा कीजिए कि फिर आपके दर्शन कब होंगे ?"

"मेरे आगमन के अनुरूप समय का निर्धारण वासुदेव कृष्ण के हाथ है।"

"मुझ पर अनुग्रह बनाये रखने की कृपा तो आप करेंगे ही।"

"मैं साध्य का उपासक हूं पुलिकसेन ! साधन का मेरी दृष्टि मे कोई महत्व नहीं !"

"किंतु, मुझ पर आपने आज तक इतनी कृपा की···

"यह भी तुम्हारा भ्रम है पुलिकसेन ! अनासक्त साधक ही उत्तम साध्य के लिए अधम साधन के औचित्य को सिद्ध कर सकता है। मेरा एक स्वप्न है जिसे मैं साकार करना चाहता हूं। यह तू-तू, मैं-मै मेरे लिए असह्य है। वासुदेव कृष्ण द्वारा प्रदत्त चिंतन-शक्ति को मनुष्य तू-तू मैं-मैं के संघर्ष में नष्ट कर रहा है। उत्तर में हिमालय तथा पश्चिम एवं दक्षिण में महासागरों से घिरा हुआ भू-खंड भौगोलिक दृष्टि से एक है—इसे एक ही होना चाहिए। किंतु, स्वामित्व के स्वार्थपूर्ण अहंकार में पड़ी हुई आर्य जाति ने एक के सोलह और सोलह के सौ खंड करके रख दिये हैं। मुझे इस घृणित अहंकार को विनष्ट करना है। तभी मेरा स्वप्न साकार होगा। पुलिकसेन, मुझे परंपरा की परिभाषा गढ़नी है जिससे कि परिवर्तन के मार्ग की कठिनाई दूर हो सके !"

पुलिकसेन विस्मित दृष्टि से आचार्य शैवलिक का प्रभापूर्ण प्रदीप्त मुखमंडल देखते रहे। उनकी समझ में आचार्य की बातें एवं व्यक्तित्व दोनों ही रहस्यमय थे।

आचार्य कह रहे थे—"प्रत्येक परिवर्तन समाज को परिष्कृत करता है, मानवता को उद्भासित करता है। तुमने एक व्यवस्था स्थापित की—अच्छी बात है। तुम्हारे स्थान पर दूसरा आयेगा—उत्तम बात होगी। और इसी तरह परिवर्तन होते-होते एक दिन मेरा स्वप्न साकार होगा—आज नहीं तो कल, कल नहीं तो शतसहस्र वर्ष पश्चात् ! समझे ? मेरा अनुग्रह किसी व्यक्ति पर नही—उस स्वप्न पर है जो स्वप्न होते हुए भी

सत्य है। अब तुम जा सकते हो।"

पुलिकसेन के जाते ही आचार्य शैवलिक ध्यान में डूब गये।

पुलिकसेन वर्षों से आर्यपट्ट पर आधिपत्य स्थापित करने के चक्कर में दिन-रात एक किये हुए थे। आज उन्हें सफलता मिली थी। और इसके साथ ही उनके प्रयत्न की इतिश्री हो गयी। अब उन्हें चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगा। प्रकाशपुंज की प्रखरता से उनकी आंखें चौंधिया गयीं। पथ का ज्ञान विजयोल्लास की व्यापकता में खो गया।

आरंभ से ही उनका ध्यान आर्यपट्ट पर केंद्रित था। सो आर्यपट्ट प्राप्त होते ही उनके कर्तव्य की भी इतिश्री हो गयी। वे प्रकाश में रहते हुए भी अंधकार में भटकने लगे।

पुलिकसेन का अश्व मंद गति से चला जा रहा था। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें अचानक भैरवाचार्य वक्रघोष का स्मरण हो आया। मात्र निजी स्वार्थ के लिए प्रयत्नशील मनुष्य भौतिक जगत में विफल या सफल होते ही धर्म की ओर भागता है। किंतु, ऐसी स्थिति मे धर्म नहीं, धर्म का शव उसके हाथ लगता है।

उन्होने अपना अश्व दक्षिण की ओर मोड़ दिया। नगर समाप्त होते ही वीरान प्रदेश की ओर उनका अश्व उड़ चला। मध्य श्मशान में पहुंच कर वे आम्रवन की ओर मुड़ना ही चाहते थे कि दाहिनी ओर का दृश्य देखते ही उनका साहसी मन घबराहट से कांप उठा।

लगभग दो रज्जु दूर, अंधकार का हृदय विदीर्ण करती हुई अग्नि की लपटें नाच रही थीं। अग्नि के सामने साक्षात् महाकाल का रूप धारण किये परम तांत्रिक पाताल विवर भैरवाचार्य वक्रघोष एक शव की छाती पर आसन मारे बैठे थे।

पुलिकसेन अश्व से उतर पड़े। मंत्रमुग्ध होकर वे तांत्रिक की ओर बढ़ते चले गये। तांत्रिक वक्रघोष एक सड़े हुए शव पर बैठे थे। शव का सिर कटा हुआ था। सामने नर-कपाल में रक्तिम रंग का तरल पदार्थ भरा हुआ था। वही पर एक कुम्भ रक्खा था, कुछ जवाकुसुम के फूल रक्खे थे। आस-पास हड्डियां बिखरी हुई थीं। दुर्गंध से नाक फट रही थी।

तांत्रिक वक्रघोष आंखें बंद किये मुंह से विचित्र 'ओ३म् ह्रीं स्त्री हूं क्रीं

उग्रतारे, हूं फट स्वाहा' की ध्वनि निकालते जाते और कुम्भ से तरल पदार्थ निकाल कर अग्नि में डालते जा रहे थे। तरल पदार्थ पड़ते ही अग्नि भभक उठती, हवा में दुर्गंध फूट पड़ती।

पुलिकसेन ज्यों ही वहां आकर खड़े हुए कि तांत्रिक ने आंखें बंद किये ही कहा—"तू आ गया ?"

"हां गुरुदेव !" पुलिकसेन ने यंत्रवत् उत्तर दे दिया। वे अपनी संज्ञा खो चुके थे। उन्हें लग रहा था कि वे किसी दूसरी दुनिया में पहुंच चुके हैं।

"बैठ जा ! देख, तेरे कार्य की सिद्धि के लिए वश्य-कर्म सिद्ध कर रहा हूं। आज मंगलवार है। भैरवी ने आज तेरा मनोरथ पूर्ण किया। अत एव, सकल्प कर कि प्रत्येक मंगलवार को महामांस के विक्रय का आयोजन करेगा।"

"संकल्प करता हूं गुरुदेव !"

"ओ३म् ह्री स्त्रीं क्रीं फट् स्वाहा ! बोल भैरवी को बलि चढ़ायेगा !"

"संकल्प करता हूं गुरुदेव !

"देख ! जिसे तूने उद्धारक समझ रक्खा था वह तेरा काल था। वह अभी भागा जा रहा है। मैं वशित्व सिद्धि से उसे देख सकता हूं। तुझे भी दिखा सकता हूं। बोल देख रहा है या नही ?"

पुलिकसेन घबरा कर बोल उठे—"वे तो आचार्य शवलिक है गुरुदेव !"

"हां-हां, वही ! वह तेरा काल है। देख, उसे मैं इच्छा सिद्धि से विनष्ट कर देता हूं—ओ३म् ह्रीं क्लीं हूं ह्रीं श्रीं ह्रौं हैं ह्सौः फट् परापरे सां सीं सूं सर्वशक्तिधरे सर्वा रिसूदनि रक्तमांसाशने भीमे खर्पखट्वांग धारिणि मां रक्ष रक्ष विजये मम शत्रून् विनाशय विनाशय सर्वदुष्टानरिष्टान् भ्रूं रूं क्ष्रौं भ्रैं फट् स्वाहा !"

पुलिकसेन श्मशान में बैठे थे। निस्तब्ध रात्रि का तीसरा प्रहर समाप्त होने को था। सामने उदके गुरुदेव परम तांत्रिक आज्ञासिद्ध त्रिकालज्ञ भैरवाचार्य वक्रघोष सड़े हुए शव पर बैठे हुए थे। शव का सिर कटा हुआ था। अग्नि में चर्बी की आहुति पड़ते ही आग की लपटें सांप की जिह्वा-सी

लपलपाने लगतीं। रात्रि में 'ह्रीं ह्री फट' की ध्वनि भयावहता को साकार कर देती। पुलिकसेन ने भयातुर होकर देखा कि आचार्य शैवलिक की देह से आग की लपटें उठ रही हैं। 'ह्री घ्री' की ध्वनि ज्यों-ज्यों तीव्र होती गयी—शैवलिक की देह जल-जल कर गिरने लगी। पुलिकलेन भय से पसीने-पसीने हो गये। मंत्रमुग्ध अवस्था में वे शव के पास ही गुरुदेव के चरणो पर गिर पड़े।

कुछ काल पश्चात् पुलिकसेन के कानों में गुरुदेव का स्वर सुनायी पड़ा, "उठ मूर्ख ! तेरे काल को महाकाल खा गया। जा अब राज-पाट चला। बलि का प्रबंध कर। पंचमकार के साधकों में आस्था रख। प्रत्येक मंगल-वार को महामांस के विक्रय का आयोजन कर।"

पुलिकसेन को लगा जैसे स्वप्न से उठे हों। वे गुरुदेव की अभ्यर्थना कर, अश्व पर आरूढ़ हो नगर की ओर चल पड़े। ब्राह्म मुहूर्त का समय हो गया था।



सूर्योदय होने में किंचित् विलंब ही था कि गिरिव्रज नगरवासियों ने विस्फारित आंखों से देखा, चन्दमित्र का एकशालिक धू-धू कर जल रहा है। चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग घर-द्वार छोड़-छोड़ कर एक-शालिक की ओर दौड़े। आचार्य शैवलिक नगर-देवता सदृश सबके पूज्य थे। एकशालिक को जलते देख कर लोग चीत्कार कर उठे।

कोलाहल सुनकर कुवलया जिज्ञासावश वातायन पर दौड़ी गयी।

क्षण-भर के लिए उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। किंतु, तथ्य सामने था। कुवलया किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ी रही। एकशालिक जल-जल कर स्वाहा होता रहा।

तब तक वसुमित्रा, चन्द्रबाला एवं बालक बिम्बिसार भी वहां आ पहुंचे थे। वसुमित्रा चौंक कर बोल उठी—"उसमें तो आचार्य शैवलिक रहते थे।"

"कौन आचार्य शैवलिक ?"—चन्द्रबाला ने कौतूहल से पूछा।

इस बार कुवलया अवरुद्ध स्वर में बोली—"गिरिव्रज के प्राण, मगध के उद्धारक, आर्यावर्त के स्वप्न द्रष्टा !"

बिम्बिसार कौतूहल से बोल उठा—"मां ! पिताश्री के आचार्य भी तो बहुत बड़े ऋषि हैं ?"

चन्द्रबाला ने श्रद्धायुक्त स्वर में उत्तर दिया—"वे तो त्रिकालदर्शी हैं पुत्र ! इस तरह की अग्नि में जल कर नष्ट होने वाले वे नहीं हैं।"

कुवलया के उपचेतन में जैसे कोई बात विद्युत-सी छू गयी। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से माता-पुत्र को देखा। वे दोनों, दूर पर एकशालिक की तृप्त लपटों को देख रहे थे।

वसुमित्रा की दृष्टि में तो आचार्य शैवलिक साक्षात् कृष्ण ही थे। उसने चन्द्रबाला की चुनौती स्वीकार करते हुए कहा—

"तुम्हारे पति के आचार्य चाहे जो हों किंतु, आचार्य शैवलिक मनुष्य नहीं, विष्णु के अवतार हैं। तुम्हारी यह अभागिन बहन वसुमित्रा आज उन्हीं के प्रसाद से जीवित है।"

"फिर तो बड़ा अनर्थ हो गया स्वामिनी !"—चन्द्रबाला ने कुवलया की ओर देख कर कहा। कुवलया अचानक कातर हो उठी। बोली—"मुझे स्वामिनी मत कहा करो बहन ! इससे बड़ा अपमान मेरा और कुछ नही हो सकता। मेरे भवन की अन्य दासियां भी परिचारिका के अतिरिक्त और कुछ नही हैं। फिर तुम्हें तो मैंने सहेली के रूप में ग्रहण किया है बहन !"

"मैं अपनी भूल के लिए क्षमा चाहती हूं। मैं स्वप्न में भी आपका हृदय दुखाने की कल्पना नहीं कर सकती !" इतना कहकर चन्द्रबाला ने

कुवलया के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये। कुवलया उस समय, भावोद्रेक से बहुत दुखी हो उठी थी। चन्द्रबाला के स्नेह से वह अभिभूत हो उठी। दोनों अनायास ही एक-दूसरे से आबद्ध हो गयी। क्षण-भर बाद चन्द्रबाला ने कुवलया को निहारते हुए कहा—"तुम सचमुच देवी हो ! जीवन पर्यंत मैं तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकती।"

"ऐसी बात मुंह से मत निकालो। देवी मैं नहीं, तुम हो। मुझे धर्माचार्यों के बीच गणिका का रूप धारण करना पड़ा और तुम दासों के हट्ट में भी हाथ में कटार लिये वीरांगणा जैसी प्रज्वलित रही। तुम्हारी जैसी स्त्रियां ही नारी समाज की गौरव हैं !"

"यह सब बातें अभी रहने दो बहन ! किसी को भेजकर पता तो लगाओ कि तुम्हारे आचार्य शैवलिक का क्या समाचार है ?"

तभी पक्षद्वार से गंभीर स्वर गूज उठा—

"आचार्य सकुशल हैं सुमंगली !"

चन्द्रबाला पहचानी हुई ध्वनि सुनकर चौंक उठी। उसने घूम कर देखा, सामने जटा-जूटधारी, गले में रुद्राक्ष की माला, कटिप्रदेश में व्याघ्र-चर्म, दाहिने हाथ में त्रिशूल एवं पीठ पर लाल रंग का आच्छादनक धारण किये स्वयं काल भैरव जैसे कोई महापुरुष खड़े हैं। लंबी-लंबी दाढ़ियों में मुखमंडल छिपा हुआ था। किंतु, स्वर एवं तीक्ष्ण दृष्टि से चन्द्रबाला परिचित थी। वह कुछ बोलने ही जा रही थी कि महापुरुष ने संकेत से मना कर दिया। चन्द्रबाला चुप हो गयी।

उधर कुवलया भी चकित होकर देख रही थी। महापुरुष ने कहा—

"तुमने अपने आचार्य को पहचाना नहीं ?"

कुवलया लज्जित होकर बोली—

"मैं प्रणाम करती हूं आचार्य ! आपके छद्म वेश ने तो मुझे भी भ्रम में डाल दिया।"

"तुम्हारी जय हो।"

"किंतु, आचार्य ! एकशालिक तो जल गया।"

"हां पुत्री ! कृष्ण ने रथ त्याग दिया है।"

"तो क्या युद्ध समाप्त हो गया ?"

"हां। अब राज्याभिषेक शेष है।"

"वह तो पुलिकसेन के पुत्र बालक कुमारसेन का होगा।"

कुवलया घृणा से भर कर बोल उठी। आचार्य शैवलिक पूर्ववत गंभीर स्वर में बोले—"नहीं ! तुम्हारे पुत्र का होगा।" और यह कहकर आचार्य शैवलिक ने बालक बिम्बिसार की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। कुवलया विषाद से भर गयी। बोली—

"यह अगले जन्म के स्वप्न में ही संभव हो सकेगा आचार्य !"

"मैं स्वप्न-द्रष्टा हूं पुत्री।"

"तो क्या अभी आचार्य गिरिव्रज से वाहर जा रहे हैं ?"

"हां। अंग की सीमा पर मेरी उपस्थिति अनिवार्य है। जयसेन को बुलवाने की व्यवस्था करो। शीघ्र।"

कुवलया परिचारिका को आदेश देने के लिए स्वयं दौड़ गयी। तभी आचार्य ने बालक बिम्बिसार को संबोधित किया—

"नित्य-विधान का पालन कर चुके ,आयुष्मान् ?"

बिम्बिसार ने सिर हिलाकर 'नही' का सकेत किया। आचार्य बोले—"ब्राह्म मुहूर्त में ही नित्य-विधान का निश्चित रूप से पालन हो जाना चाहिए। समय वड़ा मूल्यवान होता है। जाओ, आयुष्मती वसु ! तुम्हें आज ही अपने पिताश्री के पास चले जाना है। जयसेन तुम्हें सादर पहुचा आने के लिए आने ही वाले हैं। प्रस्तुत रहो।"

"जैसी आज्ञा।" कह कर वसुमित्रा चली गयी। बिम्बिसार मां का मुंह देखता हुआ पहले ही जा चुका था। एकान्त होते ही आचार्य ने चन्द्रबाला से कहा—

"सुमंगली ! तुम्हें यहां अपने को छद्मवेश में ही रखता है। इसी में तुम्हारा एवं तुम्हारे पति का कल्याण है। कुवलया के प्रति भी जिज्ञासा प्रकट करने का प्रयत्न नही करना। इतना जान लो कि कुवलया गणिका नहीं, देश को बेदी पर अपना समस्त जीवन, सुख एवं प्रतिष्ठा न्यौछावर कर देने वाली विदुषी है। उसे श्रद्धेया बहन का सम्मान देना।"

"ऐसा ही होगा आचार्य।"

"मैं कुछ दिनों के लिए गिरिव्रज त्याग रहा हूं। किंतु, यहा का प्रति-

दिन का समाचार मुझे मिलता रहेगा—ऐसी व्यवस्था करके जा रहा हूं। आयुष्मान बिम्बिसार क्षत्रियोचित शिक्षा प्राप्त करने योग्य हो रहा है। अतएव, इसे ऋषिगिरि पर्वत पर वयस्य आचार्य नारायण स्वामी का अन्तेवासी बन कर रहना है। इसकी व्यवस्था भी मैं कर चुका हूं।"

"तो क्या आचार्य को पता था कि मैं गिरिव्रज···?"

"गिरिव्रज पहुंचने से पूर्व ही दास-विक्रेता के सार्थवाह में मेरे शिष्य तुम्हें देख चुके थे। देवी कुवलया मेरा आदेश पाकर ही दासों के हट्ट में गयी थी!"

"मैं समझ गयी आचार्य।"

"किंतु, कुवलया तुम्हारे कुल एवं परिवार से परिचित नहीं है—और न उसे होना चाहिए! समय आने पर मैं स्वयं इसकी व्यवस्था कर दूंगा। अब तुम जा सकती हो।"

चन्द्रबाला आचार्य को प्रणाम कर चली गयी। तत्क्षण मगध के अश्व-सेनाध्यक्ष जयसेन कुवलया के साथ वहां आ पहुंचे। आते ही आचार्य शैव-लिक को प्रणिपात करके उन्होंने चिंतित स्वर में कहा—

"समाचार शुभ नहीं है आचार्य! कुमारसेन सूर्योदय से पूर्व ही गिरिव्रज पधार गये। आज युवराज पद पर उनका अभिषेक होगा।"

"यह तो होना ही था जयसेन! इसमें चिंता की क्या बात है?"

"कुमारसेन के साथ बीस सहस्र अवन्ति सैनिक भी गिरिव्रज आ पहुंचे हैं।"

"हूं!" कहकर आचार्य क्षण-भर के लिए विचारों में डूबे रहे। फिर बोले—"वे सैनिक अभी कहां हैं?"

गिरिव्रज के पश्चिमी द्वार से एक योजन दूर पहाड़ी वन-प्रदेश में पड़ाव डाले पड़े हैं। लगता है, यह सब पुलिकसेन की पूर्व निश्चित योजना के अनुसार किया गया है।"

"नही। पुलिकसेन का इसमें हाथ नहीं है। इसमें कुमारसेन···अच्छा तुम अपने पद पर सावधानीपूर्वक सन्नद्ध रहो। तुम्हारी अश्व-सेना में राज्य के पुराने सैनिक कितने हैं?"

"पाच सहस्र!"

"उन्हें धीरे-धीरे हटाने की व्यवस्था करो और अपने विश्वासपात्रों को उनके स्थानपर नियुक्त कर दो। ऐसी व्यवस्था करो कि अवन्ति सैनिक गिरिव्रज के बाहर ही पड़ाव डाले पड़े रहें, किंतु नगर का द्वार उनके लिए खुला रहे। कभी-कभी मागध सैनिकों से या नागरिकों से उनकी झड़प हो जाया करे—ऐसा उपाय भी करना होगा। यह बहुत ही अच्छा हुआ कि अवन्ति-सैनिक यहां आ पहुंचे। यह तो शुभ हुआ जयसेन अशुभ नहीं। तुम्हें अब कुमारसेन का विश्वासपात्र बनकर रहना है। कुमारसेन के अहं को तुष्ट करते रहो। शेष बातें मुझ पर छोड़ दो।"

"आचार्य की जैसी आज्ञा।"

"वयस्य आचार्य नारायण स्वामी से सर्वदा संपर्क बनाये रखो और ध्यान रखो कि अवन्ति-सैनिकों के शिविर में निपुण गणिकाएं पहुंच रही हैं, और देवी कुवलया ! चन्द्रबाला दासी अपरिचिता नहीं—तुम्हारी सहोदरा हैं !"

"आप निश्चित रहें आचार्य।"

"अच्छा तो मैं चलता हूं। कृष्ण वासुदेव तुम लोगों की रक्षा करें।"

आचार्यपाद कुवलया के भवन के पक्षद्वार से निकल कर कोलाहल-पूर्ण वीथी-पथ पर चल पड़े।



ऋषिगिरि पर्वत पर मंदिर के भीतरी प्रांगण से दो किशोर निकल कर अश्व पर आरूढ़ होने जा रहे थे कि भीतर से नारी-स्वर की ध्वनि सुन

कर रुक गये। एक की उम्र चौदह वर्ष थी, दूसरे की ग्यारह वर्ष। बड़ा किशोर अति रूपवान, बलिष्ठ एवं लंबा था। छोटा किशोर नाटा, गौर वर्ण एवं परम तेजस्वी था।

"सूर्यास्त से पूर्व ही लौट आना।"—द्वार पर खड़ी सद्यःस्नात परम रूपवती युवती ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में आदेश दिया।

छोटे किशोर ने गंभीर होकर उत्तर दिया—

"मै तो शीघ्र लौट आना चाहूगा। किंतु, इनका दायित्व मैं नहीं लेता।"

छोटे किशोर की बूढ़ों-जैसी बातें सुन कर बड़ा किशोर हंसने लगा। युवती उपालंभ से, होठों में मुस्कुराती हुई बोली—

"क्यों रे वर्षकार ! तू अभी से ही दायित्व से भागने लगा ?"

"मैं कहां भागता हूं ?"

"फिर ऐसा क्यों कहता है ?"

"इसलिए, कि यह मेरी बात नही सुनते। मनमानी करते चले जाते हैं।"

इस बार बड़ा किशोर हंसता हुआ बोला—

"चलो, मेरे-तुम्हारे बीच संधि हो जाय। जब तक मैं तुम्हारे मन से चलू—तुम मेरा दायित्व स्वीकार करोगे और ज्यों ही मनमानी करूं—मुझे छोड़कर भाग जाओगे।"

"भाग क्यों जाऊंगा ? आपको सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करूंगा।" बालक वर्षकार ने अति गंभीर होकर प्रतिवाद किया। बड़ा किशोर हंसता हुआ बोला—

"चलो। मुझे तुम्हारे संकल्प-विकल्प दोनों ही स्वीकार हैं।"

"देखो, तुम दोनों जिस महापुरुष से मिलने जा रहे हो उनकी मर्यादा के अनुरूप ही व्यवहार करना। वे जो भी आदेश करें, शिरोधार्य करना।" युवती मां ने गंभीर होकर कहा।

"तुम निश्चित रहो मां।" वर्षकार ने प्रत्युत्तर दिया। इसके पश्चात् दोनों किशोर अपने-अपने अश्वों पर आरूढ़ हो गिरिव्रज नगर की ओर चल पड़े। विश्वतारा को पाठक भूले नहीं होंगे। युवती मां विश्वतारा

ही थी।

दोनों बालकों के अश्वारोहण के ढंग से ही प्रकट हो जाता था कि बालक होते हुए भी निपुण अश्वारोही एवं कुशल योद्धा हैं। दोनों ही शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे।

गिरिव्रज नगर में प्रविष्ट होते ही उनके अश्वों की गति मंद हो गयी। हट्टियों का दृश्य देखते हुए दोनों बढ़ते रहे। हट्टियों में क्रय-विक्रय शिथिल था। व्यापारी एव आपणक उत्साहहीन थे। चारों ओर संड-मुस्टंड कापालिक चक्कर लगा रहे थे। कही महामांस के विक्रय का आयोजन हो रहा था तो कही अवन्ति सैनिक मद्य पिये हो-हल्ला मचा रहे थे। मागध सैनिक भी कहीं-कही दीख पड़ते। किंतु, वे उत्साहहीन एवं असंतुष्ट लगते थे।

किशोर वर्षकार ने गंभीर होकर कहा—"देख रहे हैं आर्य बिम्बिसार। अवन्ति के विदेशी सैनिक हमारे देश में आकर कितने धृष्ट हो गये है ?"

"देख रहा हूं बंधु वर्षकार ! किंतु, क्या करूं ? मेरा तो रक्त उबलने लगता है। इच्छा होती है कि इन सबको पेड़ से लटका कर मार दू !"

किशोर वर्षकार चुप ही रहा। दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ते रहे कि अचानक दाहिनी ओर की वीथी से भयंकर चीत्कार का स्वर उन दोनों के कानों को बेधता हुआ दूर निकल गया। बिम्बिसार ने अपना अश्व उस ओर मोड़ कर दौड़ाया। वर्षकार भी पीछे-पीछे दौड़ा।

बिम्बिसार ने घटनास्थल पर पहुंच कर देखा कि मद्य की दुकान पर कुछ सैनिक दुकान के मालिक को लात-घूसों से पीटे चले जा रहे हैं।"

बिम्बिसार अश्व से उतर पड़ा। वहां भीड़ एकत्र थी। किंतु; डर के मारे कोई कुछ नहीं बोल रहा था। दुकान में मदिरा से भरी कई कर्करियां फूटकर बिखरी थी। भूमि पर मदिरा बह रही थी।

दृश्य देखकर बिम्बिसार का क्रोध चरम सीमा पर जा पहुंचा। उसने सैनिकों को ललकार कर कहा—

"अरे नराधमो ! निरस्त्र पर हाथ उठाते लाज नहीं लगती ?"

सैनिकों ने बिम्बिसार को घूर कर देखा। एकत्रित भीड़ सन्नाटे में आ गयी। किशोर का आकर्षक रूप देख कर सब लोग भय से दुखी हो

गये। लोगों को विश्वास हो गया कि अब किशोर की धुनाई होगी।

सैनिकों ने समझा था कि कोई राज्याधिकारी है। किंतु, सामने एक कोमल किशोर को देख कर वे खिलखिला कर हंसने लगे। दुकानदार को लगा, स्वयं इन्द्र उसकी रक्षा को आ गये हैं। शल्य, खड्ग, ढाल, तूणीर, हेति धारण किये। वह गिड़गिड़ाकर बोला—

"पांच कार्षापण की सुरा का मूल्य मात्र एक पाद दे रहे हैं। भला यह भी कोई न्याय है ? मेरा अपराध इतना ही है कि मैंने कह दिया : निःशुल्क ले जाइए। आप ही बतायें भंते, मैंने इतना कह कर कौन-सा अपराध…"

आपणक पूरी बात कह भी नही पाया था कि एक सैनिक का भरपूर चांटा उसके गाल पर पड़ा। और तत्क्षण बिम्बिसार की हेति उस सैनिक की ग्रीवा में चुभ गयी। सब-कुछ पल-भर में घटित हो गया। भीड़ में भग-दड़ मच गयी। आपणक भय के मारे कांपने लगा। सैनिक क्रोध से आग हो गये और खड्ग खींच कर बिम्बिसार की ओर लपके। बिम्बिसार ने हंस कर कहा—

"एकसाथ ही सब मरना चाहते हो ?"

सैनिक रुक कर एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। कुल सात सैनिक थे। कदाचित् उन्हें लाज लगी। एक सैनिक सब को पीछे ढकेलता हुआ आगे बढ़ कर बोला—

"डर मत धृष्ट छोकरे ! मैं अकेला ही पर्याप्त हूं।"

बिम्बिसार ने पुनः हंसते हुए कहा—

"यदि तुम एकसाथ भी आओ तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो उनके लिए चिंतित हूं जो अवन्ति में बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

सैनिक तिलमिला उठा। द्वंद्वयुद्ध की मुद्रा में उछलता हुआ बोला—

"छोटा मुंह बड़ी बात ! निकाल अपना खंग अन्यथा मुष्टिका-प्रहार से ही सत्तू बनाकर रख दूंगा।"

बिम्बिसार ने मुस्कराते हुए कहा—

"तू हमारा अतिथि है सैनिक ! अतएव, प्राणभिक्षा देता हूं। चुपचाप अपने स्कंधावार में चला जा और अपने इन कायर साथियों को भी

लेता जा।"

"खंग निकालेगा या बातें बनायेगा ? बड़ा चला है आतिथेय बनने। नीच मागध !"

"सैनिक ! अब मैं प्रस्तुत हूं। तूने मुझे नहीं, मगध को ललकारा है। अतएव, देख मगध के खंग का पानी।"

इतना कह कर बिम्बिसार ने खंग निकाल लिया। बालक वर्षकार चुपचाप गंभीर मुद्रा बनाये देखता रहा। दोनों के खंग टकराये ही थे कि न जाने कैसे बिम्बिसार ने सैनिक के हाथ का खग अपने खंग से उलझा कर दूर फेंक दिया। सैनिक को निरस्त्र देखकर बिम्बिसार ने पूछा—

"अब भी लड़ने की आकांक्षा है, तो मांग ले अपने साथियों से खंग। आज पहली बार तुझे एक मागध से पाला पड़ा है। या नहीं तो अब भी समय है—भाग जा यहां से।"

बिम्बिसार की गर्वोक्ति सुन कर सभी सैनिक तिलमिला उठे। वे अपने को रोक नहीं सके और एकसाथ बिम्बिसार पर पिल पड़े। वर्षकार किंचित् घबरा उठा। उसने चारों ओर दृष्टि फेंकी—कहीं से कोई सहारा नहीं था। एकत्रित भीड़ डर के मारे दो-ढाई रज्जु दूर जाकर दर्शक बनी खड़ी थी। आपणक अपनी दुकान के ऊपर चढ़ कर भय से कांप रहा था। बिम्बिसार सातों योद्धाओं के बीच अभिमन्यु की तरह घिरा हुआ युद्ध कर रहा था। वर्षकार ने देखा कि कुछ सैनिकों को बिम्बिसार असह्य क्षति पहुंचा कर स्वयं भी कई घाव खा चुका है। तभी दो सैनिक गिर पड़े। अपने दो साथियों को गिरते देख कर शेष पांचों सैनिक उन्मादकों की तरह बिम्बिसार पर टूट पड़े।

बिम्बिसार दूने उत्साह से आक्रमण बचाता रहा। उसके कई अंगों से रक्त की धार फूट पड़ी। द्रोणाचार्य जैसे गुरु आचार्य नारायण स्वामी का अतिप्रिय अंतेवासी बिम्बिसार का युद्ध-कौशल देख कर नागरिक निर्भय हो निकट आने लगे।

किंतु, बिम्बिसार की शक्ति क्षीण होने लगी। उसके शरीर से अत्यधिक रक्त बह चुका था। बड़ी कठिनाई से वह आघात बचा रहा था। अंतत. वह था तो मनुष्य ही। और मनुष्य की शक्ति सीमित होती है। वह

वहीं लुढ़क गया। सैनिक उसको खंडित करने के लिए झुके ही थे कि अकस्मात धम्म की ध्वनि हुई और 'जय महाकाल' की गर्जना से युद्ध का वातावरण दहल उठा। सैनिक सहम कर पीछे हट गये।

वर्षकार ने देखा—न जाने कहां से अकस्मात एक क्षीणकाय कापालिक जटा-जूटधारी, कटि प्रदेश में व्याघ्र-चर्म लपेटे वहां आ धमका और अपना भयंकर त्रिशूल सैनिकों के मध्य से घुसा कर बिम्बिसार के शरीर पर ओट करके खड़ा हो गया। इस अप्रत्याशित व्यवधान से सैनिक डरकर दो पग पीछे हट गये। कापालिक तीक्ष्ण दृष्टि से सैनिकों को देखता रहा। क्षण-भर पश्चात् ही सैनिकों की चेतना लौट आयी। उनका भय जाता रहा। वे उद्धत स्वर में बोल उठे—

"अपना त्रिशूल हटा लीजिए! इस धृष्ट मागध छोकरे ने हमारे तीन सैनिक साथियों को मार दिया है। हम इसका रक्त पी जायेंगे।"

कापालिक का मेघ-गर्जन सदृश गुरु गंभीर स्वर गूंज उठा—

"इस किशोर का रक्त पीने की क्षमता महाकाल में भी नहीं है रे! तुम जैसे क्षुद्र सैनिकों की तो बात ही क्या? मगध का अन्न-जल ग्रहण करके मागध जनों को संत्रस्त करता फिरता है? कृतघ्न!"

कापालिक का भयंकर रूप देख कर सभी सैनिक तो चुप रहे, किंतु उनमें से एक ने साहस बटोर कर कहा—

"मैं कहता हूं कि आप हट जाइए, अन्यथा…"

तभी कापालिक अट्टहास कर उठा। उसके अट्टहास से संपूर्ण वीथी-पथ कांप उठा। अट्टालिकाएं प्रतिध्वनि कर उठीं। लगा, जैसे दिग्दिगंत तक उसका अट्टहास गूंज उठा हो, आकाश पृथ्वी के समीप चला आया हो, सृष्टि की गति रुक गयी हो। ऐसा भीषण था कापालिक का अट्टहास कि सैनिक गण अनायास कई पग पीछे हट गये। कापालिक अचानक पुनः गंभीर होकर बोला—

"मुझे धमकी देता है? अरे मूर्खो! मैं चाहूं तो एक पल में गिरिव्रज से एक योजन दूर पर स्थित तुम्हारे संपूर्ण स्कंधावार को जला कर भस्म कर दूं। किंतु, नहीं। राजदंड की भी मुझे परीक्षा लेनी है। अभी स्वयं अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन आता होगा। तुम सब को उसी के हाथ सौंप कर

लौट आयी थी। उसे अश्व पर बिठा दिया गया। लोग ऊंचे स्वर में बिम्बिसार का जय-जयकार करने लगे। बिम्बिसार चकित होकर मागध सैनिकों से घिरा हुआ राजपथ की ओर चल पड़ा।

वर्षकार अपने अश्व पर चढ़कर देवी कुवलया के भवन की ओर भागा। संध्या होने में थोड़ा ही विलंब था।



बालक वर्षकार कापालिक से संबद्ध विभिन्न प्रकार की बातें सोचता हुआ देवी कुवलया के भवन की ओर अग्रसर हुआ। कापालिक के व्यक्तित्व ने उसे अभिभूत कर दिया था। वह यही सोचता हुआ आगे बढ़ रहा था कि क्या कभी वह भी कापालिक जितना ही प्रभावशाली, शक्तिवान, आत्मबली एवं दुर्धर्ष बन सकेगा ?

कापालिक की गंभीर वाणी उसके कानों में गूंज रही थी। अब उसे लग रहा था कि कापालिक को उसने कहीं देखा नहीं है किंतु, उसका स्वर अवश्य सुना है। कहां सुना है ?—कि तभी वह स्वर पुनः उसके कानों में गूंज उठा—

"देवी कुवलया का यही भवन है वत्स !"

वर्षकार ने चौंक कर देखा—स्वयं कापालिक द्वार पर खड़ा था।

"मेरे पीछे-पीछे आ जाओ ?"—कापालिक ने कहा।

वर्षकार अश्व से उतर कर मंत्रमुग्ध-सा कापालिक के पीछे हो लिया। द्वार पर खड़े दो परिचारकों ने कापालिक को देखते ही झुककर वंदना

की। एक परिचारिक दौड़ कर आगे चला गया।

ऊपर स्वयं देवी कुवलया करबद्ध खड़ी थीं। चतुःशाल में ही आसन बिछा दिया गया। कुवलया ने स्वयं पाद्य और अर्घ्य से कापालिक का सत्कार किया। वर्षकार चकित-विस्मित होकर खोया-खोया-सा कापालिक को देखता रहा। तभी पुनः उसके कानों में गंभीर स्वर सुनायी पड़ा—

"कितनी शिक्षा ग्रहण कर चुके हो आयुष्मान् वर्षकार।"

वर्षकार जैसे निद्रा से चौंक उठा। उसने कापालिक को देखा। कापालिक की आंखों से तीक्ष्णता के अतिरिक्त स्नेह की ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी। वर्षकार आश्वस्त होकर बोला—

"चारों विद्याएं पढ़ चुका हूं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता तथा दंडनीति।"

"सुंदर ! किंतु, वत्स मात्र दंडनीति ही तुम्हारे जीवन में काम आयेगी। इसी से समस्त विद्याओं के व्यवहार की सिद्धि होती है। वयस्य आचार्य नारायण स्वामी के चरणों में रहकर तुमने अध्ययन किया। इतनी कम उम्र में समस्त विद्याएं पढ़ चुके। गौरव का विषय है। जानते हो मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है ?"

"जी नहीं !"

"अपने साथ रखकर दंडनीति का व्यवहार पक्ष बताने के लिए। आचार्य नारायण स्वामी ने कुछ आदेश भी दिया है ?"

"पूज्य आचार्य ने मात्र इतना ही कहा कि देवी कुवलया के घर जाकर आचार्य औदुम्बरायण के दर्शन करो। वे जो भी आदेश दें उसका उत्साहपूर्वक पालन करना ही तुम्हारा धर्म होना चाहिए। मां ने भी ऐसा ही आदेश दिया है।"

"मैं ही औदुम्बरायण हूं आयुष्मान्।"

"मैं आपको प्रणाम करता हूं आचार्य !"

"चिरजीवि भव।"

"अब क्या आज्ञा है आचार्य।"

"परसों सूर्यास्त होते ही ऋषिगिरि पर्वत पर आऊंगा। साथ चलने को प्रस्तुत रहना। वयस्य आचार्य नारायण स्वामी से कह देना कि कल

राज्यक्रांति का बीजारोपण समारोह संपन्न हो जायेगा।"

"आपके आदेश का अक्षरक्षः पालन करूंगा आचार्य।"

"एक बात और सुन लो! यह आदेश तुम्हारे जीवन का गुरु-बिंदु बने—यही मेरी इच्छा है।"

"आज्ञा कीजिए।"

"मनुष्य का सत्य क्या है?"

"स्वप्न को साकार करना।"

"साधु आयुष्मान! तुम सर्वथा मेरे योग्य हो। किंतु, जानते हो मनुष्य की पराजय कहां होती है?"

"नश्वरता की परिधि में आचार्य।"

"परिधि यदि वृत्त न बन कर चक्र बन जाये?"

"तो नश्वरता समाप्त हो जाती है—अनन्त पथ का द्वार खुल जाता है।"

"इसीलिए वत्स, मैं अपने स्वप्न को साकार करने के लिए तुम्हें रश्मि-चक्र की प्रथम रेख उद्घोषित करता हूं। गुरु बिंदु से फूटनेवाली रेख बिंदु के चारों ओर चक्र बनाती हुई एक दिन समस्त विश्व को आबद्ध कर लेगी।"

वर्षकार चुपचाप सुनता रहा। आचार्य कहते रहे—"रेख का यह क्रम नश्वरता को जीत कर मेरे स्वप्न को निश्चित ही छू लेगा। आयुष्मान् वर्षकार! संकल्प करो कि आज से तुम्हारा निजी अस्तित्व मिट गया।"

"संकल्प करता हूं आचार्य!"

"तुम्हारा अपना-पराया मिट गया।"

"संकल्प करता हूं आचार्य!"

"देश के निमित्त तुम सब-कुछ देने को प्रस्तुत रहोगे।"

"संकल्प करता हूं आचार्य!"

"देश की सीमा, चक्र की रश्मि रेख की तरह अछोर होगी।"

"संकल्प करता हूं आचार्य!"

"और मानव कल्याण को दृष्टि में रखकर एक देश, एक विश्व की

स्थापना के निमित्त यह सब कार्य संपादित करोगे।"

"संकल्प करता हूं आचार्य !"

"आज मैं आश्वस्त हुआ आयुष्मान् वर्षकार ! अब तुम जा सकते हो। वयस्य नारायण स्वामी से कह देना कि बिम्बिसार अब ऋषिगिरि नहीं पहुंच सकेगा।"

"जैसी आज्ञा !" कहकर वर्षकार प्रणाम करके चला गया। आचार्य औदुम्बरायण ने कुवलया को संबोधित करके पूछा—

"सुमंगली चन्द्रबाला को नहीं देख रहा हूं।"

"नीचे उद्यान में है आचार्य ! क्या उसे यहां आने के लिए संदेश भेजूं ?"

"हां !"

कुवलया परिचारिका के द्वारा संदेश भेज कर आचार्य के पास आकर खड़ी हो गयी। आचार्य ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से कुवलया की ओर देख कर पूछा—

"संघर्ष से चित्त क्लांत हो गया है क्या ?"

"नहीं आचार्य ! संघर्ष ही स्वयं क्लांत एवं शिथिल हो गया है।"

"तथ्य यह नहीं है देवी कुवलया ! क्रांति के द्वार पर पहुंचते ही संघर्ष गौण हो जाता है जैसे नदी सागर में पहुंचने पर। क्या सुमंगली चन्द्रबाला का भी यही मत है ?"

"वह तो आचार्य, न जाने किस चिंता में डूबी रहती है। कहती है, जन्म से लेकर मृत्यु तक दुःख की अविराम शृंखला जीवन है। यही शृंखला जीवन है। इस जीवन से मुक्ति मिले, दुःख-क्षय की राह निकले तभी शांति का सूर्योदय हो। मैं तो उसके विचार से बहुत भयभीत हो गयी हूं आचार्य।"

"भयभीत होने का कोई कारण नही है देवी ! विश्व को एक शृंखला में बांधने का यह भी एक साधन है। किंतु, यह साधन साध्य से भी कठिन है। ईश्वर करे कि सुमंगली चन्द्रबाला का यह विचार एक दिन सचमुच ही सूर्य के समान भासित हो उठे।"—इतना कहकर आचार्य औदुम्बरायण विचारमग्न हो गये।

चन्द्रबाला ने आकर आचार्य को प्रणाम किया। आचार्य जैसे गहरा

नींद से जाग उठे। बोले—

"सुमंगली ! सुना, तुम आत्मिक सुख की राह पर अग्रसर हो रही हो।"

"ऐसा हो पाता आचार्य तो मैं अपना जीवन धन्य मानती। अभी तक तो शब्द, रूप और स्पर्श की तृष्णा में पड़ी छटपटा रही हूं। कहीं निस्तार नहीं दीखता।"

"उसका भी समय आयेगा देवी ! अभी तृष्णा की सीमा नहीं पहुंची। मैंने तुम्हें यह सूचित करने के लिए बुलाया है कि आयुष्मान् बिम्बिसार राजा का बंदी हो गया है।"

"कब ? कैसे ?"—कुवलया घबराकर चीत्कार-सा कर उठी। चन्द्रबाला निष्प्रभ-निर्वाक् होकर खड़ी की खड़ी रह गयी। आचार्य ने कहा—

"आज ही ! अवन्ति-सैनिकों से उलझ पड़ा था। अभी जयसेन आते होंगे।"

"फिर क्या होगा आचार्य !"—इस बार भी कुवलया ही बोली।

आचार्य ने कहा—

"मगधपति कुमारसेन का विनाश !"

चन्द्रबाला मूक होकर सब-कुछ सुनती रही, बोली कुछ नहीं। कुवलया घबराहट के मारे रो पड़ी। आचार्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से कुवलया को देखकर कहा—

"तुम्हारी जैसी वीरांगना को ऐसा आचरण शोभा नहीं देता। मंदिर के द्वार तक पहुंच कर देव के दर्शन की आशा त्याग देना बुद्धिमानी की बात नही है।"

कुवलया संयमित होकर बोली—

"भावोद्रेक के लिए क्षमा चाहती हूं।"

चन्द्रबाला अपने पुत्र के प्रति कुवलया का असीम प्रेम देखकर विस्मित रह गयी। उसकी इच्छा हुई कि कुवलया के पैरों पर गिर कर उसकी वंदना करे। तभी अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन आ पहुंचा। आचार्य ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखा।

जयसेन प्रणिपात करके बोला—

"बिम्बिसार को कारागार में डाल दिया गया है।"

"सुंदर ! अब तुम मगधपति कुमारसेन के पास जाओ और उनसे कहो कि धृष्ट बिम्बिसार ने तीन अवन्ति-सैनिक मार डाले, प्रजा में विद्रोह का भाव पैदा कर दिया और महाराज की मर्यादा को ठेस पहुंचायी। यह भी कह देना कि यह बालक कुख्यात श्रेणिय नायक भट्टिय हेमजित का पुत्र है।"

"हैं ! बिम्बिसार भट्टिय का पुत्र है—मेरा बिम्बिसार…।" इसके आगे कुवलया नहीं बोल सकी। हर्ष-विषाद से वह पागल जैसी हो गयी। अचानक उसकी चेतना लौटी। उसने आचार्य के चरण पकड़ लिये बोली—

"यदि जयसेन यह कह देगा तो निश्चय ही मेरा बिम्बिसार मार डाला जायेगा ! आचार्य, मैं आपसे भीख मांगती हूं। उसे बचा लीजिए।"

आचार्य मुस्कराने लगे। सबने पहली बार आचार्य को मुस्कराते हुए देखा। उनकी मुस्कराहट में केवल विश्वास था। वे स्नेहपूर्ण स्वर में बोले—

"देवी कुवलया ! बिम्बिसार को मैं वह जीवन दे रहा हूं जिसकी तुमने कल्पना भी नहीं की होगी। वह अनंतकाल तक अमर रहेगा। उसे बाह्य शत्रु का कोई भय नहीं है। मेरी योजना पर विश्वास रक्खो।"

कुवलया उठ खड़ी हुई। उसने चन्द्रबाला की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा। चन्द्रबाला भी उसी को देख रही थी। दोनों दूर रहते हुए भी एक-दूसरे से संपृक्त हो गये—एक हो गये। किंतु, चन्द्रबाला न तो आचार्य के आदेश का रहस्य समझ पायी और न ही कुवलया के बिम्बिसार-प्रेम का।

"अच्छा तो मैं चलता हूं। कल सायंकाल फिर यहां आऊंगा। जयसेन ! तुम्हें मेरे आदेश का पालन इस रीति से करना है कि कुमारसेन की क्रोधाग्नि में बिम्बिसार स्वाहा हो जाय। यह मेरा अंतिम प्रयोग है।"—इतना कह कर आचार्य औदुम्बरायण बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये चले गये।



परम भट्टारक परम शैव परम तेजस्वी परमेश्वर हैहय वंश कुलावतंस मगध-पति महाराज कुमारसेन विक्षिप्तावस्था में धवलगृह की मुखशाला में चक्कर काट रहे थे। रह-रहकर वे द्वार की ओर देख लेते और पुनः चक्कर काटने लगते। मुखशाला के एक कोने में अवन्ति के सेनापति स्वस्तिसेन चिंता एवं क्रोध के अतिरेक से मूक बने खड़े थे।

अचानक द्वार की ओर से आहट सुनायी पड़ी। महाराज कुमारसेन तन कर खड़े हो गये। सामने मगध के अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन को उपस्थित देखकर महाराज की क्रोधाग्नि भड़क उठी—

"सेनाध्यक्ष जयसेन! यह मैं क्या सुन रहा हूं?"

"सत्य ही सुन रहे हैं प्रभो!"

जयसेन ने झुक कर निवेदन किया। महाराज गरज उठे—

"उस धृष्ट बालक को मेरे समक्ष क्यों नहीं उपस्थित किया गया?"

"इसकी मैंने आवश्यकता नही समझी महाराज!"

"सेनाध्यक्ष जयसेन!"

"आज्ञा प्रभो!"

"आप अपने अधिकार की मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं।"

"यह सत्य नही है महाराज!"

"फिर आपने इतने बड़े राजद्रोही को जीवित क्यों नहीं जला दिया?"

"यह दंड उचित नही होता।"

"आप कौन होते हैं उचित-अनुचित का निर्णय करनेवाले ?"

"राजभक्त अश्वसेनाध्यक्ष !"

"किंतु, आप तो उस राजद्रोही का पक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।"

"ऐसा कहकर महाराज मुझ पर अन्याय कर रहे हैं। मैं उस धृष्ट बालक को ऐसा दंड देने की सोच रहा हूं जिससे कि मगध की आनेवाली संतानें स्वप्न में भी राजद्रोह की कल्पना न कर सकें।"

"सेनाध्यक्ष जयसेन ! मेरा प्रसाद आपको प्राप्त हुआ।"

"आपका सेवक कृतार्थ हो गया प्रभो !"

महाराज कुमारसेन प्रसन्न मुद्रा में संगमर्मर की चौकी पर जा बैठे। अवन्ति सेनापति स्वस्तिसेन ने अपना मौन तौड़ते हुए अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन से पूछा—

"बंदी कहां है ?"

"अलिन्द में महाराज के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा है।"

महाराज कुमारसेन ने आदेश दिया—

"उसे मेरे समक्ष उपस्थित किया जाय।"

"जो आज्ञा !" कहकर जयसेन ने दौवारिक को संकेत किया। दौवारिक वंदना करके बाहर चला गया। क्षण-भर बाद ही बेड़ियों में जकड़ा हुआ बिम्बिसार वहां आ खड़ा हुआ। उसके क्षत-विक्षत शरीर से शक्ति प्रस्फुटित हो रही थी और उसका दीप्तिवान मुखमंडल दर्शकों में श्रद्धा का भाव उत्पन्न करता-सा लग रहा था।

महाराज कुमारसेन बंदी की कोमल उम्र देखकर किंचित् विनम्र हो उठे। बोले—

"तुमने राजसैनिकों पर शस्त्र क्यों उठाया ?"

बिम्बिसार ने निर्भय स्वर में उत्तर दिया—

"एक निरस्त्र नागरिक की रक्षा के लिए।"

बिम्बिसार का ऐसा उत्तर सुनकर कुमारसेन चौक उठे। उन्होंने कड़क कर पूछा—

"नागरिकों की रक्षा का दायित्व तुमने किस अधिकार से अपने ऊपर ले लिया ?"

"मागध होने के अधिकार से।"

"धृष्ट बालक ! क्या तू नहीं जानता कि रक्षा का दायित्व राजा का होता है।"

"जानता हूं महाराज ! किंतु, राजा के दुर्बल और कर्त्तव्यच्युत होने पर प्रजा को पारस्परिक रक्षा का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाता है।"

"तुम्हारी उद्दंडता चरम सीमा को पहुंच चुकी है।"

"उद्दंडता नहीं, स्वाभिमान कहिए महाराज !"

महाराज कुमारसेन क्रुद्ध हो आसन से उठ कर चीख उठे—

"जयसेन !"

"आज्ञा प्रभो !"—जयसेन ने झुक कर निवेदन किया।

महाराज कुमारसेन बिम्बिसार को घूरते हुए बोले—

"इस बालक को जीवित जला दो।"

जयसेन ने विनम्र स्वर में कहा—

"आज्ञा हो तो कुछ निवेदन करूं।"

"आज्ञा है।"

"उस बालक के दोनों हाथ काट लिये जायं, दोनों आंखें फोड़ दी जायं और उसके बाद इसे जीवित भूमि में गाड़ दिया जाय।"

"उत्तम ! यही आदेश है। शीघ्र पालन करो।"

"इस आज्ञा का पालत नहीं हो सकता।"—एक गंभीर स्वर मुख-शाला में गूंज उठा। सब लोगों की दृष्टि उस ओर घूम गयी जिस ओर से यह स्वर आया था। सबने आश्चर्यचकित होकर देखा—स्वयं हैहय कुल गौरव महाराज पुलिकसेन द्वार पर खड़े थे। अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन एवं अवन्ति सेनापति स्वस्तिसेन ने झुक कर अभिवंदना की।

कुमारसेन ने क्रुद्ध दृष्टि से अपने पिता को देखते हुए कहा—

"पिताश्री को मालूम होना चाहिए कि बंदी कौन है ?"

"मुझे सब कुछ मालूम है पुत्र !"

"इस दुष्ट छोकरे ने मेरा भी अपमान किया है।"

"फिर भी इसे तुम मृत्युदंड नहीं दे सकते।"—पुलिकसेन ने निश्चयात्मक स्वर में कहा। कुमारसेन क्रोध से होठ काटते हुए बोले—

"मेरा आदेश अटल है।"

"पुलिकसेन ने मुस्कराकर अपने पुत्र कुमारसेन को देखा और जयसेन से कहा—

"जयसेन ! बंदी को सशस्त्र सैनिकों के संरक्षण में अंगराज ब्रह्मदत्त की सेवा में पहुंचाने का प्रबंध करो।"

जयसेन ने छिपी दृष्टि से कुमारसेन को देखते हुए निवेदन किया—

"किंतु···"

"किंतु-परंतु कुछ नहीं। बंदी को सकुशल पाकर अंग के महाराज ब्रह्मदत्त मगध के ऋणी होंगे। हमें उनकी मित्रता की आवश्यकता है। जाओ, आदेश का पालन करो !"

कुमारसेन देखते ही रह गये। जयसेन बंदी बिम्बिसार को लेकर मुखशाला से बाहर हो गया। कुमारसेन दांत पीस कर कुछ कहने ही जा रहे थे कि एक सैनिक ने मुखशाला में प्रवेश किया। वह पसीने से लथपथ हो रहा था। उसे देखते ही कुमारसेन के मुंह की बात मुंह में ही रह गयी और पुलिकसेन चौंक उठे। सनिक ने झुककर अभिवादन किया और कहा—

"बहुत ही अशुभ समाचार है महाराज ! अवन्ति को अरक्षित पाकर वत्सराज सतानिक अपने पचास सहस्र सैनिकों के साथ अवन्ति की ओर प्रयाण करनेवाले हैं।"

कुमारसेन ने किंचित् चिढ़ कर पूछा—

"अनुज प्रद्योत क्या सो रहे हैं ?"

दूत ने विनीत होकर कहा—

"चेदि महाजनपद के दस्युओं के कारण माहिष्मती से गिरिव्रज पहुंचने वाले सार्थवाह बीच में ही छिन्न-भिन्न कर दिये जाते थे। महामात्य के परामर्श से परम भट्टारक हैहय कुलावतंस युवराजपाद कुमार प्रद्योत ने चेदिराज को कई बार चेतावनी दी कि वे दस्युओं का उत्पात रोकने की व्यवस्था करें। किंतु, चेदिराज ने कोई ध्यान नहीं दिया। कुछ दिन हुए, गिरिव्रज से अवन्ति जानेवाले सार्थवाह को तो लूट ही लिया गया—यहां से प्रभु ने जो दासियां एवं अन्य अमूल्य रत्नों के उपहार भेजे थे, दस्युओं ने उन सबको भी अपने अधिकार में कर लिया। अंततः, युवराजपाद को चेदि

पर आक्रमण कर देना पड़ा जिसमें सैन्यबल की बड़ी हानि हुई।"

"जय किसकी हुई ?"—कुमारसेन ने व्यंगात्मक स्वर में पूछा।

दूत ने उत्तर दिया—

"अवन्ति सेना को पीछे हटना पड़ा।"

कुमारसेन ने व्यंग्यात्मक मुस्कराहट के साथ ऊंचे स्वर में कहा—

"अवन्ति के भावी सम्राट हैहय कुलावतंस युवराजपाद प्रद्योत की जय हो !"

"कुमारसेन ! देखता हूं सहज सफलता ने तुम्हें अविवेकी ही नहीं, उद्दंड भी बना दिया है।"—महाराज पुलिकसेन ने भर्त्सना के स्वर में कहा। कुमारसेन कदाचित् उत्तर देने को प्रस्तुत था। बोला—

"सफलता के नाम पर सामर्थ्यहीन सत्ता तो मुझे प्राप्त हो गयी है पिताश्री ! किंतु, एक राजद्रोही बंदी तक को दंड देने का अधिकार मुझे प्राप्त नहीं है।"

"राज्य का शासन मात्र राजा की इच्छा से नहीं चलता। देश की सुरक्षा का ध्यान रखना भी आवश्यक है।"—पुलिकसेन ने दृढ़ स्वर में प्रतिवाद किया। महाराज कुमारसेन ने क्रुद्ध होकर कहा—

"मगध के आर्यपट्ट पर मैं अभिषिक्त हुआ हूं। इसलिए, देश के हित-अहित की चिंता से आप मुक्त ही रहें तो अच्छा हो !"

"कुमारसेन !"

"कुमारसेन नहीं, महाराज कहिए पिताश्री ! पिता होने मात्र से आपको राज-मर्यादा उल्लंघन करने का अधिकार नहीं मिल गया है।"

"अरे दुष्ट ! क्या तेरे जैसे कृतघ्न निरंकुश पुत्र के लिए ही मैंने मगध में इतना रक्तपात करवाया ?"

"तभी तो राजद्रोह करते रहना ही आपका धर्म हो गया है ! जैसा आपने रिपुंजय के साथ किया वैसा···"

"चुप रह ! अन्यथा···"

"अन्यथ क्या होगा ? क्या आप मागध जन से कह सकेंगे कि जिसके लिए मैंने रिपुंजय की हत्या की, सहस्रों निरपराध नागरिकों पर दिव्योषधि का प्रयोग किया, इतने अनाचार किये, वही आज कृतघ्न हो गया है !"

"कुमारसेन !"

"महाराज कुमारसेन कहिए ! आपने ही मुझे महाराज के पद पर बिठाने के लिए इतने कुकर्म किये और स्वयं महाराज कहने में संकोच करते हैं ?"

"पहले 'महाराज' पद के योग्य बनने का प्रयत्न करो।"

"यह बात तो आपको मुझे अभिषिक्त करने से पूर्व ही सोच लेनी चाहिए थी।"

"मैं अभी भी अपना निर्णय बदल लेने की सामर्थ्य रखता हूं मूर्ख !"

"अच्छा हो कि आप अपनी सामर्थ्य का उपयोग अपने प्रिय पुत्र प्रद्योत की सुरक्षा में करें ! मेरा काम आपकी सामर्थ्य के अभाव में ही चल सकता है।"

"अच्छी बात है महाराज कुमारसेन ! आज से तुम स्वच्छंद हुए। निश्चय ही अपराध मेरा है। सत्ता प्राप्त करने की चिंता में मैं भूल गया था कि सत्ता की भूख मनुष्य को राक्षस से भी अधिक क्रूर बना देती है, सत्ता मानवोचित गुणों को आत्मसात करके ही अक्षुण्ण रह सकती है। चलो सेनापति स्वस्तिसेन ! माहिष्मती के लिए प्रस्थान करने का प्रबंध करो।"

इतना कहकर महाराज पुलिकसेन चुपचाप मुखशाला से बाहर निकल गये। सेनापति स्वस्तिसेन भी उनके पीछे हो लिये। मुखशाला में बच रहे मगधपति महाराज कुमारसेन—अनंत क्षुधा का पारावार अपने होठों में समेटे प्रसन्न ! आनंदमग्न !! मदांध !!!



विन्ध्य की उपत्यका में सांध्यकाल की छाया विकसित हो चुकी थी। शुक्तिमती नदी का कलकल निनाद दिन के कोलाहल को पराजित कर पहाड़ों, पेड़-पौधों एवं प्रस्तर खंडों को पुकार-पुकार कर मानो कह रहा था कि "विजय-अभियान में विराम कहीं नहीं है। देखो, मैं अब भी प्रवाहित हूं !"

निकट ही, पहाड़ के ऊपर कंदरा के सामने शिलाखंड पर अड़तीस-उनतालीस वर्ष का एक बलिष्ठ युवक बैठा हुआ सामने शून्य दृष्टि से देख रहा था। सामने पहाड़ों की चोटियां ही चोटियां दृष्टिगोचर हो रही थीं। युवक का दृष्टि-पथ कदाचित् उन्हीं चोटियों से होकर कहीं बहुत दूर चला गया था।

अचानक नीचे से अश्व की टाप सुन पड़ी। युवक सावधान होकर सामने ढलान की ओर देखने लगा। कुछ काल में ही वहां तीन अश्वारोही दीख पड़े। सबके-सब अश्वारोही सैनिक वेशभूषा में थे। युवक चुपचाप बैठा हुआ उन लोगों को निकट आते देखता रहा और उन्हें पहचानने का प्रयत्न करता रहा। अश्वारोहियों में से दो को युवक अनायास ही पहचान गया। वे दोनों उसके सहयोगी थे। तीसरा नवागंतुक था।

निकट आकर सभी अश्वारोहियों ने अश्व से उतर कर युवक का अभिवादन किया। युवक ने एक अश्वारोही को आदेश दिया—

"आर्यदेव मित्र को मेरा प्रणाम निवेदन करो पुनर्वसु !"

"देव की जैसी आज्ञा।" कह कर पुनर्वसु पुनः अश्व पर आरूढ़ होकर

जिस दिशा से आया था उसी दिशा में उड़ चला।

युवक ने नवागंतुक अश्वारोही से विनम्र स्वर में प्रश्न किया—

"कौशाम्बीपति महाराज सतानिक का क्या आदेश है दूत ?"

"हैहयवंशी पुलिकसेन सेना सहित गिरिव्रज से माहिष्मती के लिए प्रस्थान कर चुका है। परम भट्टारक परम वैष्णव परम माहेश्वर इक्ष्वाकु वंश-गौरव महाराज सतानिक ने निवेदन किया है कि यदि पुलिकसेन विन्ध्य की उपत्यका में पराजित नहीं हुआ तो बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जायेगी। कारण, कोशलराज की सेना अवन्ति के विरुद्ध घात में बैठी है। इधर महाराज सतानिक अचानक अस्वस्थ होकर राजधानी कौशाम्बी को लौट गये हैं। शेष वत्स सैनिक सेनापति सोमदत्त के नेतृत्व में अवन्ति की सीमा की ओर बढ़ रहे हैं।"

"पुलिकसेन के साथ कितने सैनिक है ?" युवक ने निश्चित भाव से प्रश्न किया।

"तीस सहस्र अश्वारोही एवं पांच सहस्र पदाति।"

"इतनी सेना उसके पास कहां से आ गयी ?" युवक ने पुनः निश्चित भाव से पूछा। दूत घबराहट लेकर वहां आया था। किंतु, युवक की निश्चितता देखकर वह घबराहट की जगह कौतूहल ले बैठा। उसने संध्या के झिलमिल प्रकाश में युवक के प्रदीप्त मुखमंडल पर के भाव पढ़ने चाहे। किंतु, वहां स्थिर पलकों के अतिरिक्त उसे कुछ भी नही दीख पड़ा। विनम्र होकर उसने उत्तर दिया—"लगभग बीस सहस्र अवन्ति सैनिक हैं। शेष स्वर्ण-निष्क के लोभी भृत्य एवं अटवि बल हैं।" मगध के कुछ औत्साहिक सैनिक भी पुलिकसेन के साथ हो गये हैं।"

"और कोई सूचना ?"

"जी हां ! अवन्ति का शासक युवराज प्रद्योत बड़ा पराक्रमी है। इसके अतिरिक्त अवन्ति का महामात्य सलंकायन बड़ा ही नीति-निपुण एवं दूरदर्शी है। उसने पंचालराज को अपनी ओर मिला लिया है, अवन्ति की छिन्न-भिन्न सेना को संगठित कर सिन्धु एवं जमुना नदी के संगम पर उसका व्यूह सुदृढ़ कर दिया है। परिणाम यह हुआ कि वत्स देश उत्तर में कौशल एवं पचाल, पश्चिम में अवन्ति तथा पूर्व मे पुलिकसेन की घातक

सेनाओं से घिर गया है। ऐसी दशा में महाराज सतानिक चिंता से···।"

"कोई चिंता नहीं दूत ! अवन्ति में यदि महामात्य सलंकायन है तो तुम्हारे साथ औदुम्बरायण हैं।" दूत ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि कंदरा के बायीं ओर से आया हुआ गंभीर स्वर गहन अंधकार को बेधता हुआ कंदरा से टकराकर गूंज उठा। युवक चौंककर उठ खड़ा हुआ। सब लोगों की दृष्टि बायीं ओर घूम गयी। अंधकार से एक मानवाकार मूर्ति बढ़कर उन सबके निकट आ पहुंची। युवक ने झुककर अभिवंदना की—"मैं भट्टिय हेमजित आचार्य औदुम्बरायण को प्रणाम करता हूं।"

"सफलता प्राप्त करो।"

"आचार्य ने अपने पधारने की कोई सूचना नहीं दी ?"

"अपनी कठिनाइयों को ही मेरे आगमन की सूचना समझ लिया करो आयुष्मान !" इतना कहकर आचार्य दूत की ओर उन्मुख होकर बोले—"जाकर महाराज सतानिक को मेरा आशीर्वाद कहना और कहना कि वे पंचालराज की सेना की चिंता करें। सलंकायन एवं प्रद्योत का व्यूह चेदि सैनिक तोड़ फेंकेंगे। इसकी व्यवस्था हो गयी है। किसी ने तुम्हारे महाराज को मिथ्या सूचना दी है कि पुलिकसेन अवन्ति की ओर बढ़ रहा है। सत्य तो यह है कि पुलिकसेन गिरिव्रज से पच्चीस योजन इधर अटवि बल के संगठन में ही उलझा हुआ है। कम से कम एक पक्ष पश्चात् ही वह अभियान कर पायेगा। कोशल की चिंता भी महाराज सतानिक को नहीं करनी है। हां, उनके कुछ सैनिक अवन्ति की सीमा पर अपनी गतिविधि प्रदर्शित करते रहे।"

"आचार्य की जैसी आज्ञा।" दूत ने झुककर निवेदन किया और प्रस्थान करने को उद्यत ही हुआ कि आचार्य ने पूछा—"युवराज उदयन कहां हैं ?"

"कौशाम्बी में महाराज की सेवा में सन्नद्ध हैं।"

"युवराज के लिए देश की सेवा अधिक महत्त्व रखती है। पंचाल-राज पर अभियान का प्रबंध उन्हें संभालना चाहिए।"

"किंतु, युवराज उदयन तो अभी निरे किशोर ही हैं आचार्य।"

"तभी तो कठोर जीवन-यापन करने का परामर्श दे रहा हूं। कौशाम्बी

में ही यौगन्धरायण नामक एक ब्राह्मण युवक रहता है—तक्षशिला से स्नातक होकर लौटा है। महाराज को उसकी सेवा स्वीकार करनी चाहिए। दंडनीति में वह पारंगत है।"

"महाराज तक आपका संदेश पहुंचा देना मेरा परम कर्त्तव्य हुआ भगवन् !" दूत ने निवेदन किया। आचार्य कुछ क्षण चुप रह कर बोले—"अच्छी बात है। नीचे स्कंधावार में भोजन-पान करके विश्राम करो। ब्राह्म मुहूर्त से पूर्व ही कौशाम्बी के लिए प्रस्थान कर देना।"

भट्टिय का अश्वारोही सैनिक, दूत को लेकर चला गया। उसी समय देवमित्र वहां आ पहुंचे। तीनों महापुरुष कंदरा में चले गये।



गिरिव्रज से दस योजन दूर चम्पा जानेवाले मार्ग पर पथिकों के विश्राम के लिए विशाल निषद्या बनी हुई थी। संध्या हो चुकी थी। निषद्या के बाहर चबूतरे पर एक जटा-जूटधारी, आर्हत्य प्राप्त वृद्ध तपस्वी मृग चर्म बिछाये ध्यानमग्न बैठे थे। उनके पास ही सामने दो व्यक्ति बैठे थे। एक था तेरह-चौदह वर्ष का तेजस्वी बटुक जो एकटक तपस्वी का मुख निहार रहा था और दूसरा था एक तरुण भिक्षु जिसका बलिष्ठ शरीर उसके पराक्रमी योद्धा होने की सूचना देता था।

तभी गिरिव्रज की ओर से पंद्रह अश्वारोही आते दीख पड़े। तपस्वी अथवा बटुक एवं तरुण भिक्षु ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

अश्वारोही अश्व से उतर पड़े। उनमें से चौदह अश्वारोही तो सैनिक

थे और एक प्राय: पंद्रह वर्ष का सुंदर प्रतिभाशाली किशोर था। अश्व से उतरते समय किशोर की दृष्टि चबूतरे पर बैठे बटुक पर जाकर ठहर गयी। बटुक की पीठ किशोर की ओर थी, अतएव किशोर ठीक से बटुक का मुंह नहीं देख सका। परिचित आकार-प्रकार देखकर किशोर विचारों में खो गया। तभी अश्वारोहियों के नायक ने डपट कर कहा—"उधर क्या देखते हो। निषद्या में चलो।"

किशोर क्रुद्ध दृष्टि से नायक की ओर देखकर निषद्या में प्रविष्ट हो गया। सैनिक अन्न-पान के प्रबंध में सक्रिय हो गये। रात उतरने लगी।

पूर्व शिविर की शीतल रात्रि में भी तीनों तापस वेशधारी बाहर चबूतरे पर ही विराजमान रहे। निषद्या के मुख्य कक्ष में सैनिकगण मद्य पी-पीकर हो-हल्ला मचाते रहे। किशोर विचारों में डूबा हुआ बैठा रहा।

अचानक वृद्ध तपस्वी ऊंचे स्वर में बोल उठे—"जय महाकाल!" भयंकर गर्जना निषद्या की ठोस दीवारों से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठी। कक्ष में सुरापान में डूबे हुए सैनिक चौंक उठे। उनका नायक लड़खड़ाता हुआ चबूतरे की ओर बढ़ा। तपस्वी गर्जना करके पुन: समाधि में डूब गये थे। नायक के निकट आकर खड़ा होते ही तपस्वी अपनी आंखें बंद किये-किये ही बोले—"महाकाल को अर्घ्य दिये बिना ही कारण का सेवन करता है? मूर्ख, तू विनाश को प्राप्त होगा। मेरे शिष्य के आदेश पर सर्वस्व की बलि देनेवाला मेरी ही उपेक्षा करता है। बोल, तू चम्पा जा रहा है न?"

"जी हां भगवन्!"—नायक ने डर से कांपते हुए कहा।

"किंतु, चम्पा पहुंचने से पूर्व ही चम्पारण्य में सुप्रतीक नामक यक्ष तुझे एवं तेरे साथियों को मार डालेगा। अंकुरार्पण विधि से मैं यह सब कुछ साक्षात् देख रहा हूं।"

नायक घबरा कर तपस्वी के पैरों पर गिर पड़ा। उसके पेट में पड़ी हुई मदिरा हवा हो गयी। गिड़गिड़ाकर बोला—"मैं आपकी शरण हूं गुरुदेव! मेरी रक्षा कीजिए।"

तपस्वी क्षण-भर समाधि में डूबे रहे। फिर अचानक आदेशात्मक स्वर में बोल उठे—"अच्छा तो ले आ, पात्रार्पण विधि संपन्न करा ले।"

नायक भागा-भागा कक्ष में जाकर मदिरा की कर्करी उठा लाया। वृद्ध कापालिक ने अपनी अंजलियों से विभिन्न विचित्र मुद्राएं बना कर होठों में ही कुछ मंत्रों का उच्चारण किया, पात्र से किंचित् मदिरा निकाल कर नायक को लौटा कर कहा—"इसे गुरु का प्रसाद समझ कर स्वयं ग्रहण कर और अपने साथियों को भी दे दे। किंतु, उस राजद्रोही किशोर को मत देना। वह अपराधी है। जा, भाग जा यहां से !"

नायक आनंद-विभोर होकर वहां से भागा-भागा कक्ष में जा पहुंचा और साथियों सहित मंत्र-शुद्ध मदिरा का पान करने लगा।

कापालिक कदाचित् कुछ काल व्यतीत होने की प्रतीक्षा मे थे। उन्होंने सामने बैठे बटुक को आदेश दिया—"दिव्योषधि का प्रभाव अब प्रकट हो गया होगा। तुम कक्ष में जाकर आयुष्मान् बिम्बिसार को ले आओ। और मूर्च्छित सैनिकों की देह पर से तीन के योग्य शस्त्रास्त्र भी ले लेना।"

"आचार्य की जो आज्ञा।"—कह कर बटुक कक्ष की ओर अग्रसर हुआ। पाठक समझ गये होंगे कि कापालिक के वेश मे अन्य कोई नहीं स्वयं आचार्य औदुम्बरायण थे और उनके दोनों शिष्य थे—बालक वर्षकार एवं पराक्रमी ज्योतिपाल।

वर्षकार ने कक्ष में पहुंच कर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। सभी सैनिक निर्जीव होकर भूमि पर पड़े थे और बिम्बिसार उनके बीच बंधनों में जकड़ा हुआ चकित हो टुकुर-टुकुर देख रहा था। वर्षकार ने शीघ्रता से बिम्बिसार के बंधन खोल डाले। बिम्बिसार प्रसन्न होकर वर्षकार से लिपट गया। तभी वर्षकार ने धीरे से कहा—"बाहर चबूतरे पर स्वयं आचार्यप्रवर भगवान औदुम्बरायण विराजमान हैं—कापालिक के वेश में। यह सब उन्ही की कृपा है !"

"सच ?"—बिम्बिसार ने कौतूहल से पूछा।

वर्षकार ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया—"गिरिव्रज में अवन्ति सैनिकों से तुम्हारी रक्षा करने वाले भी आचार्य ही थे। चलो, उनके दर्शन करो।"

दोनों चबूतरे पर आये किंतु वहा कोई नहीं था। वर्षकार ने चारों ओर अंधकार देखने का प्रयत्न किया तो निषद्या के बाहरी द्वार से आदेशात्मक स्वर सुनायी पड़ा—"यहां बाहर आ जाओ !"

बिम्बिसार ने वहां पहुंच कर देखा—चार अश्व प्रस्तुत खड़े थे। आचार्य प्रतीक्षा कर रहे थे। बिम्बिसार के मन पर आचार्य औदुम्बरायण के दर्शन की इच्छा बचपन से ही प्रभुत्व जमाये हुए थी। आज उसकी अभिलाषा पूरी हुई। उसने आचार्य के चरण स्पर्श किये। आचार्य ने अपने दोनों हाथों का सहारा देकर बिम्बिसार को उठाया और कहा—

"सार्वभौम पद पर प्रतिष्ठित हो। चलो, अश्व पर आरूढ़ हो। अभी हमें यहां से साठ योजन दूर पहुंचना है। आयुष्मान् ज्योतिपाल, वैशाली एवं मल्ल जनपद के मार्ग से ही अयोध्या पहुंच पाना हमारे लिए सुगम होगा। किंतु, तुम वर्षकार के साथ यहां से सीधे पश्चिम जाओ। पुलिकसेन के स्कंधावार से कुछ दूर इधर ही ठहर जाना। और चिरंजीव वर्षकार! मुझे विश्वास है कि तुम अपने दायित्व का सुंदर रीति से निर्वाह करोगे।"

"आपका आशीर्वाद चाहिए भगवन्!"

"एवमस्तु! जाओ, सफलता तुम्हारी राह देख रही है।"

क्षण-भर आचार्य दोनों को अंधकार में विलीन होते देखते रहे। जब वे दोनों दृष्टि से ओझल हो गये तब उन्होंने अपना अश्व उत्तर की ओर बढ़ा दिया। बिम्बिसार उनके पीछे हो लिया।

आचार्य एवं बिम्बिसार के अश्व हवा से बातें करते हुए उड़ चले। दोनों अश्वारोहियों में से एक वृद्ध थे तो दूसरा किशोर। किंतु, शक्ति तथा सामर्थ्य में दोनों ही दुर्धर्ष थे। लगातार तीन प्रहर तक उनके अश्व दौड़ते रहे। यदि उन्हें अश्व के थकने का ध्यान नहीं होता तो कदाचित् वे चलते ही चले जाते। अतएव, राह में किंचित् विश्राम कर वे पुनः चल पड़े। कितने वन-प्रदेश आये, पहाड़ियां आयीं, कर्मान्त आये, नदियां आयीं, मंदिर आये और पीछे छूट गये। वे बढ़ते ही रहे।

कर्मठ पुरुष के लिए अनंत पथ भी अपना विस्तार समेट लेता है। दोनो अश्वारोही कोशल महाजनपद की वैभवपूर्ण राजधानी श्रावस्ती आ पहुंचे।

आचार्य औदुम्बरायण श्रावस्ती नगर के चप्पे-चप्पे से परिचित थे। वहां के नगर-सेठ, सामंतगण, बड़े-बड़े राज्याधिकारी—यहां तक कि स्वयं महाराज महाकोशल भी उनकी ख्याति से अपरिचित नहीं थे। कोई भी

उन्हें सम्मानित अतिथि के रूप में स्वीकार करने में अपना गौरव मानता। किंतु, न जाने क्यों, आचार्य ने निषद्या में ही रात व्यतीत करने का निश्चय किया। राजनीति का तम तापस को भी रहस्यमय बना देता है।



कोशल महाजनपद की राजधानी श्रावस्ती नगर पिछले दो दिनों से विजयोत्सव के हर्षोल्लास में बेसुध हो रहा था। कारण, समस्त जम्बू द्वीप का सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीन शक्तिशाली जनपद काशी पर कोशलराज का आधिपत्य स्थापित हो गया था। परम प्रतापी एवं पराक्रमी अश्वसेन, धृतराष्ट्र ब्रह्मदत्त प्रभृति महाराजाओं का काशीराज अब कोशल महाजनपद का एक क्षेत्र बनकर रह गया।

काशी-विजय से श्रावस्ती नगर की श्री-शोभा द्विगुणित हो उठी थी। नागरिक जन प्रसन्नता एवं प्रोत्साहन से परिपूर्ण थे। श्रेष्ठिगण निर्भय, नियमी एवं निर्मद होकर क्रय-विक्रय में संलग्न थे। सभी राज्याधिकारी कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मठ एवं कुशल थे। कर्मकरगण संतुष्ट एवं स्वामीभक्त थे।

विजयोल्लास प्रदर्शित करने के निमित्त, नगर के विशाल क्रीड़ा-प्रांगण में, विभिन्न प्रकार के मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत करने का आयोजन था। क्रीड़ा-प्रांगण नागरिकों, राज्याध्यक्षों एवं श्रेष्ठियों से खचाखच भरा हुआ था। ब्राह्मण, तापस, क्षत्रिय, योद्धा आदि मंचातिमंच विराजमान थे। महाराज हिरण्यनाभ महाकोशल के पधारने की प्रतीक्षा थी। चारों

ओर से कोलाहल का स्वर उठकर वातावरण को विराट रूप प्रदान कर रहा था।

अचानक अखंड शांति व्याप गयी। लोगों की दृष्टि क्रीड़ा-प्रांगण के पश्चिमी द्वार पर जाकर टिक गयी। प्रतिहारी घोषणा कर रहा था—"सावधान ! परम भट्टारक परम वैष्णव परमेश्वर परम पाद सार्वभौम सम्राट् राजराज इक्ष्वाकु वंश कुलावतंस रघुकुल-गौरव महाराज हिरण्य-नाभ महाकोशल पधारते हैं !"

महाराज हिरण्यनाभ महाकोशल पट्टमहीषी के साथ रत्नखचित संग-मर्मर की चौकी पर आ विराजे। उनकी परम रूपवती चौदह वर्षीया कुमारी पुत्री कोशलादेवी एवं तरुण पुत्र युवराजपाद प्रसेनजित भी उनके पार्श्व में मंचातिमच आ विराजे।

आक्रीड़ी गण क्रम से आ-आकर मनोरंजक क्रीड़ाएं प्रदर्शित करने लगे। विषधर नागों के अतिरिक्त बंदरों का नाच दिखा कर लोगों को हर्ष से उत्फुल्ल कर दिया तो ऐंद्रजालिकों ने अपनी माया फैला कर उन्हें विस्मित कर दिया। समस्या-श्लोक-पूरण में पंडित कवियों ने अपनी वाक्चातुरी एव भाषा-चमत्कार को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया। विभिन्न प्रकार के कौतूहलपूर्ण मनोरंजन के पश्चात् प्राणि-द्यूत-क्रीड़ा आरंभ हुई जिसमें मुर्गों, भेड़ों, भैंसों आदि को लड़ाया गया।

और तब प्रहरण क्रीड़ा, क्रीड़ायुद्ध, मल्लयुद्ध आदि का कार्यक्रम आरंभ हुआ। उपस्थित जन सजग होकर देखने लगे। मल्ल-युद्ध में प्रति-द्वंद्वियों ने एक-दूसरे को पराजित करने के लिए कृत, संकट, सन्निपात, प्रमाथ, क्षेपण, प्रकर्षण, कील वज्रनिपात आदि विभिन्न दांव-पेंचों से दर्शकों को उत्साह और उल्लास से भर दिया। अश्वों एवं रथों की दौड़ हुई और अंत में प्रहरण क्रीड़ा आरंभ हुई।

कोशल के योद्धाओं ने अपने पराक्रम एवं शस्त्र-विद्या की निपुणता से दर्शकों को उन्मत्त बना दिया। शल्य, खड्ग, हेति, धनुष आदि का चमत्कारिक प्रदर्शन देख कर दर्शक, अपने देश के योद्धाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। स्वयं युवराज पाद प्रसेनजित ने भी इस क्रीड़ा में सक्रिय भाग लिया। वे तक्षशिला से शिक्षाग्रहण कर लौटे थे। किंतु, उनसे कहीं

अधिक प्रवीण थे कोशल के साधारण कुल के दो-तीन युवक ।

महाराज हिरण्यनाभ महाकोशल ने स्वयं उठ कर घोषणा की—"कोशल के नागरिक सुनें ! आज की प्रहरण-क्रीड़ा एवं क्रीड़ा-युद्ध को देख कर आप समझ गये होंगे कि काशी पर विजय हमें इन्हीं योद्धाओं के बल पर प्राप्त हुई है। कोशल को अपने इन वीर सपूतों पर गर्व है। इनके समक्ष, समस्त जम्बू द्वीप में, कोई भी वीर सिर उठाने का साहस नहीं कर सकता। हमारे जनपद का एक वीर, किसी दूसरे जनपद के सहस्र वीरों का सामना करने में समर्थ है—और इन्हीं के बल पर हम अंग, वत्स, अवन्ति, मगध…"

'किंचित् ठहरिए !"—किसी ने महाराज की बात बीच ही में काट दी। महाराज महाकोशल की बात काटने का साहस किसमें हुआ ? दर्शकों में भुनभुनाहट फैल गयी। सेनाध्यक्षों ने खड्ग खींच लिये। सबने कौतूहल से देखा—एक परम तेजस्वी वृद्ध ब्राह्मण महाराज महाकोशल की बात काटकर उनकी ओर धीर-गंभीर गति से बढ़ रहा था। उस वृद्ध के पीछे द्वादशादित्य-सा प्रकाशित एक तेजस्वी एवं परम रूपवान सशस्त्र तरुण भी चल रहा था—निर्भय !

आर्यपट्ट से कुछ दूर उधर ही प्रहरियों ने अपने शल्य बढ़ाकर उन दोनों को रोक दिया। तेजस्वी ब्राह्मण ने तीक्ष्ण दृष्टि से प्रहरियों को देख कर तीखे स्वर में कहा—"इक्ष्वाकु वंश के शासन में एक ब्राह्मण के प्रति तुम्हारा यह व्यवहार निश्चय ही आश्चर्यजनक है प्रहरी ! इसका प्रतिकार मेरे पास है। किंतु, ऐसा करना समयोचित नहीं होगा।" इतना कह कर तरुण से कहा—"चलो आयुष्मान् ! इस राज्य का अन्न-जल ग्रहण करना भी पाप है।"

दोनों जाने को मुड़े ही थे कि महाराज महाकोशल की विनम्र वाणी गूंज उठी—"ठहरिए ब्राह्मण देवता । दौवारिक ! इन्हें सादर लिवा लाओ !" महाराज के निकट खड़ा हुआ दौवारिक भागा-भागा ब्राह्मण के पास पहुंचा और उनके समक्ष करबद्ध होकर उन्हें महाराज के निकट ले आया। महाराज ने स्वयं उठकर ब्राह्मण को आसन पर बिठाया और निवेदन किया—"प्रहरियों ने कर्त्तव्य पालन के हेतु आपके मार्ग में बाधा

उपस्थित की। फिर भी मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूं। किंतु, आपने किस उद्देश्य से मुझे अपनी बात अधूरी छोड़ देने पर विवश कर दिया ?"

ब्राह्मण ने अर्थपूर्ण दृष्टि से महाराज को देखा। उस दृष्टि में गौरव था, अप्रतिम ओज था, तीव्र बोधकता थी एवं अखंड विश्वास था। महाराज महाकोशल उस दृष्टि से प्रभावित हुए। ब्राह्मण ने गंभीर स्वर में कहना आरंभ किया—"महाराज ! गर्वोक्तियां एवं योद्धाओं के लिए की गयी प्रशस्तियां युद्ध क्षेत्र में उत्साह का झंझावात उत्पन्न करती हैं किंतु, शांति-काल में इस नीति का अवलंब लेने से देश पर दारिद्र्य, शृंगार, कुचक्र एवं दासता के बादल मंडराने लगते हैं। कारण, प्रशस्ति एवं गर्वोक्ति के कार्य-कारण में समय का व्यवधान आ जाता है।"

"किंतु, ब्राह्मण देवता ! मैंने जो कुछ कहा, सत्य एवं सार्थक ही कहा—गर्वोक्ति या…"

"यह सत्य नहीं है। मेरे साथ यह मेरा शिष्य है। मात्र पंद्रह वर्ष इसका वय है। इस क्रीड़ांगण में कोशल के प्रायः सभी योद्धा उपस्थित हैं। किंतु, मेरी घोषणा है कि शस्त्र विद्या मे कोई भी कोशलवासी इसके समक्ष नहीं टिक सकता।"

ब्राह्मण की घोषणा सुनकर दर्शकों में हलचल मच गयी। महाराज महाकोशल के होठों पर मुस्कराहट दौड़ने लगी—किंतु, उस मुस्कराहट में शंका की आभा स्पष्ट थी। उन्होंने क्षण-भर शांत रहकर ब्राह्मण से अनुरोध किया—"हमें आपके विश्वास पर आस्था है। किंतु, साथ ही इस किशोर की प्रहरण-क्रीड़ा देखने की उत्सुकता भी प्रबल हो उठी है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हम कृतार्थ एवं लाभान्वित होंगे।"

"किंतु, मेरा शिष्य निष्णात हो चुका है। अतएव, मात्र कौतूहल को तुष्ट करने के लिए अपनी दिव्य शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर सकता। यदि मेरे शिष्य ने शस्त्र विद्या के प्रदर्शन में आपके सभी योद्धाओं को पराजित कर दिया तो आप इसे क्या पुरस्कार देंगे ?"

"आपके आदेश का पालन किया जायेगा।" महाराज महाकोशल ने वचन दे दिया। उन्हें अपने देश के योद्धाओं पर पूरा विश्वास था। वे जानते थे कि किशोर का व्यक्तित्व अद्भुत है—किंतु, यह वय के अनुसार

ही पराक्रम दिखा सकता है।

ब्राह्मण ने किशोर को आदेश दिया। ब्राह्मण के चरणों का स्पर्श करके किशोर नीचे प्रांगण में उतर पड़ा। राजकुमारी कोशला देवी किशोर को एकटक निहार रही थीं।

प्रारंभ में किशोर ने शब्दबेधी, स्वरबेधी बाण चला कर लोगों को चकित कर दिया। इसके पश्चात् 'सर-प्रतिवाहन-शिल्प', 'सर-रज्जु', 'सर-वेणी', 'सर-प्रासाद', 'सर-मंडप', 'सर-सोपान', 'सर-पुष्करिणी', 'सर-वर्षा' आदि नाम के बारह प्रकार के हस्तकौशल दिखा कर किशोर ने सब को आश्चर्यचकित कर दिया। दर्शक साधु-साधु के स्वर से आकाश को प्रकंपित करने लगे। राजकुमारी कोशला देवी मुग्धा-सी बैठी रही। किंतु, उसे अनुभव हो रहा था, जैसे उसी की विजय हो।

महाराज महाकोशल ने घोषणा की—"कोशल के नागरिक जन सुनें! —हमारे अतिथि इस किशोर ने सत्य ही, ब्राह्मण देवता की घोषणा को चरितार्थ कर दिखाया। किंतु, हमारे देश में भी पराक्रमियों का अभाव नहीं है। जितने हस्तकौशल इस किशोर ने दिखाये हैं, मुझे विश्वास है कि कोशल के वीर इससे अधिक दिखा सकते हैं। वे आगे आयें।"

क्रीड़ांगन में सन्नाटा छा गया। महाराज महाकोशल की दृष्टि चारों ओर घूमती रही। किंतु, कहीं से कोई आहट तक नहीं आयी। महाराज के होठों की मुस्कराहट लुप्त हो गयी। काशी विजय के पश्चात् जितना अधिक उन्हें हर्ष हुआ था, उससे कहीं अधिक विषाद इस पराजय से हुआ। वे ब्राह्मण की ओर उन्मुख होकर बोले—

"आपकी विजय हुई ब्राह्मण देवता! इच्छानुसार पुरस्कार मांग लीजिए।"

ब्राह्मण ने पुनः महाराज को तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा—

"प्रासाद में चल कर, एकांत में ही पुरस्कार पाने की इच्छा रखता हूं!"

महाराज महाकोशल विचित्र ब्राह्मण की विचित्र बातें, बेधक दृष्टि एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व देख कर मन ही मन किंचित् भयभीत हो उठे थे।

क्रीड़ोत्सव समाप्त हुआ। ब्राह्मण एवं किशोर को साथ लेकर महाराज धवलगृह को लौटे। संध्या हो गयी थी।

मुखशाला में पहुंचकर तीन ही व्यक्ति बच रहे—महाराज महाकोशल, ब्राह्मण और किशोर।

महाराज ने दोनो को आसन ग्रहण करने का संकेत करके स्वयं भी आसन ग्रहण किया और कहा—

"अब आज्ञा कीजिए !"

"मेरी इच्छा है कि यह किशोर कुछ दिनों तक आपके संरक्षण में आपका निजी अतिथि बन कर धवल-गृह में रहे। मेरा संदेश प्राप्त होने पर ही आप अपने को दायित्व से मुक्त समझें !"

"यह तो आपने कोई पुरस्कार नही लिया ब्राह्मण देवता !"

"ब्राह्मण को स्वर्ण-निष्कों या रत्नाभूषणों की आवश्यकता नहीं होती महाराज ! वह तो देश, परंपरा और धर्म के परिपालन के लिए जीता है। और इसी उद्देश्य से एक भिक्षा और मांगता हूं।"

"आज्ञा कीजिए।"

"आप वत्स महाजनपद को पदाक्रांत करने का निश्चय त्याग दीजिए।"

महाराज चौंक कर उठ खड़े हुए और बोले—

"क्या आप वत्स के नागरिक हैं ?"

"ब्राह्मण किसी देश विशेष का नागरिक नहीं होता है। कारण, वह दंडनीति एवं राज्य विधान से परे होता है। ब्राह्मण व्यक्ति नहीं, आदर्श होता है। वह मानव-मात्र का कल्याण चाहता है और तभी तक वह ब्राह्मण है।"

"और यह किशोर ?"

"मागध है।"

"किंतु···किंतु यह कैसे संभव हो सकता है ? अपने निश्चय को त्याग कर मैं कोशल के नागरिकों को क्या उत्तर दूंगा ?"

"किसी देश के नागरिक युद्ध कभी नहीं चाहते हैं। युद्ध का उन्माद तो सत्ताधारियों के स्वार्थ की बीभत्स अभिव्यक्ति है। अतएव, जहां प्रश्न

है वहीं उत्तर है।"

"जो भी हो, वत्सराज के दर्प का दलन करना ही होगा !"

"इतनी शक्ति आप में नहीं है महाराज !"

महाराज महाकोशल कठोर स्वर में बोल उठे—

"ब्राह्मण देवता ! आप रघुकुल के प्रतापी सार्वभौम से बातें कर रहे हैं।"

"किंतु, रघुकुल के योग्य आचरण का आभास तक मैं नहीं पा रहा रहा हूं !"

"ब्राह्मण !"

"महाराज !"

"आप अपनी सीमा का अतिक्रमण कर रहे हैं !"

"राजन् ! सीमा देश की और देश के सत्ताधारियों की होती है—ऋत्विजों की नहीं। वह ऋषिलोक का वासी होता है—किसी राजा का अनुचर नहीं। सीमा का अतिक्रमण मैंने नहीं, आपने किया है। मैं जाता हूं ! किंतु, मैं अपने साथ आपका कुल-गौरव, वंश-वैभव, जीवन-भर की शुभ कीर्ति और धर्म भी लिये जा रहा हूं। ध्यान रखिए कि मैं भी विजय-यात्रा पर निकला हूं। और मेरी विजय का कहीं अंत नहीं है। मेरा लक्ष्य देश नहीं, काल है, मेरा साधन शस्त्र नहीं संस्कार है। आप रघुकुल-गौरव हैं—सत्य हरिश्चन्द्र का विशुद्ध रक्त आपकी धमनियों में प्रवाहित होता है। आपने अपने पूर्वज अम्बरीश, भगीरथ एवं रोहित जैसे प्रतापी आर्य राजाओं की परंपरा का भली भांति निर्वाह किया! आज मुझे मालूम हुआ कि पृथ्वी का बोझ हल्का करने के निमित्त अपने प्राण की बलि चढ़ा देने के लिए तत्पर रहने वाले राजा रघु के कुल में अब झाड़-झंखाड़ उत्पन्न होने लगा है। धर्म-संस्थापन के लिए अपनी पत्नी शैव्या को चांडाल के हाथों सौंप देने वाले हरिश्चन्द्र के कुल में ब्रह्मघाती उत्पन्न होने लगे हैं !"

इतना कह कर ब्राह्मण प्रस्थान करने को उद्यत ही हुए थे कि सम्राट् ने खड्ग निकाल कर ब्राह्मण के पैरों पर रख दिया और विनीत स्वर में निवेदन किया—

"मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी ब्राह्मण देवता ! अहंकार ने मेरा

विवेक हर लिया था। मैं क्षमा चाहता हूं। कोशल का खड्ग आपके चरणों पर है। आपका आदेश ही मेरा धर्म होगा। भूल के लिए मैं कठोरतम प्रायश्चित्त करने का संकल्प करता हूं।"

"साधु महाराज महाकोशल ! स्वीकारोक्ति से अधिक कठोर प्रायश्चित्त अन्य कोई नहीं होता !"

"तो क्या मुझे आपका प्रसाद प्राप्त हुआ ?"

"आदित्यव्रतिक, दंडनीति विधायक महाकुलीन आचार्य औदुम्बरायण का प्रसाद प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है। उसका कोई शत्रु नही है।"

आचार्य औदुम्बरायण का नाम सुनते ही महाराज महाकोशल हर्षातिरेक से भाव-विभोर हो गये। बोले—"आपके दर्शन करके आज मेरा जीवन धन्य हो गया आचार्य ! मेरे योग्य और कोई सेवा ?"

"इस किशोर को यथोचित स्नेह की आवश्यकता है महाराज ! तत्काल मुझे और कुछ नहीं कहना है। मैं शीघ्र ही श्रावस्ती से प्रस्थान कर देना चाहता हूं।"

"इस किशोर की ओर से आप निश्चिंत रहें। इसे प्रसेनजित से अधिक सम्मान मिलेगा।"

"साधु महाराज ! मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी। अच्छा आयुष्मान बिम्बिसार, मैं चलता हूं। हम लोग शीघ्र ही मिलेंगे।"

"इतना कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये आचार्य मुखशाला से बाहर निकल गये। मुखशाला में बच रहे महाराज महाकोशल तथा बिम्बिसार।



महाराज हिरण्यनाभ महाकोशल जैसे प्रतापी महाकुलीन सम्राट के अनुरूप ही उनका उद्यान भी था। उद्यान क्या था—एक कृत्रिम वन-प्रदेश ही था।

स्थान-स्थान पर सुंदर पुष्करणियां बनी हुई थीं, जिनके स्वच्छ जल में हंसों की पंक्तियां केलि करती संतरण कर रही थी। पुष्करणियों के निकट संगमर्मर के शयनीय बने हुए थे।

लगभग चौथाई योजन में उद्यान फैला हुआ था जिसमें विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे लगे हुए थे। जम्बू, पाटली, बिल्व, आम्र, पलाश, स्यन्दन, उदुम्बर, कुश, मुंज आदि वृक्षों-तृणों के अतिरिक्त कुमुद, पुष्कर, शेफालिका आदि पुष्प के पौधों का अरण्य-सा लगा हुआ था। उद्यान में चारों ओर वीथी-पथ का जाल फैला हुआ था।

राजकुमारी कोशला देवी एक पुष्करणी के किनारे, दोनों पांव जल में लटकाये बैठी थी। उसके हाथ में कंकड़ियां थीं जिन्हें वह एक-एक करके जल में फेंक रही थीं। जल में उर्मियां उत्पन्न हो जातीं, किनारों तक पहुंच कर विलीन हो जातीं और तभी दूसरी कंकड़ी जल में बोल उठती, 'डुभ्!'—उर्मियां हुलस कर मचल उठतीं। राजकुमारी तल्लीन हो जाती। अचानक उसके मस्तिष्क में क्रीड़ा-प्रांगण का चित्र उभर कर धूमिल, प्रच्छन्न होने लगता कि तभी किशोर की छवि उभर आती। कंकड़ी जल में गिर कर ध्वनित हो उठती—'डुभ्!' राजकुमारी के

होठों पर मुस्कराहट थिरक उठती। विचार उठता—वह किशोर कहां चला गया? उर्मियां किनारों तक पहुंचते-पहुंचते जल में तिरोहित हो जातीं—राजकुमारी के कोमल धवल नग्न पांव जल में तैरने से लगते। लहरों का हिलकोरा उबल कर फूट पड़ता। क्रीड़ा चल रही थी।...

अचानक जल में एक परछाई आकर स्थिर हो गयी। उर्मियां फूटीं, हिलकोरे उबले, किंतु परछाईं डोल कर ज्यों की त्यों बनी रही। जल में तिरोहित नहीं हुई। राजकुमारी ने सोचा—'क्या ही अच्छा होता कि परछाई सत्य हो जाती; मैं सिर घुमा कर देखती तो...!'

उसने सोचने के साथ ही स्वप्नवत, ग्रीवा मोड़ कर मुस्करा कर पीछे देखा और लज्जा से जड़ बन गयी। हृदय धक् से कर उठा। पीछे उसका स्वप्न साकार, सत्य होकर खड़ा था। राजकुमारी क्षण-भर जड़वत बैठी रही कि तभी पीछे से मधुर स्वर सुनायी पड़ा—

"शाल-भंजिका, उद्दालक-पुष्प-भंजिका, सहकार-भंजिका जैसी क्रीड़ाओं का नाम तो सुना था, किंतु जल-भंजिका-क्रीड़ा का उल्लेख कहीं नहीं पढ़ा। यहां तो कमल की नाल भी नहीं दीखती कि बिस-खादिका-क्रीड़ा का अनुमान कर लूं।"

राजकुमारी की चेतना तब तक लौट चुकी थी। उत्तर में उसे कुछ सूझा तो अनायास संतुलन खो बैठी, बोली—"कौन हो तुम? यहां कैसे घुस आये? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि इस अपराध के लिए तुम जीवित जला दिये जाओगे? धवलगृह के भीतरी उद्यान में भला तुम..."

राजकुमारी घबराहट में विराम ही भूल गयी थी कि बीच में ही परछाईं उसकी बात पूरी करती हुई निश्चिंत भाव से राजकुमारी के पार्श्व में बैठ कर अनासक्त भाव से बोलती रही—

"कैसे चले आये? शीघ्र यहां से क्यों नहीं चले जाते? क्यों मृत्यु को जानबूझ कर आमंत्रित कर रहे हो? प्रभृति प्रश्न तो धवलगृह में पूछे ही चले जाते हैं राजकुमारी! गृहपति या श्रेष्ठि का निकाय नागरिकों की कुतूहलशाला तो है नहीं कि जो चाहे चला आये। है कि नहीं?"

राजकुमारी आश्चर्यचकित भाव से पार्श्व मे बैठे किशोर को देखती रह गयी। किशोर ने राजकुमारी की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देख कर

पुनः पूछा—

"सत्य कहता हूं कि नहीं ?"

राजकुमारी ने निश्छल भाव से सिर हिला कर 'हां' कर दिया। किशोर पूर्ववत स्वर में बोला—

"अतएव, धवलगृह में निवास करने वालों का कर्त्तव्य है कि वे यदा-कदा धवलगृह के उद्यान का पर्यवेक्षण कर लिया करें। यही कारण है कि मेरा यहां शुभागमन हुआ है।"

"किंतु, किसी ने आपको यहां देख लिया तो अनर्थ हो जायेगा !"

"वह तो हो गया !"

"हो गया ?"

"हां !"

"किस प्रकार ?"

"इस प्रकार !"—कह कर किशोर ने राजकुमारी की ठुड्डी पकड़कर ऊपर उठा दी। दोनों की आंखें मिल गयीं। राजकुमारी ने आंखें झुका लीं। किशोर उसे निहारता हुआ बोला—

"तुम अप्सरा हो !"

जिसे देखने को राजकुमारी आकुल-व्याकुल थी, उसे देखते ही वह ऐसी हतबुद्धि-सी हो गयी कि कुछ बोल भी नहीं सकी। घबरा-सी गयी। जब कुछ नहीं सूझा तब उठकर भागने लगी। किशोर उछल कर सामने खड़ा हो गया। बोला—

"क्या मैं ऐसा भयावना हूं कि मुझसे डर कर भागने की स्थिति आ गयी ?"

'तुम्हारे जैसा रूपवान तो कामदेव भी नहीं होगा !'—राजकुमारी ने मन ही मन कहा। किंतु; बोलने को बोल गयी—"हां, आप जैसे धृष्ट से डरना ही चाहिए !"

"फिर तो मैं तुम्हें अच्छी प्रकार डराऊंगा।"

"राह छोड़ दीजिए अन्यथा अंगरक्षकों को पुकारती हूं।"

"वह तो मैं स्वयं हूं।"

'स्यात् ऐसा हो पाता।'—राजकुमारी ने मन ही मन कहा। बोली

कुछ नही। किशोर ने राजकुमारी के निकट जाकर निश्छल भाव से पूछा—

"क्या तुम मुझे अपने अंगरक्षक के रूप में भी स्वीकार नहीं कर सकती ?"

अब तक राजकुमारी किशोर के निश्छल, विशुद्ध स्वभाव से परिचित हो चुकी थी। किशोर का सान्निध्य उसे सुखद लग रहा था। वह चिढ़ाने के विचार से मुस्करा कर बोली—

"नहीं !"

"तो फिर पुकारो अपने अंगरक्षकों को।"

"पुकारूं ?"

"हां-हां, पुकारो।"

राजकुमारी ने इधर-उधर देख कर ऊंचे स्वर में पुकारा—

"कोई है ?"

तभी न जाने कहां से स्वयं युवराजपाद प्रसेनजित वहां आ खड़े हुए। राजकुमारी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी। किशोर संकोच से भर उठा। युवराज पाद प्रसेनजित ने किशोर को उद्यान में प्रवेश करते देख लिया था। न जाने क्यों, किशोर के हस्तकौशल को देख कर वह मन ही मन जल उठा था। अयोग्य पदाधिकारी, गुणवान व्यक्ति को दूर ही रखना चाहते हैं। किशोर को यदि वह नगर में भी कहीं देखता तो भी जल उठता। धवलगृह के उद्यान में राजकुमारी कोशला के प्रति अभद्र आचरण करते देख कर तो युवराज के क्रोध की सीमा ही नहीं रही। वह गरज कर बोला—

"क्यों रे धृष्ट छोकरे, तेरा साहस इतना बढ़ गया कि धवलगृह के उद्यान में आकर, राजकुमारी के प्रति अभद्र व्यवहार करते हुए भी तुझे भय नहीं लगा ?"

"भय उन्हें लगा करता है जिनके पास अधिकार है किंतु सामर्थ्य नहीं। मेरे पास इन दोनों ही वस्तुओं का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त मैंने राजकुमारी के प्रति किसी भी प्रकार का अभद्र व्यवहार नही किया।"

"तेरा आचरण अभद्र ही नहीं, असत्य एवं अनार्य भी है। इसका दंड

देकर मैं अभी तुम्हारे अहंकार का दलन किये देता हूं।"—इतना कह कर युवराज ने खड्ग निकाल कर किशोर पर प्रहार किया। किशोर ने बिना किसी श्रम के अपने खड्ग से युवराज के हाथ का खड्ग हवा में उड़ा कर दूर फेंक दिया। युवराज को अपनी पराजय, वह भी छोटी बहन के समक्ष, विषपान-सी लगी। अतएव, क्रोध से उन्मत्त होकर उसने हेति फेंक कर प्रहार किया। किंतु, इस बार भी युवराज चूक गया। अब किशोर की बारी थी। युवराज की आयु किशोर से छह-सात वर्ष अधिक थी। देखने में भी वह किशोर से हृष्ट-पुष्ट लगता था। फिर भी किशोर ने उछल कर युवराजपाद पर मुष्टिका-प्रहार कर दिया। युवराज लड़खड़ा कर पीछे हटा कि तभी किशोर ने उसके पैर में अपना पैर डाल कर उसे चित कर दिया और खड्ग की नोक गरदन पर रख दी। राजकुमारी कोशला चीत्कार कर उठी।

किशोर ने मुस्करा कर युवराज से कहा—

"अपनी सामर्थ्य तौल कर ही दूसरे के दर्प-दलन का अहंकार प्रदर्शित करना चाहिए। कहिए, अब आपका शिरोच्छेद करके कोशल के आर्यपट्ट पर इक्ष्वाकु वंश का समापन समारोह संपन्न कर दूं?"

राजकुमारी कोशला किशोर का हाथ पकड़ दूर खींच ले गयी। युवराज अंग-प्रत्यंग फाड़ता हुआ उठा और धमकी देकर धवलगृह की ओर चला गया—

"अभी तुम्हें कुत्तों से नुचवाता हूं।"

किशोर ने हंस कर कहा—

"तक्षशिला का युद्ध कौशल देख लिया, अब कोशल की क्रीड़ा देखनी है।"

राजकुमारी अत्यधिक चिंतित हो उठी। बोली—

"अब क्या होगा?"

किशोर ने मुस्करा कर पूछा—

"क्यों? तुम तो अपने अंगरक्षकों से मुझे जीवित जलवा देना चाहती थी।"

"मैंने तो वैसे ही कह दिया था। मैं क्या जानती थी कि इस प्रकार

अनर्थ हो जायेगा। आप शीघ्र ही यहां से भाग जाइए। युवराज का अपमान करने के अभियोग में निश्चय ही आपको मृत्युदंड मिलेगा। खड़े क्यों हैं—भागते क्यों नहीं ?"

"क्यों भागूं ?"

"आप विचित्र व्यक्ति हैं ! क्या आपको जीवन मे मोह नही है ?"

"जीवन से मोह है तभी तो नहीं भाग रहा हूं।"

"हे भगवान् ! आप समझते क्यों नहीं, युवराज आपको निश्चय ही सूली पर लटकवा देंगे !"

"और महाराज क्या करेंगे ?"

"वे तो कभी भी आपको क्षमा नहीं करेंगे।"

"और तुम ?"

"क्यों व्यर्थ की बातों में समय नष्ट कर रहे हैं ? चलिए, मैं आपको बाहर निकलने का गुप्त मार्ग दिखा देती हूं।"

"किंतु, बाहर जाने के पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक है राजकुमारी।"

"किसकी ?"

"मन की।"

"वह देखिए, युवराजपाद सैनिकों के साथ चले आ रहे हैं। अब तो कृष्ण वासुदेव भी आपकी रक्षा नहीं कर सकते।"

सैनिकों ने किशोर को चारो ओर से घेर कर बंदी बना लिया। किशोर ने हंसते हुए कहा—

"तुम सबका सामना करने में मैं समर्थ हूं। किंतु, अपने आतिथेय को अधिक हानि पहुंचाना मेरा अभीष्ट नहीं है।"

युवराजपाद ने चौंक कर पूछा—

"आतिथेय ?"

किशोर ने हंस कर उत्तर दिया—

"जी हां ! परम भट्टारक रघुकुल-गौरव राजराज महाराज हिरण्यनाभ महाकोशल मेरे आतिथेय हैं। उनके सैनिकों का संहार करना कृतघ्नता होगी। अतएव, मैं प्रसन्नतापूर्वक आपका बंदी होना स्वीकार करता हूं।"

युवराजपाद किंचित् घबराहट से विचलित हुए। किंतु, तत्क्षण ही उन्होंने अपने मन का भ्रम दूर करने के उद्देश्य से सैनिकों को आदेश दिया—

"यह दुष्ट मिथ्या भाषण करता है। ले चलो इसे महाराज की सेवा में—वही इसका न्याय होगा।"

सैनिक उसे मुखशाला की ओर ले चले। राजकुमारी उद्यान में अकेली रह गयी—उद्विग्न, चिंतालीन, बेसुध।

मुखशाला में महाराज महाकोशल अपने दो मंत्रियों से विचार-विमर्श कर रहे थे। युवराजपाद प्रसेनजित ने भीतर जाकर निवेदन किया—

"महाराज की जय हो।"

"कुशल तो है पुत्र ?" तुम्हारे मुखमंडल पर चिंता की रेखाएं देख रहा हूं।"

"एक धृष्ट तरुण ने न जाने कैसे धवलगृह के उद्यान में घुस कर राजकुमारी कोशला के साथ अभद्र व्यवहार किया। मैं संयोग से उधर जा पहुंचा अन्यथा अनर्थ हो जाता।"

"कौन है वह धृष्ट तरुण ? मेरे समक्ष उपस्थित करो !" महाराज की त्योरियों पर बल पड़ गये। युवराजपाद बंदी को लाने के लिए बाहर निकला और शीघ्र ही किशोर बिम्बिसार के साथ लौट आया। महाराज ने कड़क कर पूछा—

"कहां है वह धृष्ट तरुण ?"

युवराज ने बिम्बिसार की ओर संकेत करके कहा—

"यही है वह दुष्ट भुजंग।"

महाराज के मुखमंडल का भाव परिवर्तित हो गया। उनके होठों पर मुस्कराहट दौड़ने लगी। बोले—

"अच्छा तो तुम उद्यान में घुस गये थे ?"

बिम्बिसार ने मुस्कराते हुए विनम्र भाव से कहा—

"हां महाराज ! मन नहीं लगा तो उधर चला गया।"

इस बार युवराज ने कड़क कर पूछा—

"धवलगृह के उद्यान को क्या तुमने कुतूहलशाला या नागरिक उद्यान

समझ लिया है ?"

बिम्बिसार ने मुस्करा कर उत्तर दिया—

"महाराज की उपस्थिति में युवराज को स्पष्टीकरण देकर मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।"

महाराज ने युवराज से कहा—

"यह किशोर उचित ही कह रहा है युवराज।"

"युवराज ने किशोर के प्रति महाराज का व्यवहार देखा तो चकित रह गया। उसकी समझ में सब कुछ रहस्य जैसा लगा। उसने हकला कर महाराज से निवेदन किया—

"किंतु महाराज, इसने राजकुमारी के साथ अभद्र व्यवहार किया।"

महाराज ने किंचित् गंभीर होकर किशोर से पूछा—

"यह मैं क्या सुन रहा हूं किशोर ?"

"इसका उत्तर मैं क्या दे सकता हूं महाराज ! राजकुमारी से ही पूछ लिया जाय।"

राजकुमारी को बुलवाया गया। राजकुमारी ने वहां आकर जिस संकोच, सद्भाव एवं संवेदनशीलता का संकेत दिया, उसे देखकर युवराज ने अपने होठ काट लिये। महाराज का किशोर के प्रति स्नेह द्विगुणित हो उठा। किशोर बिम्बिसार पूर्ववत मुस्कराता रहा।

महाराज ने जैसे सब कुछ भांप लिया। उन्होंने युवराज से कहा—

"पुत्र ! इस घटना का दायित्व मुझ पर है। भूल से मैं तुम्हें इस किशोर का परिचय नहीं दे सका। इसका नाम श्रेणिय बिम्बिसार है और हमारा अतिथि है। और किशोर ! तुम्हें युवराज का सम्मान करना चाहिए। यह तुम्हारा अग्रज जैसा है।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूं महाराज !"

बात वहीं समाप्त हो गयी। किंतु, बिम्बिसार एवं प्रसेनजित दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या की चिनगारी दहक उठी।



गिरिव्रज से माहिष्मती के पथ पर एक विशाल वटवृक्ष के नीचे अंधेरी रात में छोटी-सी छायामूर्ति खड़ी थी। दूर-दूर तक कोई निकाय, कुटीर या निषद्या नहीं थी। पथ के दोनों ओर कर्मांत फैले हुए थे और कर्मांत के पश्चात् जंगली झाड़-झंखाड़ उगे हुए थे।

उस वट-वृक्ष से लगभग आध योजन दूर पर उल्काओं का प्रकाश जगमगा रहा था। छायामूर्ति एकटक उसी ओर देख रही थी। सामने का पण्य-पथ निर्जन अंधकार में खो गया था। छायामूर्ति को अधिक काल प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। सामने का पथ निर्जन ही रहा। किंतु, कर्मांत के दायें किनारे के झाड़-झंखाड़ में कुछ हलचल का आभास मिला। छायामूर्ति ने ध्यान से उस ओर देखा। तभी किसी विचित्र पक्षी की तीक्ष्ण ध्वनि प्रांतर में गूंज उठी। छायामूर्ति ने भी उसी प्रकार की ध्वनि की जिसके उपरांत ही झाड़ी से दो व्यक्ति बाहर निकल आये और वट-वृक्ष की ओर बढ़े।

छायामूर्ति के पास आकर दोनों आगंतुकों ने मस्तक झुकाकर अभिवंदना की। छायामूर्ति ने प्रश्न किया—

"तुम्हारे कितने जन नियुक्त हो चुके हैं?"

"संपूर्ण गण!"

"अर्थात् दस सहस्र?"

"जी हां।"

"कब अभियान करने का निश्चय हुआ ?"

"परसों, प्रातःकाल।"

"अर्थात् ठीक एक महीना पश्चात् नर्मदा के तट पर विन्ध्य की उपत्यका में पड़ाव होगा ?"

"हां भंते ! ऐसा ही अनुमान है।"

"अटवी बल की संख्या क्या है ?"

"तीन सहस्र भंते !"

"अर्थात् दस सहस्र आयुधजीवी और तीन सहस्र अटवी बल—कुल जोड़ तेरह सहस्र। फिर तो आचार्य का अनुमान सत्य निकला। अच्छी बात है नायक तालजंघ—तुम्हारा नाम तो तालजंघ ही है न ?"

"हां भंते !"

"अपने गण के सदस्यों को कह देना—नर्मदा के तट पर रात्रि के तीसरे प्रहर की समाप्ति के समय।"

"क्या आचार्य के सिद्धिबल से कार्य का संपादन संभव नहीं है ?"

"नहीं। इसमें अपने मित्रों की हानि की आशंका है।"

"अटवी बल को संदेश पहुंचाने का क्या प्रबंध है ?"

"उनके पास तक संदेश पहुंच चुका है। यह लो दस सहस्र स्वर्ण-निष्क। वास्तविक पुरस्कार राज्याभिषेक के अवसर पर प्राप्त होगा।" छायामूर्ति ने थैली बढ़ाते हुए कहा।

तालजंघ संकोच के साथ बोला—

"इसकी कोई आवश्यकता नहीं है भंते ! हमें तो आचार्य का आशीर्वाद और भट्टिय का प्रसाद चाहिए।"

"वे तुम्हें प्राप्त हैं तालजंघ ! इसे भी स्वीकार करो। आचार्य की ऐसी ही इच्छा है।"

"जो आज्ञा भंते !"

"अब तुम लोग जा सकते हो तालजंघ। आज से ठीक एक माह पश्चात्—नर्मदा के तट पर रात्रि के तीसरे प्रहर की समाप्ति पर।"

"आप निश्चिंत रहें।"

इसके पश्चात् तालजंघ अपने साथी के साथ छायामूर्ति का अभि-

वादन करके जिस राह आया था उसी राह भाग चला। कुछ काल पश्चात् छायामूर्ति, वट-वृक्ष के नीचे से निकल बायीं ओर के कर्मांत को पार कर, झाड़ी-झुरमुट के पार जा पहुंची। वहां एक अश्व प्रस्तुत था। छायामूर्ति अश्व पर आरूढ़ होकर पण्य-पथ के समानांतर माहिष्मती की ओर उड़ चली।

रात-भर छायामूर्ति का अश्व दौड़ता रहा। मगध महाजनपद की सीमा पीछे रह गयी। काशी जनपद में पहुंच कर उसने विश्राम किया। सूर्य का प्रकाश होते ही छायामूर्ति के स्थान पर सोलह-सत्रह वर्षीय हृष्ट-पुष्ट तेजस्वी किशोर वर्षकार प्रकट हो उठा।

चेदि महाजनपद की सीमा में प्रविष्ट होकर वर्षकार ने अपना अश्व चेदि की राजधानी शुक्तिमती की ओर मोड़ दिया। शुक्तिमती नगर में प्राचीनता एवं परंपरा का वैभव सर्वत्र परिलक्षित हो रहा था। वर्षकार ने नगर की एक सुंदर निषद्या में आवास लिया। दिन-भर वह अपने प्रकोष्ठ में ही विश्राम करता रहा।

संध्या होने पर निषद्या में एक दस्यु प्रविष्ट हुआ और सीधे वर्षकार के प्रकोष्ठ की ओर अग्रसर हुआ। कदाचित् वह वर्षकार से परिचित था। कारण, वह सीधे वर्षकार के प्रकोष्ठ में भीतर चला आया। उसे देख कर वर्षकार चौका नही। दस्यु ने कहा—

"आर्य नगर में नवागंतुक जान पड़ते हैं।"

"नहीं। मैं परंपरा से यहां का हूं।"

"महाराज वसु से भी प्राचीन ?"

"हां। ब्रह्मा का अनुवर्ती।"

"फिर मैं कालनेमि दस्यु आपको प्रणाम करता हूं। अश्व-सेनाध्यक्ष नगर के बाहर महाकाल के मंदिर में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

प्रश्नोत्तर में निहित संकेत-चिह्न से दोनों ही आश्वस्त हुए। वर्षकार ने रंचमात्र भी विलंब नहीं किया और कालनेमि दस्यु के साथ बाहर निकल पड़ा। नगर में पर्याप्त चहल-पहल थी। अवन्ति के दुर्धर्ष सैनिकों को पराजित करके चेदि के नागरिक आश्वस्त होकर रास-रंग से लिप्त हो रहे थे।

किशोर वर्षकार की प्रतीक्षा में पहले से ही एक योद्धा मंदिर के पक्ष-द्वार पर खड़ा था। पाठक मगध के अश्व-सेनाध्यक्ष ज्योतिपाल को भूले नहीं होंगे। योद्धा स्वयं ज्योतिपाल ही था।

ब्राह्मण होने के नाते वर्षकार ने ज्योतिपाल को आशीर्वाद दिया और फिर दोनो में बातचीत आरंभ हो गयी। ज्योतिपाल ने चिंता से घुट कर कहा—

"यहां का वातावरण तो सर्वथा प्रतिकूल है।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"युद्ध की विभीषिका से चेदिराज आतंकित हो गया है। बहुत उपाय किये, किंतु वह अवन्ति के विरुद्ध अब शस्त्र उठाने को प्रस्तुत ही नहीं होता।"

"क्या कहता है ?"

"उसका कथन है कि पुलिकसेन वत्स के विरुद्ध तैयारी कर रहा है। वत्सराज चेदि जनपद को हड़पना चाहता है। अतएव, अपने सैनिकों की बलि देकर वह वत्सराज की कठिनाई कम करने का विवेकहीन प्रयत्न क्यों करे ! अवन्ति के सैनिकों को पराजित करके निकाल बाहर करने में चेदि की प्रजा पहले ही संत्रस्त हो चुकी है।"

"चिंता की कोई बात नहीं है सेनापति जी। हमें यहां कुछ दिन ठह-रना पड़ेगा।"

"किंतु इससे लाभ क्या होगा ?"

"प्रयत्न आरंभ करने दीजिए। फिर मालूम हो जायेगा। यहां की सर्वश्रेष्ठ गणिका कौन है ?"

"देवदत्ता।"

"सुंदर ! आप अभी उसके पास कापालिक के वेश में जाइए। अपनी माया का चमत्कार दिखाइए।"

"कैसी माया ? मैं तो मात्र खड्ग चला सकता हूं।"

"खड्ग से न तो विजय मिलती है और न ही शासन चलता है। आचार्यपाद की यही शिक्षा है। हम लोग पहले निषद्या में चलें। वहां मैं आपको एक ओषधि दूंगा जिसे आप गणिका के भवन में प्रविष्ट होने से

पूर्व अपनी दोनों तलहथियों एवं उंगलियों पर लगा लेंगे।"

निषद्या में पहुंच कर किशोर वर्षकार ने ज्योतिपाल को वह ओषधि दे दी और संपूर्ण कार्यक्रम की अथ-इति बता दी। ज्योतिपाल के चले जाने के पश्चात् वर्षकार ने दस्यु कालनेमि को अपने पास रोक लिया।

कुछ रात बीतने पर निषद्या से दो अश्वारोही निकले और शुक्तिमती नदी की ओर चल पड़े।

प्रातःकाल होते ही नगर में आग की लपटों की तरह यह बात फैल गयी कि अवन्ति की सेना चेदि जनपद को जलाकर राख कर देगी, यहां रक्त की नदियां बहेंगी, कन्याओं पर बलात्कार होंगे, राजा की हत्या कर दी जायेगी और उसके पश्चात् चेदि जनपद अनंत काल तक अवन्ति की दासता में जकड़ा रहेगा।

तीन-चार दिनों तक युद्ध एवं अवन्ति से संबद्ध तरह-तरह की बातें फैलती रहीं। अचानक, एक दिन संध्याकाल आतंक फैल गया कि आज सूर्यास्त से पूर्व शुक्तिमती नदी के तट के प्राचीन भग्नावशेष पर स्वयं काल भैरवी प्रकट होगी और युद्ध की सूचना उद्घोषित करेगी।

देखते-देखते संपूर्ण नगर उक्त भग्नावशेष के चारों ओर एकत्र हो गया। नगर की सर्वश्रेष्ठ गणिका देवदत्ता स्वर्ण-रथ पर बैठ कर आयी। उसका वेश-विन्यास अपूर्व था—बाल खुले हुए जिनमें से जल चू रहा था, शरीर के ऊपरी भाग में, स्तनों के बीच, महीन अंशुक की बंधी हुई गात्रिका ग्रंथि थी, कटि-प्रदेश के नीचे भी श्वेत अंशुक वस्त्र तरंगित था, बंधों से नितंब के नीचे तक योगपट्ट लटक रहा था। उसका गौरवर्ण शुद्ध स्वर्ण सदृश देदीप्यमान शरीर समुद्र से निकली लक्ष्मी को भी म्लान करता-सा लग रहा था।

देवदत्ता रथ से उतर कर ऊबड़-खाबड़ पथ से ढूह पर चढ़ चली। भग्नावशेष एक ढूह पर स्थित था। वहां बहुत से लता-गुल्म उग आये थे।

देवदत्ता ने चारों ओर, निकट-पास दृष्टि फेंक कर स्थान का पर्य-वेक्षण किया और अचानक वह एक ओर दौड़ी। लोग भयभीत होकर सांस रोके देवदत्ता की ओर देखते रहे। सहस्रों की भीड़ होने पर भी मृत्यु की सी शांति व्याप्त थी। डूबते सूर्य की लालिमा से सारा पश्चिमा-

काश भयावह हो उठा था।

देवदत्ता ने देखा कि एक स्थान पर भूमि गीली हो गयी थी और वहां से बुदबुदाकर तरल पदार्थ फूट-फूट कर निकल रहा था। देवदत्ता ने मस्तक झुका कर उस स्थान को प्रणाम किया और अपने हाथों से वहां की मिट्टी खोदनी आरंभ की। साथ के दो-तीन जनों ने भी हाथ बंटाया। क्षण-भर बाद थोड़ी मिट्टी हटते ही अचानक ऐसी घटना घटी कि लोग संत्रस्त हो उठे। उस स्थान से मिट्टी हटाते ही तांबे की बनी भैरवी की विशाल मूर्ति का मस्तक निकल आया। मूर्ति के मुंह से रक्त की पतली धार फूट कर ऊपर की ओर निकल रही थी। ढूह के नीचे खड़ी सहस्रों की भीड़ ने उसे देखा और भय से चीत्कार कर उठी। भैरवी के जय-जयकार से संपूर्ण शांत वातावरण का वक्ष विदीर्ण हो उठा।

अचानक नारी-स्वर में गंभीर घोष सुनायी पड़ा—

"शुक्तिमती के नागरिको ! यदि तुमने अवन्ति सैनिकों के व्यूह को अवन्ति की सीमा में जाकर छिन्न-भिन्न नहीं किया तो मैं तुम्हें सदा के लिए त्याग दूंगी। तुम विनष्ट हो जाओगे ! अभी जाकर युद्ध की तैयारी करो। यहां कोई नहीं ठहरे—लौटकर कोई मत आवे अन्यथा शुक्तिमती नगर में महामारी फैलेगी, अकाल पड़ेगा, अग्नि प्रज्वलित होगी। सबके-सब चले जाओ।"

सर्वप्रथम देवदत्ता वहां से भागी। भीड़ में भगदड़ मच गयी। उस स्थान को शीघ्रातिशीघ्र त्यागने की चिंता में कितने लोग कुचल गये। सूर्यास्त हो चुका था। रात होते ही वह स्थान जनशून्य हो गया।

तभी दो व्यक्ति भग्नावशेष से निकल कर उस मूर्ति-स्थल की ओर बढ़े। उन दोनों व्यक्तियों ने त्वरित गति से मूर्ति को मिट्टी से बाहर निकाला। कोई यंत्र घुमाते ही मूर्ति दो भागों में बंट गयी और उसमें से किशोर वर्षकार निकल आया। फिर तीनों ने मिल कर मूर्ति-स्थल के गड्ढे को ईंट-पत्थर से भर दिया, कुछ पौधे लगा दिये और मूर्ति को उठाकर नदी में फेंक दिया। ज्योतिपाल ने निषद्या में पहुंच कर वर्षकार के चरण स्पर्श कर लिये और कहा—

"आचार्य ने सत्य ही कहा था कि वर्षकार मगध का ही नहीं, संपूर्ण

जम्बू द्वीप का भावी भाग्य-विधाता है।"

वर्षकार ने विनम्र स्वर में कहा—

"मैंने जो कुछ किया है, आचार्यपाद के आदेशानुसार ही किया है। वे पहले से ही भांप गये थे कि यहां की परिस्थिति क्या होगी। अब हमें आज ही शुक्तिमती को त्याग देना चाहिए। आचार्यपाद विन्ध्य की उपत्यका में प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"



गिरिव्रज नगर में पर्याप्त चहल-पहल मची हुई थी। किंतु, उस चहल-पहल में आतंक था, आशंका थी, आक्रोश था, घबराहट थी। कोई किसी से स्पष्ट बात नहीं करता था। सब सहमे हुए थे, डरे हुए थे। नगर में प्रतिदिन नये-नये सामंतों, कापालिकों, सार्थवाहों, रत्न-विक्रेताओं का शुभागमन होता। किंतु, नगर से जाने का नाम कोई नहीं लेता था। गिरिव्रज की पांच सौ निषद्याएं नवागंतुकों से खचाखच भर गयी थीं।

धनवानों एवं सामंतों के एकशालिक भी भर गये। निदान, अब जो भी आते, जहां स्थान पाते, अपने-अपने परिवस्त्रा, वितानक, कांडपटमंडप, पटकुटी तान कर जम जाते।

इतनी अधिक संख्या में बाहर के लोग कभी भी गिरिव्रज नगर में नहीं आये थे। राज्याधिकारियों ने भीड़ को स्वाभाविक समझा क्योंकि आगामी पक्ष के अंत में महाकाल शिव का उत्सव होनेवाला था।

महाराज कुमारसेन पक्के शैव थे। कापालिकों के साधन मार्ग पर

उनकी पूरी आस्था थी। अतएव, जब से वे मगध के आर्यपट्ट पर अभिषिक्त हुए थे, तब से प्रतिवर्ष शिवरात्रि के दिन महाकाल शिव का उत्सव समारोह मनाया जाता, जिसमें 'पंचमकार' की सिद्धि के निमित्त राज-कोष के स्वर्ण-निष्क पानी की तरह बह निकलते। बड़ी धूम-धाम रहती।

इस अवसर पर सहस्रों जीवों की बलि चढ़ा दी जाती। दासों के मस्तक पर गुग्गुल जलाने के क्रम में बहुत-से दास जीवित जल मरते।

विख्यात गणिका कुवलया के भवन में सामंतों की भीड़ लगी रहती। गिरिव्रज के नागरिकों एवं श्रेष्ठि-पुत्र कुवलया की प्रणय-प्रतीक्षा में तरुण से प्रौढ़ हो गये किंतु, उनके सौभाग्य के पट कभी नहीं खुले। नवागंतुक सामंत, रत्न-विक्रेता एवं श्रेष्ठिगण के पास न जाने कौन-सी माया थी कि वे बड़ी सुगमता से कुवलया के भवन में प्रवेश पा गये।

दिन-रात कुवलया के यहां पान-गोष्ठी चलती रहती, अट्टहास गूंजते रहते, गीत-वाद्य-नृत्य होते रहते और यदाकदा विचित्र-विभिन्न प्रकार के तांत्रिक एवं कापालिक पक्षद्वार से छुप कर उसके भवन में प्रविष्ट हो जाते और वहां कुछ काल रुक कर रहस्यमय ढंग से चुपचाप बाहर निकल आते।

समस्त गिरिव्रज नगर पर रहस्य, कौतूहल, उन्माद, आशंका, आनंद, विषाद एवं मुखर-मौन का बोझिल-धूमिल आच्छादनक झूल रहा था।

रात्रि का दूसरा प्रहर मध्य में पहुंच चुका था। सुरा-गृहों का उन्माद-पूर्ण कोलाहल पराकाष्ठा को पहुंच रहा था। सामंतों के भवनों में द्यूत-क्रीड़ा, रासलीला एवं जलपान का उल्लास मुखरित हो रहा था।

एक व्यक्ति अपने संपूर्ण शरीर को काले आच्छादनक में लपेटे, कुवलया गणिका के भवन के पक्षद्वार से निकला। नीचे एक चंचल अश्व खड़ा था। उस पर आरूढ़ होकर वह झिलमिल अंधकार में उड़ चला। किंतु, अश्वा-रोही ने जो कुछ किया वह कार्य विचित्र एवं रहस्यमय था। नगर की सभी निषद्याओं, एकशालिकों एवं मंदिरों के द्वार पर वह कुछ चिह्न अंकित करता हुआ पूरे नगर का चक्कर लगा गया। इसके पश्चात् वह नगर के मुख्य पश्चिमी द्वार से बाहर हो गया। पास में राज-मुद्रा होने के कारण द्वार खुलवाने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई।

सशस्त्र अश्वारोही बाण की गति से पश्चिम और पण्यपथ पर उड़

चला। लगभग तीन योजन तक चलने के पश्चात् वह एक विशाल जम्बू-वृक्ष के नीचे रुक गया। क्षण-भर खड़े रहकर उसने चारों ओर निरीक्षणात्मक दृष्टि से देखा और फिर वन-पक्षी की तरह तीन बार ध्वनि की। शीघ्र ही दूसरी ओर से भी प्रत्युत्तर मिला। अश्वारोही को अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

पास के पर्वतीय वन-प्रदेश से निकल कर दो अश्वारोही जम्बू-वृक्ष की ओर तेजी से बढ़े। उन लोगों के निकट पहुंचने पर गिरिव्रज के अश्वारोही ने प्रश्न किया—

"कौन ?—सामंत मणिभद्र और सामंत विशाख।"

उत्तर मिला—

"जी हां, सेनापति जयसेन !"

"मरने-मारने को कटिबद्ध हैं ?"

"आदेश की प्रतीक्षा है।"—सामंत मणिभद्र ने कहा।

सेनापति जयसेन क्षण-भर विचारमग्न रहने के उपरांत बोले—

"अच्छी बात है सम्मानित सामंत-द्वय ! मेरे साथ आइए।"

तीनों अश्वारोही मुख्य पथ के बायीं ओर के कर्मांत में उतर पड़े। लगभग एक चौथाई योजन चलने के पश्चात् भयावह वन-प्रदेश आरंभ हो गया। चारों ओर अंधकार व्याप्त था। वन-प्रांत की अगम्यता एवं गहन अंधकार के कारण चारों पवन राह भूलकर स्तंभित हो रुके खड़े थे। जयसेन ने मुंह से दो बार विचित्र ध्वनि की। प्रखर ध्वनि वन-प्रांत की जड़ता को बेधती हुई बहुत देर तक गूंजती रही। कुछ पल पश्चात् ही वहां एक सशस्त्र योद्धा घनी झाड़ियों से निकल कर सामने आ खड़ा हुआ।

जयसेन ने अंधकार में खड़े उस योद्धा को लक्ष्य करके पूछा—

"माहिष्मती के लिए कौन-सा मार्ग निरापद होगा ?"

"आचार्य शैवलिक द्वारा निर्देशित मार्ग भंते !"

"साधु नायक ! देवमित्र सकुशल तो हैं ?"

"वे आपके संकेत की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"ठीक है नायक ! सामंत मणिभद्र एवं सामंत विशाख ही मेरे संकेत हैं। इन्हें मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र की सेवा में पहुंचा दो। सामंत मणिभद्र

को आगामी कार्यक्रम का निर्देशन प्राप्त हो चुका है।"

"आर्य की जैसी आज्ञा !"—नायक ने विनम्र स्वर में कहा। जयसेन ने सामंतों की ओर उन्मुख होकर कहा—

"हमारे पास समय का सर्वथा अभाव है। सैनिक अभियान में समय सबसे मूल्यवान होता है। अतएव, बिना विलंब किये, आज ही आप लोगों को पयाण-पटह बजा देना बजा देना। किंतु, सावधान! पुलिकसेन की सेना और आप में, एक योजन से कम का व्यवधान न रहे।"

इस बार मणिभद्र ने उत्तर दिया—

"आप निश्चित रहें सेनापति !"

सेनापति जयसेन ने गद्‌गद स्वर में कहा—

"कृष्ण वासुदेव आप लोगों को सफलता प्रदान करें !"

इसके पश्चात् जयसेन ने अपना अश्व मोड़कर गिरिव्रज की ओर उड़ा दिया। दोनों सामंत नायक के साथ वन प्रदेश के अंतराल में बढ़ चले।

आज कुवलया की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। आनंद से उल्लसित होकर वह नाचती फिर रही थी। दास-दासियों को मुक्त हाथ से पुरस्कार बांटती फिर रही थी। दोपहर में एक ब्राह्मण द्वार पर आया तो उसने पांच सौ गांव एवं पांच सहस्र कार्षापण दान कर दिये। पांच दासों को दासत्व से मुक्ति दे दी और जीवन निर्वाह के लिए पुरस्कार में सहस्रों कार्षापण दे दिये।

भवन के परिचारक, स्वामिनी की प्रसन्नता से उत्साहित थे। किंतु, इस आकस्मिक सुख का कारण किसी को ज्ञात नहीं था। कुछ लोगों के मन में यह शंका घर कर गयी कि स्वामिनी कदाचित् उन्माद रोग के चक्कर में पड़ गयी हैं। अतएव, सभी आनंद-मग्न थे किंतु, सबके मन में कारण जानने की जिज्ञासा थी।

आनंद एवं जिज्ञासा का अनुभव करने में चन्द्रबाला भी अपवाद नहीं थी। कुवलया अपने भव्य भवन के विशाल लीलागार में दोले पर बैठी झूल रही थी और कोई गीत गुनगुना रही थी कि तभी चन्द्रबाला ने वहां प्रवेश किया। कुवलया दोले पर से उछल कर उसके पास जा पहुंची और उसकी

बांह पकड़ कर दोले पर खींच लायी। दोनों क्षण-भर चुपचाप झूलते रहे। चन्द्रबाला ने मुस्करा कर पूछा—

"आज क्या बात है सखी ? बहुत आनंद-मग्न हो !"

कुवलया कौतूहल के स्वर में बोल उठी—

"क्यों, तुम्हें नही मालूम ? हे भगवान ! मैं भी कैसी हतबुद्धि हो गयी हूं !—इसी भ्रम में पड़ी रही कि तुम्हें सब-कुछ बता चुकी हूं। क्या सत्य ही मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा ?"

"नही तो !"

"तब तो मै निश्चय ही पागल हो गयी हूं।"

"वह तो मैं देख ही रही हूं। लगता है, युग-युगांतरों की तुम्हारी साध पूरी हो गयी है।"

"पूरी हुई नहीं है—होनेवाली है।"

"अच्छा ?"

सहसा कुवलया गंभीर होकर बोली—

"हां सखी, लगभग सोलह वर्षों से तपस्या कर रही हूं। इस बीच, वैभव का कभी अभाव नहीं हुआ। रास-रंग में कोई कमी नहीं हुई। जो कुछ इच्छा की, पूरी हुई। किंतु, व्यर्थ ! भाव के अभाव ने मेरे जीवन को भयावह बना दिया, वैभव के शव पर चल कर रास-रंग से पूरित ऐश्वर्य के अंधकारपूर्ण श्मशान में मैं महाकाली सदृश नाचती रही। जानती हो क्यों? साम्राज्य दीक्षा की अधिकारिणी बनने के लिए। किंचित् सोचो तो सखी, कि उस स्त्री का जीवन भी क्या है, जो इच्छित पति प्राप्त करती है, बहुत-से स्वप्नों को हृदय के अंतराल में संजोये, सहस्रों मील की यात्रा तय कर, अपने पति के साथ गृहस्थी बसाने के लिए लक्ष्य पर जा पहुंचती है कि तभी घटना-चक्र के चपेट में पड़ कर उसकी गृहस्थी ही नहीं, समस्त भी छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। वह अपने प्राण से बिछुड़ जाती है, सौभाग्यवती होते हुए भी वैधव्य भोगती है, ऐश्वर्य के समुद्र में डूब कर भी तृषित तड़पती है, रास-रंग की उद्दाम लपटों में घिरी होने पर भी तापस हिमवत सदृश निर्जीव, स्पंदनहीन जीवन यापन करती है। मेरे दुख का कहीं अंत नहीं है सखी।"

चन्द्रबाला मूक होकर सुनती रही। कुवलया बोलती रही—

"नारी के पास उसकी उच्चतम वस्तु है—नारीत्व! समस्त गिरिव्रज के श्रेष्ठिगण, योद्धा, नागरिक एवं राज्याधिकारी मेरे दर्शन मात्र के लिए लालायित रहते हैं। जिनकी ओर मैं मुस्करा कर देख दूं, वे मोक्ष सुख को भी भूल जायं। मेरा प्रसाद प्राप्त करने को लोग अपने जीवन-भर का अर्जित शुभ कर्म न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं। किंतु, सखी, मै किसी को कुछ नहीं दे सकी। नारीत्व की निधि मैंने जिसके लिए जुगा कर रखी, उसका भी कोई उपकार नहीं कर सकी। गणिकावृत्ति से अनजान होते हुए भी गणिका नाम से कुख्यात हूं। मैं क्या हूं?—कोई नहीं जानता। लेकिन, इतनी बात सभी जानते हैं कि मैं गणिका हूं, सर्वभोग्या हूं। और जिसके लिए ऐसी बनी वह पंद्रह-सोलह वर्ष से जंगलों-पहाड़ों में भटक रहा है! सखी, आज मुझे सूचना मिली है कि शिवरात्री के दिन वे निश्चित रूप से नगर में पधारने वाले हैं। बस, सात दिन और शेष हैं। ये सात दिन मैं कैसे व्यतीत करूंगी, यही समझ में नही आता है।"

चन्द्रबाला ने उत्सुकता से पूछा—

"क्या वे इस बीच नगर में आये ही नहीं?"

"नहीं!"

"फिर तो वे बड़े निष्ठुर हैं।"

"नहीं सखी! ऐसा मत कहो। वे बहुत ही सहृदय हैं। उन्हें देखोगी, उनसे मिलोगी तो 'हाय' करके रह जाओगी।"

चन्द्रबाला ने कुवलया की ठुड्डी उठा कर उसकी आंखों में आंखें डाल कर कहा—

"सखी! मैं सब-कुछ हो सकती हूं किंतु, कृतघ्न नहीं हो सकती। तुमने मुझे जीवन दिया है, प्रेम दिया है। आवश्यकता पड़ने पर, तुम्हें सुखी बनाने के लिए यदि मुझे प्राण भी देने पड़े तो भी मुझे संकोच नहीं होगा। तुम्हारे प्राण को देख कर मैं मरूंगी नहीं, जीवित हो उठूंगी। सौ जन्म लेकर भी तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करूंगी, 'हाय' कह कर व्यवधान नहीं बनूंगी।"

"मैंने तो हंसी में ऐसा कह दिया था सखी! मैं क्या तुम्हें जानती नहीं हूं। मैं तो समझती हूं कि हमारे सुख-दुःख के भाव दो नहीं, एक ही हैं।

अच्छा सखी, क्या आचार्य ने तुम्हें बिम्बिसार के पिता के संबंध में अब तक कोई सूचना नहीं दी ?"

"वे भी शीघ्र ही आनेवाले हैं सखी।"

"फिर तो बड़ा आनंद रहेगा! चिरंजीव बिम्बिसार भी आ रहा है।"

"हां सखी ! आनंद तो रहेगा। किंतु, न जाने क्यों, मेरा मन बड़ा उद्विग्न रहता है। लगता है, चारों ओर से अंधकार के बादल उमड़ते हुए चले आ रहे हैं, प्रलय का प्रभंजन हमारे अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर उड़ाये लिये जा रहा है, जीवन का क्षणभंगुर आनंद भयावह भूचाल का संकेत देता-सा मालूम होता है ?"

"यह सब तुम्हारे पिछले जीवन की अनुभूतियां हैं सखी ! इस प्रकार की मिथ्या धारणाओं से दूर ही रहो। अन्यथा, भटक जाओगी।"

"जीवन में भटकने के अतिरिक्त और है ही क्या ? लक्ष्य का सत्य तो किसी को भी मालूम नहीं है। वही दीख जाय तो फिर दुख क्यों हो ?"

"फिर तुमने व्यर्थ की बातें आरंभ कर दीं ! चलो, उद्यान में, शाल-भंजिका-क्रीड़ा का आनंद लें ! चलो !"

कुवलया बलपूर्वक चन्द्रबाला को उद्यान में घसीट ले गयी।



विन्ध्य पर्वतमाला के निकट पहुंच कर पुलिकसेन ने अपने सेना नायकों को वहीं पड़ाव डालने का आदेश दिया। तैंतीस सहस्र सैनिकों की चहल-पहल से विन्ध्य-माला की तलहटी गूंज उठी।

वृत्ताकार रूप में सेना-शिविर का निर्माण हुआ था। मध्य में महाराज पुलिकसेन का विशाल कांडपटमंडप लगाया गया था, उसके पश्चात् हस्ति-सेना का वृत्त बना हुआ था, तीसरी परिधि में अश्व, रथ एवं अवन्ति सैनिकों की पटकुटियां लगायी गयी थीं और सबसे अंतिम अर्थात् बाहरी परिधि में अटवी बल, आयुधजीवी एवं शिकारी कुत्तों के आवास का प्रबंध किया गया था।

महाराज पुलिकसेन अत्यधिक चिंतित थे। अवन्ति से बहुत ही अशुभ समाचार मिल रहे थे। अवन्ति की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर, वत्सराज के सैनिकों की चहल-पहल बढ़ गयी थी, पूर्व में चेदिराज युद्ध की घोषणा कर चुका था और दक्षिण में दस्युओं ने भयंकर उत्पात मचा रखा था।

प्रातःकाल होते ही व्याघ्र जिन घबराया हुआ पुलिकसेन के कांडपट मंडप में आ पहुंचा। घबराहट के मारे वह पुलिकसेन को अभिवादन करना भी भूल गया और बोला—

"अनर्थ हो गया महाराज ! अटवी बल एवं आयुधजीवियों ने हमारे साथ विश्वासघात किया। उनके आवास रिक्त पड़े हैं।"

"आवास रिक्त पड़े हैं ?"

"जी हां प्रभु ! किसी का कहीं पता नहीं है। कदाचित् वे रातों-रात भाग निकले।"

"यह कैसे हो सकता है ? शिकारी कुत्ते क्या कर रहे थे ? प्रहरियों ने सैनिकों को सावधान क्यों नहीं किया ?"

"प्रायः सभी शिकारी कुत्ते मृत पड़े हैं। स्कंधावार के चारों ओर के प्रहरी या तो काल के ग्रास बन चुके हैं या विष-बाण के प्रभाव से अर्द्धमृत हो रहे हैं।"

महाराज पुलिकसेन चिंता से उद्विग्न होकर चक्कर काटने लगे। तभी सेनापति स्वस्तिसेन वहां आकर बोले—

"महाराज की जय हो! नायक व्याघ्रजिन से यहां का समाचार आपने सुन ही लिया होगा। अवन्ति से सूचना मिली है कि चेदिराज के सैनिक अत्यधिक वेग से अवन्ति सीमा की सैनिक-चौकियों पर आधिपत्य स्थापित करते चले जा रहे हैं।"

महाराज पुलिकसेन अचानक रुक गये। उनकी आंखों में प्रतिशोध की चिनगारियां फूटने लगीं। उन्होंने आदेशात्मक स्वर में गर्जना की—

"चेदि जनपद को हम धूल में मिला देंगे। सेनापति ! युद्ध की घोषणा करवाइए। नगाड़े, तूर्य, प्रयाण-पटह एवं नांदीक बजवाइए। अभी चेदि जनपद सैनिक-शून्य होगा। यही अवसर है। शीघ्रता कीजिए।"

महाराज पुलिकसेन का आदेश शीघ्र ही कार्यान्वित किया गया। स्कन्धावार उखाड़ दिया गया। रथ, अश्व एवं हाथी कस दिये गये। कूच का बाजा बज उठा।

तभी वज्रपात हुआ ! पहाड़ी के ऊपर से अग्नि-बाण बरसने लगे। पुलिकसेन की सेना इस आकस्मिक आक्रमण से विचलित हो उठी। सेना तितर-बितर होने लगी किंतु, पुलिकसेन परिपक्व शासक एवं पराक्रमी योद्धा थे। वे स्वयं सैनिकों के व्यूह संगठित करने लगे। अश्व पर आरूढ होकर चारों ओर दौड़ने लगे। अवन्ति सैनिकों में उत्साह लौट आया। प्रबल प्रतिरोध आरंभ हो गया।

शत्रु पक्ष के सैनिक अचानक नीचे उतर आये। अवन्ति सैनिकों ने आश्चर्य एवं घृणा से देखा कि रात के भागे हुए अटवी सैनिक एवं आयुध-जीवी शत्रु पक्ष से मिल गये हैं। अवन्ति सैनिकों का रक्त खौल उठा। वे मरने-मारने के लिए सन्नद्ध हो गये।

गाजर-मूली की तरह सैनिक कटने लगे। विन्ध्य पर्वतमाला का प्रथम सोपान रक्त से पिच्छल हो गया। पुलिकसेन के पास सैनिक बल तो था ही, साज-सज्जा भी अच्छी थी। किंतु, शत्रु पक्ष के सैनिक मात्र कुशल योद्धा थे। एक प्रहर तक मार-काट चलती रही है। शत्रु पक्ष का दबाव दुर्बल पड़ने लगा। पुलिकसेन के सैनिक द्विगुणित उत्साह से लड़ने लगे। ठीक उसी समय लगभग एक सहस्र सैनिकों की टुकड़ी वेग से पहाड़ी पर से उतरती दीख पड़ी। पुलिकसेन उसके प्रतिरोध के लिए निर्देशन कर ही रहे थे कि सेनापति स्वस्तिसेन ने चिल्ला कर कहा—

"महाराज ! पीछे देखिए।"

पुलिकसेन ने अपना अश्व एक चट्टान पर चढ़ा कर पूर्व की ओर देखा तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। उस ओर से बहुत-से सैनिक बढ़े चले आ रहे

थे। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया कि आक्रमणकारी कौन हैं। गिरिव्रज की ओर से सैनिकों को आते देख कर उन्होंने मन को तोष देने का प्रयत्न किया कि कदाचित् कुमारसेन ने, अवन्ति की रक्षा के लिए, सैनिक भेजे हों। किंतु, कुमारसेन के तथाकथित सैनिकों ने वहां पहुंचते ही पुलिकसेन के सैनिकों, अश्वों, हाथियों आदि को काल के गाल में झोंकना आरंभ कर दिया। देखते-देखते पुलिकसेन के सहस्रों सैनिक खेत रहे।

पुलिकसेन को शत्रु पक्ष के सैनिकों ने घेर लिया। व्याघ्रजिन एवं स्वस्तिसेन उनकी रक्षा में तत्पर थे। पुलिकसेन के अंगरक्षक सैनिक लौह-प्राचीर की तरह अपने स्वामी की रक्षा में सुदृढ़ थे। चारों ओर से आक्रमण हो रहा था। किंतु, पुलिकसेन तक पहुंच पाने का कोई उपाय न देख कर, शत्रु पक्ष के सैनिक निरुत्साहित हो गये थे। तभी एक वर्मधारी बलिष्ठ योद्धा अपना अश्व उछालता हुआ वहां आ पहुंचा और अंगरक्षकों के लौह-प्राचीर को अनायास बेधता हुआ पुलिकसेन के समक्ष जा खड़ा हुआ। उस पर दृष्टि पड़ते ही पुलिकसेन चौंक उठे। आगंतुक योद्धा ने गंभीर स्वर में कहा—

"मुझे विश्वास है कि मैं मगध के भूतपूर्व महामात्य पुलिकसेन की स्मरण शक्ति की परीक्षा नहीं ले रहा हूं।"

पुलिकसेन ने स्मरण करते हुए कहा—

"तुम···भट्टिय हेमजित···!"

"जी हां। आपने मेरा स्मरण रखा, इसके लिए धन्य···"

भट्टिय ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि "झन्न-झन्न की ध्वनि के साथ हलकी-सी चीख निकली और व्याघ्रजिन अश्व से गिर कर पृथ्वी पर लुढ़क गया। भट्टिय का नाम सुनते ही व्याघ्रजिन ने भट्टिय पर खड्ग से प्रहार कर दिया। किंतु, भट्टिय जैसे प्रबुद्ध पराक्रमी योद्धा को युद्ध क्षेत्र में मार सकना असंभव ही था। भट्टिय ने व्याघ्रजिन को खड्ग चलाते देख कर शल्य के एक ही प्रहार में उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। एक पल के लिए वहां निस्तब्धता व्याप गयी। पुनः भट्टिय ने वार्ता आरंभ की—

"मैं सत्य ही आपको धन्यवाद देता हूं। अब आपका क्या कार्यक्रम है? आपके सैनिक समाप्त हो गये। आपका दायां हाथ, व्याघ्रजिन, कट गया।

सेनापति स्वस्तिसेन वृद्ध हैं। ऐसी दशा में आपके लिए मृत्यु के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं दीखता है।"

पुलिकसेन चुपचाप खड़े सुनते रहे। भट्टिय ने चारों ओर दृष्टि डाली—पुलिकसेन के अंगरक्षक भयभीत होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ से स्थिर थे। भट्टिय ने आदेश दिया—

"तुम लोग अपने शस्त्र फेंक दो !"

अंगरक्षक प्रस्तर मूर्ति की नाई निष्क्रिय बने रहे। भट्टिय ने पुनः कठोर स्वर में आदेश दिया—

"अपने-अपने शस्त्र पृथ्वी पर फेंक दो। अन्यथा, तुम लोगों की दशा भी व्याघ्रजिन जैसी ही होगी।" अंगरक्षक फिर भी निष्क्रिय बने रहे कि तभी पुलिकसेन ने अपने सभी शस्त्र भूमि पर फेंक दिये। अंगरक्षकों पर इसका प्रभाव विद्युत जैसा हुआ। सबने अपने-अपने शस्त्र फेंक दिये।

भट्टिय ने पुलिकसेन से मुस्कराते हुए कहा—

"आपसे शस्त्र फेंकने को किसने कहा ? अभी तो मुझे न जाने कितने दिनों का हिसाब चुकता करना है।" इतना कहकर भट्टिय ने दूर खड़े अपने सैनिक को आदेश दिया—

"महाराज पुलिकसेन को शस्त्र उठा कर दे दो।"

"इसकी कोई आवश्यकता नहीं है आयुष्मान्।"

सैनिक रुक गया। पुलिकसेन नये स्वर को सुन कर चौंक उठा। देखा सामने आचार्य शैवलिक खड़े थे। उनके मुंह से अचानक निकल पड़ा—

"हां, पुलिकसेन ! मैं वैद्य जो ठहरा। जहां रोग, वहीं मैं। किंतु, मैं आचार्य शैवलिक ही नहीं, आचार्य औदुम्बरायण भी हूं।"

पुलिकसेन को जैसे विश्वास नहीं हुआ। उसके मुंह से शब्द खंडित होकर निकलने लगे—

"आ···आप···औ···आदुम्ब···रायण···भट्टिय के मार्ग···"

"हां पुलिकसेन ! तुमने ठीक ही समझा। किंतु, वास्तव में मैं भट्टिय का मार्गनिर्देशक नहीं हूं। मैं तो मानव स्वातंत्र्य-यज्ञ का ऋत्विज हूं आर मेरे मार्ग के अनुयायी हैं मेरे ऋत्विक्-पुत्र। भट्टिय नामक व्यक्ति का मेरी दृष्टि में कोई महत्व नहीं है। और मेरा यज्ञ दो दिन-चार दिन या चार

वर्ष में संपन्न होने को नहीं है। यह तो विश्व-सृज है जो सहस्र वर्ष के दीर्घ-काल तक चलता रहेगा। इस बीच न जाने कितने भट्टिय आयेंगे।"

"किंतु, आचार्य ! आपने तो मुझे भी अपने प्रसाद से···"

"यह तुम्हारा भ्रम है पुलिकसेन ! मैंने तुमसे कहा था कि तू-तू मैं-मैं को स्वाहा करने के निमित्त ही मैंने यज्ञ का आयोजन किया है। आर्यपट्ट को जो निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए अधीनस्थ करना चाहता है वह देश-द्रोही ही हो सकता है, राजा नहीं। आर्यपट्ट का वास्तविक स्वामी प्रजा है। जब तक प्रजा का हित सुरक्षित है, उसकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त है, तब तक राजा भी सुरक्षित है। रिपुंजय ने आर्यपट्ट को अपनी बपौती मान लिया था। उसके पश्चात् उससे भी कृतघ्न व्यक्ति के रूप में तू आया। तू चाहता तो रिपुंजय को सन्मार्ग पर ला सकता था। किंतु, तूने महामात्य के कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। कारण, तू शीघ्रातिशीघ्र रिपुंजय को पतन के कूप में धकेल कर स्वयं आर्यपट्ट पर आधिपत्य स्थापित करना चाहता था—प्रजा के हित के लिए नहीं, अपने और उत्तराधिकारियों के हित के लिए। अतएव, तू मेरा ऋत्विक् पुत्र हो ही नहीं सकता था। आयुष्मान् भट्टिय ! मेरा विचार है कि पुलिकसेन अब दंतहीन सर्प जैसा हो गया है। जिस पुत्र के लिए इसने इतने पाप किये, उसी पुत्र ने इसे त्याग दिया है। ऐसी दशा में इस व्यक्ति की हत्या का निरर्थक दोष लेना बुद्धिमानी की बात नहीं होगी। इसे क्षमा कर दो।"

भट्टिय ने विनम्र स्वर में निवेदन किया—

"आचार्यपाद की आज्ञा शिरोधार्य है।"

पुलिकसेन सिर झुकाये, मात्र पंद्रह-बीस सैनिकों के साथ माहिष्मती के पथ पर चल पड़े। उनके सहस्रों सैनिकों का स्कन्धावार कापालिकों की सिद्धि-भूमि बन कर पीछे छूट गया। संध्या की रक्तिम कालिमा दिग्दिगंत तक पुत गयी।



गिरिव्रज नगर में उन्माद की लहर दौड़ पड़ी थी। सबके मन में शंका की आग प्रज्वलित थी, सबके-सब कुछ अनहोनी घटना घटित होने की आशंका से आतंकित थे तभी महाकाल शिव के उत्सव समारोह की धूमधाम ने नागरिकों के भय को अस्थायी रूप से हर लिया। नगर-द्वार राज-पथ, पण्य-पथ, वीथी-पथ प्रभृति झंडे-झंडियों से सुसज्जित कर दिये गये थे। श्रेष्ठि चत्वर की शोभा तो देखते ही बनती थी।

कहीं सैकड़ों भेड़ों की बलि चढ़ायी जा रही थी तो कहीं सैकड़ों भैसों के रक्त की धार में पृथ्वी डूबी जा रही थी, कहीं दासों के सिर पर गुग्गुल जलाये जा रहे थे तो कहीं कापालिक मदिरा के अतिरेक से बेसुध बने बीभत्स कामचेष्टा प्रदर्शित कर रहे थे। झुंड के झुंड कापालिक, कापटिक नगर में चक्कर काट रहे थे। राजसैनिक मैरेय के कुंभ पेट में उतार कर राजा कुमारसेन का जय-जयकार करते फिर रहे थे।

नागरिकों को भी भय, असुरक्षा एवं आशंका से मुक्ति पाने का सुगम मार्ग दीख गया था। वे लोग भी, मैरेय के कुंभ में डूब गये थे। मदिरालयों पर जन-समुदाय की बाढ़ उमड़ पड़ी थी।

नगर में आये हुए नवागंतुक सामंत, श्रेष्ठि एवं दर्शक, विचित्र दृष्टि से, नगर के उन्मादपूर्ण वातावरण को परखते फिर रहे थे।

दोपहर को राज-पथ पर राजा का जलूस निकलने वाला था। स्वयं महाराज कुमारसेन महामांस का विक्रय करने वाले थे। अतएव, दोपहर

के बहुत पूर्व से ही, राज-पथ के दोनों ओर, ठट्ट-के-ठट्ट लोग जुटने लगे थे। दोपहर तक वहां सहस्रों-लक्षों तक की संख्या में लोग एकत्र हो गये।

विभिन्न प्रकार के वाद्यों से वातावरण कर्कश हो उठा। लोगों की चीख-पुकार से आकाश की छाती फटने लगी। जय-जयकार की ध्वनि से गिरिव्रज के चारों ओर खड़ी पांचों पहाड़ियां हिलने लगीं।

ठीक दोपहर के समय तूर्यनाद गूंज उठा। महाराज के आगमन की सूचना का संकेत सुनते ही भीड़ में हलचल मच गयी। सब लोग उचक-उचक कर राज-पथ के जलूस को देखने का प्रयत्न करने लगे। भीड़ पर नियंत्रण रख पाना असंभव हो गया।

राज-पथ के दोनों ओर एकत्रित भीड़ के आगे-पीछे बहुत-से कापालिक अपरिचित सामंत, श्रेष्ठि एवं बलिष्ठ व्यक्ति शस्त्र-सज्जित होकर स्थिर खड़े थे। वे आपस में, यदा-कदा दृष्टि-संकेत का विनिमय कर लेते और पुनः दूर पर आते हुए महाराज के जलूस को देखने लगते।

मध्य राज-पथ के एक ओर संगमर्मर की विशाल चौकी रखी हुई थी जिस पर लाल रंग का कार्पास आच्छादनक बिछा हुआ था। उस पर महा-मांस से भरे हुए नौ नर-कपाल रखे हुए थे। उस चौकी के चारों ओर नौ कापालिक पद्मासन में बैठे हुए थे जो साक्षात कालभैरव से लग रहे थे।

महाराज कुमारसेन का जलूस चौकी के निकट आकर रुक गया। महाराज रथ से उतर कर चौकी के पास जा पहुंचे। कापालिकों के गुरु ने महाराज कुमारसेन को मंत्राभिषिक्त किया।

दर्शकों की भीड़ यह दृश्य देखने के लिए अनियंत्रित हो गयी। राज-सैनिक मैरेय पीकर स्वयं बेसुध थे। वे भीड़ को रोक सकने में असमर्थ हो रहे थे। महाराज कुमारसेन महामांस का विक्रय करने के लिए राजपथ पर आगे बढ़े। महाकाल शिव में आस्था रखनेवाले भक्त, नागरिकों को, महा-राज कुमारसेन से महामांस क्रय कर, पुण्य प्राप्त करने का शुभ अवसर खोना सह्य नहीं हुआ। वे राजसैनिकों का नियंत्रण तोड़कर महाराज की ओर दौड़े। सैनिकों ने महाराज की सुरक्षा के निमित्त खड्ग खींच लिये। सहस्रों शल्य हवा में चमकने लगे। दर्शकों ने भी प्रत्युत्तर में खड्ग खींच लिये। देखते-देखते वहां भयंकर मार-काट मच गयी। बहुत-से नागरिक

प्राण के भय से भाग खड़े हुए। इस अप्रत्याशित घटना का रहस्य कोई नहीं समझ सका।

महाराज कुमारसेन तब तक राजसैनिकों के नियंत्रण-वृत्त से बाहर दर्शकों के समूह में जा मिले थे। तभी अश्वसेनाध्यक्ष जयसेन तीन-चार अश्वारोही सैनिकों के साथ वहां आ पहुंचे। जहां महाराज कुमारसेन भीड़ में परवश घिरे थे वहां पहुंच कर उन्होंने अपने पार्श्व के अश्वारोही से धीरे से कहा—

"यही अवसर है तालजंघ ! आचार्य एवं श्रेणिय भट्ट की इच्छा पूरी कर दो। शीघ्रता करो। राजा की अंगरक्षक सेना चली आ रही है।"

जयसेन का आदेश पाते ही, पार्श्व में खड़ा अश्वारोही तालजंघ अपने अश्व से छलांग लगा कर ठीक महाराज कुमारसेन के कंधों पर जा कूदा। पलक गिरने की भी देर नहीं हुई और तालजंघ की असिपुत्रिका महाराज कुमारसेन के उदर में घुस गयी।

चारों ओर कोलाहल, हाहाकार एवं भगदड़ मच गयी। तब तक राजा कुमारसेन की विश्वासपात्र अंगरक्षक सेना वहां आ पहुंची।

तालजंघ भीड़ से निकल कर भागा। अंगरक्षक सेना ने क्रूरतापूर्वक दर्शकों को काटना आरंभ ही किया था कि न जाने कहां से सहस्रों योद्धा खड्ग निकाल कर अंगरक्षक सेना के विरुद्ध पिल पड़े। बचे-खुचे दर्शक वहां से भाग खड़े हुए। वहां बच रही अंगरक्षक सेना और बाहर से आये हुए अपरिचित सामंत, कापालिक, श्रेष्ठि एवं नागरिक योद्धा। महाभारत का दृश्य उपस्थित हो गया। अपरिचित योद्धाओं के पास अश्व नहीं थे। फिर भी वे राजसैनिकों का डट कर प्रतिरोध कर रहे थे। सेनापति करिषेण के आदेश से युद्धसूचक तूर्यनिनाद कर दिया गया। कुछ ही क्षणों में दूर पर-स्कंधावार से सहस्रों की संख्या में राजसैनिक चले आते दीख पड़े।

अश्वसेनाध्यक्ष के संकेत पर पांच सहस्र अश्वारोही सैनिक, अपरिचित योद्धाओं की ओर से राजसैनिकों का प्रतिरोध करने लगे। किंतु, फिर भी अपरिचित योद्धाओं की स्थिति निराशाजनक थी। स्कंधावार एवं दुर्ग के देवपथ से सहस्रों की संख्या में राजसैनिक पहुंचने ही वाले थे।

नागरिकों के भय की सीमा नहीं थी। बहुत-से नागरिक अपने-अपने

भवनों के गवाक्षों से युद्ध की विभीषिका देख रहे थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। हां, गिरिव्रज नगर में आगंतुकों एवं अतिथि सामंतों की बाढ़ का रहस्य अवश्य ही उनकी समझ में आ गया था। किंतु, उन अपरिचितों का परिचय अभी रहस्य ही बना हुआ था।

लगभग बीस सहस्र राजसैनिक अश्व, हस्ति एवं रथ से सुसज्जित होकर वहां आ पहुंचे। अपरिचित योद्धाओं की संख्या दस सहस्र से अधिक नहीं थी। राजसैनिकों ने रक्त की धार बहा दी। अपरिचित योद्धा पीछे हटने लगे।

अचानक एक चमत्कार हुआ। न जाने कब, कहां से आकर सहस्रों सैनिकों ने संपूर्ण राजपथ का क्षेत्र घेर लिया। अपरिचित योद्धा एवं राजसैनिक उस लौह वृत्त में जकड़ गये।

उस घेरे से कढ़कर चार अश्वारोही आगे बढ़े। गवाक्षों से नागरिकों ने देखा—चारों अश्वारोही सुपरिचित थे। सबसे आगे थे आचार्य शैवलिक एवं भट्टिय हेमजित, उनके पीछे स्वर्गीय महाराज रिपुंजय के मौल सेनाध्यक्ष देवमित्र तथा क्षत्रिय कुलावतंस चन्दमित्र के पुत्र वरुणदत्त :

आचार्य शैवलिक को देखते ही दोनों पक्षों के सैनिक शांत हो गये। नागरिक जन अपने-अपने भवनों से बाहर निकल आये। चारों ओर उत्साह एवं आशा की मूक ध्वनि संतरण करने लगी। राजसैनिकों ने अपने चारों ओर खड़ी अपरिचित सेना के लौह प्राचीर को चकित, भीत दृष्टि से देखा और मन-ही-मन शिव की वंदना आरंभ कर दी। अपरिचित योद्धाओं का दल पीछे हटकर उसी लौह प्राचीर में खो गया। मध्य में अब बच रहे केवल राजसैनिक—निरवलंब।



देखते-देखते संपूर्ण गिरिव्रज पर रहस्यमय सैनिकों का आधिपत्य स्थापित हो गया। नगर के सभी द्वार, देव-पथ, राज-पथ, वीथी-पथ प्रभृति पर अपरिचित योद्धाओं का पहरा लग गया। उनके वस्त्रों की एक विशेषता यह थी कि सामान्य सैनिकों के सिर के बाल कृष्ण पट्टिका से बंधे थे और नायकों या गौल्मिकों के कंधों पर कृष्ण आच्छादनक झूल रहे थे।

गिरिव्रज की प्रजा विचित्र स्थिति को प्राप्त हो चुकी थी। यद्यपि नगर में किसी के कहीं आने-जाने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। किंतु कोई किसी से बात नहीं करता था। कारण, पग-पग पर अपरिचित सैनिक या नवागंतुक सामंत एवं कापालिक उपस्थित थे।

धवल-गृह, शस्त्रागार, स्कंधावार एवं श्रेष्ठिचत्वर पर सशस्त्र सैनिकों का कठोर नियंत्रण स्थापित था। लोगों ने ज्योंही सुना कि आचार्य शैवलिक चन्दमित्र के एकशालिक में विराजमान हैं, सहस्रों की संख्या में वे उस ओर दौड़ पड़े। दो ही स्थान थे जहां लोगों को प्रकाश मिलने की आशा थी—ऋषिगिरि पर कृष्ण वासुदेव का मंदिर या चन्दमित्र का एकशालिक ! जिसे देखो वही इन दोनों स्थलों की ओर भागा।

अचानक नगर में स्थान-स्थान पर नक्कारों की चोट पर यह घोषणा होने लगी—

"गिरिव्रज के नागरिक ध्यान दें। कल आधा प्रहर दिन व्यतीत होते ही राजसूय-यज्ञ संपन्न करके नये महाराज का राज्याभिषेक होगा। भार-

द्वाज गोत्र के महाकुलीन महानाम्नी ऋत्विज आचार्य नारायण स्वामी मगध राजवंश के परंपरागत राजपुरोहित होने के अधिकार से, नये राजा को राजतिलक प्रदान करेंगे। सभी नागरिक ध्यान दें। कल प्रातःकाल धवल-गृह के बाह्यास्थानमंडप में सबके-सब सादर आमंत्रित हैं।"

घोषणा सुनते ही नागरिक चौंक उठे। विभिन्न प्रकार की कहानियां चल पड़ीं। मद्य विक्रेता की दूकान पर की घटना लोगों को स्मरण हो आयी। कापालिक की भविष्यवाणी तब तक घर-घर पहुंच [illegible]। घोषणा में आचार्य नारायण स्वामी का नाम संबद्ध देखकर लोग आश्वस्त हुए।

संध्या हो चुकी थी। कुवलया को, जिसने सोलह वर्ष प्रतीक्षा में व्यतीत कर दिये, आज एक-एक पल पहाड़ जैसा लग रहा था। वह कभी चतुःशाल में पहुंच जाती तो कभी मुखशाला में जा बैठती।

चन्द्रबाला उसकी दशा देखकर मुस्करा उठती थी। अभी वह चन्द्र-बाला के साथ उसके प्रकोष्ठ में बैठी थी कि नीचे अश्वों की टाप एवं रथ की घर्र-घर्र सुनायी पड़ी। कुवलया बेसुध होकर बैठी की बैठी रह गयी। जो कुछ क्षण पूर्व तक दर्शन के लिए चंचल होकर इधर-उधर दौड़ती फिर रही थी, वही कुवलया अश्वों की टाप सुनकर भी जड़वत् बनी बैठी रही। उसके ललाट पर पसीने की बूंदें छलछला आयीं। चन्द्रबाला ने उसे झक-झोर कर कहा—

"लो सखी, कदाचित् तुम्हारे प्रियतम आ गये।"

सोपान पर पैरों की आहट आने लगी। चन्द्रबाला बलपूर्वक कुवलया को प्रकोष्ठ से बाहर खींच ले चली। तब तक अतिथि ऊपर आ चुका था। तीनों एक-दूसरे को देखते ही जड़ हो गये, चकित रह गये, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बने ठगे से खड़े रहे। अचानक आचार्य औदुम्बरायण का स्वर सुनकर तीनों की तन्द्रा टूटी। आचार्य कह रहे थे—

"तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा आयुष्मान् भट्टिय कि तुम स्वप्न-लोक में कैसे आ पहुंचे। किंतु, जो कुछ तुम देख रहे हो—यथार्थ ही देख रहे हो। शिष्य को गणिका के भवन में पहुंचाने का निकृष्ट कार्य आचार्य कभी नहीं करेगा। किंतु, देश के लिए परम विदुषी नारी को भी गणिका का छद्मवेश

धारण करने का परामर्श, दंडनीति विधायक कोई आचार्य ही दे सकता है। तुम्हारी विवाहिता पत्नी श्रवणा जली नहीं, जीवित है। मगध के उद्धार एवं पुलिक के विनाश के निमित्त श्रवणा के जल मरने की कथा प्रचारित कर देना अनिवार्य था आयुष्मान्।

आचार्य की बात सुनकर चन्द्रबाला ने कुवलया की ओर आश्चर्य-चकित होकर देखा। आचार्य ने चन्द्रबाला से कहा—

"सुमंगली ! कुवलया गणिका नहीं है—ऐसा मैंने कहा था। उन दिनों अग एव मगध के राजा क्रम से तुम्हारे एवं श्रवणा के रक्त के प्यासे हो रहे थे। अतएव, तुम लोगों का परिचय गोपनीय रखना आवश्यक हो गया था। आज मगध स्वाधीन हो गया है। कल श्रेणिय भट्टिय हेमजित के पुत्र बिम्बि-सार का मगध के आर्यपट्ट पर अभिषेक होगा। तुम राजमाता हो और कुवलया नाम से विख्यात परम विदुषी नारी, भट्टिय पत्नी श्रवणा तुम्हारी अग्रजा।"

चन्द्रबाला एवं श्रवणा की आश्चर्यचकित आनंदविह्वल आंखें एक-दूसरे से मिलीं, मूक संभाषण हुआ। तत्क्षण ही दोनों एक-दूसरे से आबद्ध हो गयी। श्रवणा आनंदविभोर हो उठी थी। चन्द्रबाला की आंखों से झर-झर अश्रुधार बह रही थी।

आचार्य का आदेशात्मक स्वर पुनः गूंज उठा—

"राज-पुरुषों या राजरानियों को भावुकता शोभा नहीं देती। उन्हें दूसरों के लिए जीना होता है। नीचे रथ प्रस्तुत है। तुम लोगों को शीघ्रातिशीघ्र धवल-गृह पहुंच जाना चाहिए। मैं एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर धवल-गृह में मिलूंगा।"

इतना कहकर आचार्य सोपान से नीचे उतर गये। भट्टिय का संपूर्ण ओज, पराक्रम, पौरुष एवं निर्भयता जैसे वाष्प बनकर उड़ गयी। वह लड़-खड़ाते हुए स्वर में बोला—

"हमें धवल-गृह चलना चाहिए। वहां बिम्बिसार प्रतीक्षा कर रहा है।"

श्रवणा ने उल्लसित होकर पूछा—

"बिम्बिसार आ गया है ?"

"अकेला बिम्बिसार ही नहीं, साथ में तुम्हारी पुत्र-वधू वैदेही कोशला देवी भी आ गयी हैं।"

श्रवणा ने चौंक कर पूछा—

"वैदेही कोशला देवी ?"

"कोशल महाजनपद के प्रतापी सम्राट् इक्ष्वाकुवंश कुलावतंस रघुकुल गौरव महाराज महाकोशल की पुत्री। विवाह के अवसर पर 'नहान चुन्न मूल्य' के रूप में काशी का एक प्रदेश दहेज में प्राप्त हुआ है।"

चन्द्रबाला चुपचाप सुनती रही। श्रवणा ने पुनः जिज्ञासा प्रकट की—

"किंतु, यह सब हुआ कैसे ?"

"मेरे लिए भी यह सब रहस्य ही है। आचार्य के कार्यक्रम की थाह मैं अब तक नहीं पा सका हूं।"

अब चन्द्रबाला ने अपनी चुप्पी तोड़ी। एक लंबी सांस खींच कर बोली—

"अच्छा तो आप लोग जाइए।"

श्रवणा चौंक उठी—

"क्यों, तुम नहीं चलोगी ?"

"नहीं। मैं यहीं रहूंगी।"

भट्टिय ने किंचित् विस्मित होकर कहा—

"यह कैसे हो सकता है ? क्या रक्खा है इस घर में। वहां बिम्बिसार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

चन्द्रबाला ने गद्गद होकर उत्तर दिया—

"बिम्बिसार को मुझसे अच्छी मां मिल गयी है भट्टिय ! श्रवणा जैसी मां कृष्ण वासुदेव सबको दें। मुझे तो इस घर से प्रेम हो गया है। यहां मुझे क्या नहीं मिला ?"

श्रवणा अब तक विचित्र-सी स्थिति में खड़ी थी। अचानक उसका मुखमंडल गंभीर हो उठा। चन्द्रबाला की तात्कालिक मनःस्थिति से वह सुपरिचित हो चुकी थी। अतएव, उसने स्नेहसिक्त स्वर में आदेश दिया—

"तुम इच्छित कार्य करने के लिए स्वच्चंद नहीं हो चन्द्रे। तुम्हें धवल-गृह में चलना ही होगा।"

"क्या धवल-गृह में जाकर मैं स्वतंत्र हो जाऊंगी ?"

श्रवणा ने बिना परिणाम पर ध्यान दिये कह दिया—

"हां !"



मगध महाजनपद की राजधानी गिरिव्रज में सूर्योदय होते ही उल्लास एवं उत्साह की लहर दौड़ गयी। सब लोग धवल-गृह की ओर दौड़ चले।

बाह्यास्थानमंडप खचाखच भर गया। वहां सेनानी, पुरोहित, राजन्य, सूत, ग्रामणी, क्षत्ता, संग्रहीता प्रभृति बारह रत्नी मंचातिमंच विराजमान थे।

सामने रत्नजटित आसंदी पर व्याघ्रचर्म रखा हुआ था। आसंदी के पीछे चार गौल्मिक सन्नद्ध खड़े थे। गौल्मिकों के कंधों पर कृष्ण आच्छादनक झूल रहे थे।

सब लोगोंकी दृष्टि भुक्तास्थानमंडप वीथी-पथ की ओर लगी हुई थी। जिन्हें बाह्यास्थानमंडप में स्थान नहीं मिल सका था, वे बाहर खड़े हो-हल्ला मचा रहे थे।

सर्वप्रथम वीथी-पथ पर आचार्य शैवलिक आते दीख पड़े। उपस्थित जन उनका जय-जयकार कर उठे। आचार्य शैवलिक के पश्चात् आचार्य नारायण स्वामी दीख पड़े। नारायण स्वामी के पीछे भट्टिय हेमजित,

श्रवणा, चन्द्रबाला एवं बिम्बिसार थे। श्रवणा को देखकर लोग चकित रह गये। किंतु, कोई कुछ बोला नहीं। कारण, समस्त वातावरण ही रहस्यमय था। सब लोग धीर गति से आकर आसंदी के पार्श्व में मंचातिमंच बैठ गये। क्षण-भर के लिए मंडप में अखड शांति व्याप गयी। लोग सांस रोके बैठे रहे।

आचार्य शैवलिक एवं आचार्य नारायण स्वामी में स्थिर दृष्टियों द्वारा ही कुछ संकेत संभाषण हुआ। अंततोगत्वा, आचार्य नारायण स्वामी ने उठकर घोषणा की—

"मागध जन सुनें! बहुत दिनों तक मगध महाजनपद रास-रंग, अनाचार, अपमान एवं रक्तपात-विनाश के दलदलपूर्ण पथ पर अगति एवं अरक्षा के अंधकार में भटकता रहा। बार्हद्रथवंश का अंतिम राजा रिपुंजय राज्योचित धर्म एवं अपने कर्त्तव्य से च्युत होकर विनाश को प्राप्त हुआ। विदेशी महामात्य पुलिकसेन ने बलपूर्वक हमें दासता के बंधन में जकड़े रखा। किंतु, प्रजा की शक्ति अपरिमेय होती है। उसकी इच्छा के विरुद्ध स्वयं इन्द्रदेव की सत्ता भी सुदृढ़ नहीं रह सकती। निदान, कृष्ण वासुदेव की कृपा से विश्व-विश्रुत दंडनीति-शास्त्री आचार्य औदुम्बरायण का नेतृत्व हमें प्राप्त हो गया।…"

मंडप में उपस्थित जन आचार्य एवं श्रद्धा के स्वर में पूछ बैठे—

"आचार्य औदुम्बरायण ?"

"आचार्य औदुम्बरायण को ही आप आचार्य शैवलिक के रूप में जानते है। इनके नेतृत्व में महापराक्रमी श्रेणिय भट्टिय हेमजित ने मगध को दासता के बंधन से मुक्त कर दिया। और इन क्रांतियों के कारण, सहस्रों वर्ष प्राचीन मगध का राजवंश समाप्त हो गया। किंतु, आर्यपट्ट एक क्षण के लिए भी रिक्त नहीं रखा जा सकता। अतएव, मैं मगध के राजपरिवार के परंपरागत पुरोहित के अधिकार से समिति के समक्ष प्रस्ताव रखता हूं कि वह मगध के आर्यपट्ट पर भट्टिय हेमजित के पुत्र श्रेणिय बिम्बिसार को अभिषिक्त करने की स्वीकृति प्रदान करे।"

कुछ लोग बोल उठे—

"श्रेणिय बिम्बिसार को क्यों? भट्टिय हेमजित को क्यों नहीं?"

कई लोगों ने चिल्ला कर कहा—

"आर्यपट्ट पर भट्टिय को अभिषिक्त कीजिए।"

पीछे से कोई बोल उठा—

"मगध महाजनपद में गणराज्य स्थापित कर दिया जाय।"

आचार्य नारायण स्वामी ने गंभीर स्वर में समाधान प्रस्तुत किया—

"भट्टिय हेमजित ने व्रत लिया है कि वे किसी भी प्रकार की सेवा का पुरस्कार नहीं ग्रहण करेंगे। उनका कथन है कि यदि उन्होंने देश-सेवा के बदले पुरस्कार में आर्यपट्ट पर अभिषिक्त होना स्वीकार कर लिया तो देश-सेवा एवं सात्विक संघर्ष का आदर्श कलुषित हो जायेगा। आने वाली संतान लोभ एवं ईर्ष्या की प्रतीक बन कर रह जायेगी। इसके अतिरिक्त बिम्बिसार अंग की उत्तराधिकारिणी चन्द्रबाला के पुत्र हैं। चन्द्रबाला के पिता अंगराज दधिवाहन को उनके भाई ब्रह्मदत्त ने धोखे से मार कर अंग का सिंहासन अपने अधीन कर लिया है। भट्टिय का प्रण है कि वे चन्द्र-बाला के पिता की हत्या का प्रतिशोध लेकर ही नगरवास करेंगे। एक सदस्य का प्रस्ताव है कि मगध को गणराज्य घोषित कर दिया जाय। मेरा निवेदन है कि जब मगध के चारों ओर वैशाली, अंग, चेदि, अवन्ति जैसे शत्रु राष्ट्र घात में बैठे हों, तब मगध में गणराज्य स्थापित करना विनाश को आमंत्रित करने के बराबर होगा। राष्ट्र-संकट के समय, विचार-स्वातंत्र्य को सत्ता में तिरोहित करके ही स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रक्खा जा सकता है। अतएव, मेरा प्रस्ताव यदि समिति को मान्य न हो तो अपनी असहमति प्रकट करें।"

मंडप में सर्वत्र शांति व्याप्त रही। आचार्य नारायण स्वामी का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

तत्पश्चात्, राज्याभिषेक के निमित्त राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान आरंभ हुआ।

बिम्बिसार ने उठ कर सर्वप्रथम रत्नियों की वंदना की। 'आसंदी' के प्रथम सोपान पर बिम्बिसार के चरण रखते ही उसके सिर पर राज-पुरोहित आचार्य नारायण स्वामी, राजन्य वरुणदत्त, जनप्रतिनिधि ताल-जंघ एवं एक शिल्पी ने मंत्राभिषिक्त पवित्र जल छिड़के।

राजपुरोहित आचार्य नारायण स्वामी ने बिम्बिसार को एक विशाल महेष्वास धनुष एवं तीन सपत्र बाण देकर उसे सम्राट् घोषित कर दिया। उसके उपरांत बिम्बिसार ने व्याघ्र-चर्म पर खड़े होकर प्रतिज्ञा की—

"मैं श्रेणिय भट्टिय पुत्र मगध सम्राट् हर्षकुलीन बिम्बिसार प्रतिज्ञा करता हूं कि धृत-व्रत एवं सत्यधर्म रहूंगा। यदि मै प्रजा के साथ किसी भी दृष्टि से द्रोह करूं, उस पर अत्याचार करूं, तो मेरा वह सब शुभ कर्म नष्ट हो जाय, जो मैं जन्म से मृत्यु-पर्यंत करता हूं। मैं सम्राट् होकर भी दंड से परे नही हूं। राज्योचित धर्म एवं कर्त्तव्य से च्युत होते ही समिति-सम्मत दंड का भागी होऊंगा।"

मंडप में उपस्थित जन-समुदाय के जय-जयकार से संपूर्ण गिरिव्रज नगर गूंज उठा। भट्टिय हेमजित को अपनी सफलता पर कोई विशेष प्रसन्नता नहीं थी। उसे अभी चन्द्रबाला को दिये गये वचन का निर्वाह करना था। उसका गौरव अंग की राजधानी चम्पा में भटक रहा था। जब से वह गिरिव्रज लौटा था, चन्द्रबाला को उदास ही देख रहा था, और यह बात उसके हृदय में शूल बन कर चुभती थी। राज्याभिषेक के उत्सव में उसका मन नहीं लग रहा था। उसकी दृष्टि चन्द्रबाला को ढूंढ़ने लगी। किंतु, उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि चन्द्रबाला अपने आसन पर नहीं थी।

वह चुपचाप, सबकी दृष्टि बचाकर मंडप से बाहर निकल आया। किंतु, चन्द्रबाला धवलगृह में भी नही थी।



उपसंहार

मगध महाजनपद प्रगति एवं अभ्युत्थान के मार्ग पर अग्रसर हो गया। श्रेणिय बिम्बिसार सम्राट् के पद पर पहुंचते ही प्रजा की श्रद्धा एवं स्नेह का केंद्र बन गया।

कुछ काल पश्चात् आचार्य औदुम्बरायण ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में वर्षकार को मगध के महामात्य पद पर आसीन कराकर स्वयं ग्राम एवं नगर में घूम-घूम कर शिक्षा का प्रकाश फैलाने का व्रत धारण किया।

बिम्बिसार सम्राट् क्या हुआ, श्रवणा को सब कुछ मिल गया। ज्योतिपाल, मणिभद्र, जयसेन, भद्रसेन, देवमित्र, पुनर्वसु एवं विशाख यथोचित पद पाकर राष्ट्र-सेवा में जुट गये। वसुमित्रा सेनापति ज्योतिपाल जैसा पति पाकर धन्य हो उठी। विश्वतारा आचार्य नारायण स्वामी के संरक्षण में कृष्ण वासुदेव की सेवा में तन्मय हो गयी।

भट्टिय हेमजित अपना प्रण पूरा करने के उद्देश्य से चम्पा अभियान के उद्यम में वरुणदत्त के साथ प्रयत्नशील हो गया।

चन्द्रबाला की मानसिक स्थिति दिन-प्रतिदिन असंतुलित ही होती गयी। रह-रहकर उसकी आंखों के समक्ष पिता दधिवाहन का कटा हुआ सिर अट्टहास कर उठता। उसे प्रतीत होता, मानो वह छिन्न मस्तक कह रहा हो—'सत्ता से ऊंची वस्तु इस भौतिक जगत् में कुछ नहीं है। उसे

प्राप्त करके भी मुझे क्या मिला ? मृत्यु ! यही तुम्हें भी मिलेगा, तुम्हारे पति को मिलेगा, तुम्हारे पुत्र को मिलेगा। फिर भी इतना प्रमाद क्यों ? इतनी आकुलता एवं संघर्ष किसलिए ?…"

चन्द्रबाला को कोई उत्तर नहीं सूझता। श्रवणा ने उसके लिए क्या नहीं किया ? किंतु, उसने श्रवणा को क्या दिया ?—आर्यपट्ट ? राजमाता पद ? पति-प्रेम ?…कुछ भी तो नहीं ! उल्टे उसने उसका सब कुछ छीन लिया।

चन्द्रबाला आकुल-व्याकुल होकर रह आती। किंतु, यदि विश्व में समस्याएं हैं, तो उनका निदान भी यहीं है। लक्ष्य है तो राह भी निकल ही आती है।

एक दिन, गिरिव्रजवासियों ने सुना कि ज्ञातिपुत्र महावीर केवलिन् पद प्राप्त कर गिरिव्रज के आम्रवन में पधारे हैं।

चन्द्रबाला ने भी सुना। उसने सोचा, कितना महान् वह व्यक्तित्व होगा जिसने मोह, स्नेह, ईर्ष्या को जीत कर शेष सब कुछ त्याग दिया होगा !…चन्द्रबाला गुरुत्वाकर्षण शक्ति से खिंच कर अनायास वहां जा पहुंची।…

महावीर तीर्थंकर बर्द्धमान शाल वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित बैठे थे। उनका सिर झुका हुआ था, आंखें झुकी हुई थी, अंग-प्रत्यंग झुके हुए थे। किंतु, उनके चारों ओर अनंत सुख-शांति की प्रकाश रश्मियां उद्भासित हो रही थीं।

चन्द्रबाला किसी दैवी शक्ति से अनुप्रेरित होकर अनायास ही तीर्थंकर महावीर के चरणों में गिर पड़ी। महावीर कदाचित् चन्द्रबाला की मनोव्यथा को समझ गये, बोले—

"संसार दुःख से जल रहा है। जहां दुःख ही दुःख है, वहां शांति कैसे मिले ? इसका उत्तर तुम्हारे ही पास है। शत्रु बाहर नहीं है—तुम्हारा शत्रु तुम्हारी आत्मा ही है। उसे जीतो—तुम्हें उत्तर मिल जायेगा। सुख के द्वार खुल जायेंगे।"

चन्द्रबाला की आंखों से अविरल अश्रुधार प्रवाहित हो चली। अवरुद्ध कंठ से बोली—

"यह कैसे संभव है सर्वज्ञ ? इतना कठिन कार्य मुझसे न हो सकेगा।"

"कार्य का आरंभ ही उसकी इति है ! क्योंकि आरंभ है तभी इति भी है। अतएव, कठिन होते हुए भी असंभव नहीं है। मोह एवं स्नेह का परित्याग करके ही कर्म-बंधन कट सकता है और कर्म-बंधन कटते ही संसार-भ्रमण मिट जाता है, दुःख दूर हो जाता है। तुम्हारी आत्मा कर्मों से लिपटी हुई है, उसे विलग करो। दस शत्रुओं को जीत कर अट्ठारह पापों का त्याग करो, सुख-शांति का साम्राज्य तुम्हारे चरणों पर न्योछावर होगा।"

महावीर तीर्थंकर वर्द्धमान की प्रज्ञा सुनकर चन्द्रबाला के संशय छिन्न हो गये। बोली—

"मुझे निर्ग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा हुई है, उसमें विश्वास हुआ है। आप जो कहते हैं वह सत्य है।"

यह कहकर चन्द्रबाला ने प्रव्रज्या ग्रहण की। अंगराज स्वर्गीय दधिवाहन की पुत्री चन्द्रबाला ने महावीर से प्रवज्या ग्रहण की—ऐसा लोक में प्रसिद्ध हो गया। भट्टिय श्रेणिय बिम्बिसार श्रवणा को माता के रूप में प्राप्त करके भी, लोक में, हर्यक कुलावतंस के रूप में विख्यात हुआ।

छठी शताब्दी ईसवी पूर्व में मगध से दो अलौकिक अमर रश्मियां उद्भासित हुईं—एक राजनीतिक, दूसरी आध्यात्मिक ! भावी भारत के अभ्युदय से दिग्दिगंत आलोकित हो उठा !